हिन्दी दोहा सार

१.४३१००९
६४ हि

बलजोर सिंह
"सरल"

हिन्दी-दोहा-सार

(हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक कवियों का विवेचन और दोहे)

बरजोर सिंह 'सरल'

'साहित्य रत्न'

डा. डिल्ली रमण रेड्डी
कल्याणी रेड्डी स्मारक
पुस्तकालय
9447

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो० बॉ० ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी

१९८७] [रु० २०.००

प्रकाशक :

विजय प्रकाश बेरी

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पिशाचमोचन, वाराणसी

हिन्दी प्रचारक संस्थान का बिक्री केन्द्र—

साहित्य भारती

२६३, रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता–७०००७

मुद्रक :

मालती प्रेस,

३०–विवेकानन्द नगर, वाराणसी–२२१००२

प्रस्तावना

प्रयाग की रसिक मण्डक संस्था ने हिन्दी साहित्य संवर्द्धन में बड़ी ही महत्त्व-पूर्ण साहित्यिक सेवा की है। उस समय खड़ी बोली और ब्रज भाषा में एक विवाद उठ खड़ा हुआ था जिसके कारण इनके लेखकों में गुटबाजी खुलकर हिन्दी भाषियों के समक्ष आई, किन्तु इस संस्था ने दोनों भाषाओं के लेखकों को एक ही मंच पर लाकर खड़ा करने का श्रेयस्कर कार्य किया। डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी (प्रयाग विश्व विद्यालय, इतिहास विभाग) इसके अध्यक्ष और गुरुवर डॉ० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' आचार्य प्रवर प्रधानमन्त्री इसके सर्वेसर्वा थे। इस संस्था ने बड़े-बड़े आयोजन किये और तत्कालीन प्रधान साहित्यिकों और विशेषकर कवियों का सहयोग प्राप्त किया। उपाध्याय श्री अयोध्या सिंह, मैथिलीशरण गुप्त, महाकवि 'रत्नाकर' ने विशेष रूप से इस संस्था को अपना हर तरह का सहयोग प्रदान किया। 'रत्नाकर' जी का 'उद्धवशतक' इसी संस्था ने इन्डियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित करवाया था।

इस संस्था की 'मासिक-पूर्णिमा-गोष्ठी' अपना महत्वपूर्ण आयोजन प्रत्येक पूर्णिमा को किया करती थी। जो विद्वान बाहर से आते थे, यहाँ कई दिनों तक रहकर अपना सहयोग दिया करते थे। व्याख्यान मालाएँ चलती थीं। कवि सम्मेलन होते थे। अखिल भारतीय 'सवैया सम्मेलन', प्रतापगढ़ निवासी पं० राधेविहारी मिश्र के सभापतित्व में तीन दिवस तक चलता रहा।

एक बार 'रत्नाकर' जी ने प्रसंगवश एक कवि की शक्ति गाथा सुनाई। अकबर के सेनापति जयपुराधीश महाराजा मानसिंह के हृदय में लंका विजय की बात उठ खड़ी हुई। उनके मन्त्रियों आदि ने महाराज से इसके विजय की

कठिनाइयों का वर्णन किया। दक्षिण भारत के भयंकर वनों की बात, समुद्र लाँघने की कठिनाई तथा अन्य असुविधाओं का वर्णन किया। किन्तु मानसिंह के मान के यह विरुद्ध था कि—एक प्रण करके उससे हट जाना। महाराज की रानियों ने भी इस सम्बन्ध में कठिनाइयों का जिक्र करते हुए लंका विजय के लिए महाराज को रोकने का प्रयत्न किया। किन्तु जब कोई बात कारगर न हुई तो लोग राजकवि की शरण में गये। राजकवि ने आश्वासन दिया कि वह महाराज के इस हठ-निश्चय को अवश्य रोकेंगे। किन्तु समय निश्चित हो गया। सेनायें तैयार हो गईं। महाराज का घोड़ा सेना के सम्मुख आ गया। केवल राजमाता के न आने के कारण विलम्ब हो रहा था, क्योंकि उनका चरण स्पर्श करने से महाराज युद्ध पर कूच करते थे। महाराज घोड़े के समीप आ गये। घोड़े की लगाम हाथ में लेकर जैसे ही महाराज ने रकाब पर पैर रखना चाहा उसी समय राज कवि महोदय महाराज के सम्मुख उपस्थित हो गये। महाराज ने जिज्ञासापूर्ण नेत्रों से राजकवि की ओर देखा। राजकवि ने कहा महाराज एक निवेदन है—

रघुपति कीन्ह्यो दान, विप्रविभीषण मान के।
मानमहीपति मान, दियो दान किमि लीजियो॥

महाराज मान सिंह का पैर रकाब से नीचे आ गया। उन्होंने सेना को आज्ञा दी कि यह अभियान अब रोक दिया जाता है।

प्रयाग में एक साधारण अध्यापक पं० बिहारी लाल मालवीय थे। काव्य प्रेमी और रसिक। उन्हें एक दिन एक उर्दू प्रेमी सज्जन ने एक शेर सुनाया—

कमर खमीदार नहीं, बासबब जईफी में।
जमीन ढूँढ़ रहे हैं, मजार के क़ाबलि॥

मालवीय जी ने दूसरे दिन उनके घर जाकर शेर के जवाब में अपना एक सोरठा सुनने का उनसे आग्रह किया—

वृद्ध अवस्था पाइ, कटि झुकाय ताकहि धरनि।
मानहु जिय घबराय, नवयौवन ढूँढ़त फिरहि॥

'शेर' के शक्ति की बात कहने वाले सज्जन बिहारी लाल मालवीय के उठकर पैर छू लिए और हृदय से लगाकर उनका सम्मान किया।

कविवर बिहारी ने—

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहि विकास इहि काल।
अली, कली ही सौं बध्यो, आगैं, कौन हवाल॥३८॥

कहकर महाराजा जयपुराधीश को विलासिता के गर्त से निकालकर राज्य काज में दिलचस्पी लेने के लिए प्रेरित किया था।

महाकवि अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' कहा करते थे कि उर्दूभाषा छन्द 'शेर' के समक्ष यदि 'वाह'-'वाह' कहलाने की शक्ति हिन्दी के किन्हीं छन्दों में है तो वह 'चौपदे' और 'दोहे' में है।

हिन्दी भाषा का दोहा साहित्य प्रचुर और स्थायी है। मैंने इसी दृष्टि से इस पुस्तक को हिन्दी भाषी जनता के समक्ष रखने का श्रम किया है। बहुत से दोहे अनुपलब्धता के कारण इस पुस्तक में संग्रहीत नहीं कर सका। इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। अतः जैसा बन पड़ा है वह पाठकों के सम्मुख है।

शिवरात्रि संवत् २०३४ वि०
दिनाँक ७ मार्च १९७८ ई०

बरजोर सिंह 'सरल'

विषय-सूची

[प्राचीन काल]

क्र० सं०	विषय	पृ० सं०
	हिन्दी दोहा साहित्य का विकास	१
१.	कबीरदास	१६
२.	गोस्वामी तुलसीदास	२६
३.	श्रीमती रत्नावली देवी	४०
४.	अब्दुर्रहीम खानखाना 'रहीम'	५०
५.	बिहारीलाल चौबे (बिहारी)	६५
६.	ठाकुर पृथ्वी सिंह 'रसनिधि'	८१
७.	मतिराम त्रिपाठी	९४
८.	वृन्दावन 'वृन्द'	१०६
९.	सैयद गुलामनबी 'रसलीन'	१२०
१०.	विक्रमादित्य सिंह 'विक्रम'	१३६
११.	रामसहायदास 'राम'	१४१

[आधुनिक काल]

१२.	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	१५६
१३.	रामचरित उपाध्याय	१६३
१४.	हरिप्रसाद द्विवेदी 'वियोगी हरि'	१७२
१५.	दुलारे लाल भार्गव	१८६

क्र० सं०	विषय			पृ० सं०
१६.	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	....	....	१९९
१७.	राजाराम शुक्ल (चितचोर राष्ट्रीय आत्मा)	....	....	२०९
१८.	पं० राधावल्लभ पाण्डेय 'बन्धु'	....	....	२१९
१९.	दीनानाथ 'अशंक'	....	....	२२८
२०.	तुलसीराम शर्मा 'दिनेश'	....	....	२३८
२१.	अम्बिका प्रसाद वर्मा 'दिव्य'	....	....	२४९
२२.	रामेश्वर शुक्ल 'करुण'	....	....	२६२
२३.	चन्द्रभान सिंह 'रज'	....	....	२७२
२४.	किशोरचन्द्र कपूर	....	....	२८१
२५.	पं० जानकी प्रसाद द्विवेदी	....	....	२९२

प्राचीन काल

	जन्म	मृत्यु
१. कबीर दास	बि० सं० १४५६	१५७५ सं०
२. तुलसीदास	संवत् १५५४	१६८० ,,
३. रत्नावली देवी	,, १५६७	१६५१ ,,
४. अब्दुर्रहीम खानखाना 'रहीम'	,, १६१०	१६८३ ,,
५. बिहारी लाल चौबे	,, १६६०	१७२० ,,
६. पृथ्वीसिंह 'रसनिधि'	,, १६६०	१७१७ ,,
७. मतिराम त्रिपाठी	,, १६७४	१७४५ ,,
८. वृन्दावन 'वृन्द'	,, १७००	१७८० ,,
९. सैयद गुलाम अली 'रसलीन'	,, १७७१	१८३१ ,,
१०. विक्रमादित्य सिंह विक्रम (राज्यकाल)	१८२९ से	१८८६
११. रामसहायदास 'राम' (रचनाकाल)	१८६० से	१८८४

आधुनिक काल

		जन्म
१. अयोध्यासिंह उपाध्याय	'हरि औध'	सं० १९२२ वि०
२. रामचरित उपाध्याय		सं० १९२९ वि०
३. हरिप्रसाद द्विवेदी	'वियोगीहरि'	सं० १९५३ वि०
४. दुलारे लाल भार्गव		
५. बालकृष्ण शर्मा	'नवीन'	सं० १९५४ वि०
६. राजाराम शुक्ल	'राष्ट्रीय आत्मा'	सं० १९५५ वि०
७. राधावल्लभ पाण्डेय	'बन्धु'	सं० १९४५ वि०
८. दीनानाथ	'अशंक'	
९. तुलसीराम शर्मा	'दिनेश'	सं० १९५३ वि०
१०. अम्बिकाप्रसाद वर्मा	'दिव्य'	सं० १९६३ वि०
११. चन्द्रभान सिंह	'रज'	
१२. रामेश्वर शुक्ल	'करुण'	
१३. जानकी प्रसाद द्विवेदी		
१४. किशोर चन्द्र कपूर		सं० १९५६ वि०

ग्रन्थ प्रारम्भ

हिन्दी दोहा साहित्य का विकास

हिन्दी दोहा साहित्य का विकास

हिन्दी भाषा के इतिहास के मनन से पता चलता है कि हिन्दी का आविर्भाव अपभ्रंश से हुआ। उस समय 'दूहा' कहने से हिन्दी भाषा के पद्य का जिसे हम आगे हिन्दी कहेंगे, अर्थ लिया जाता था। प्रत्येक प्रकार के पद्य या छन्द (काव्य) 'दूहा' ही कहलाते थे।

विक्रम की आठवीं शताब्दी के समय सिद्धाचार्य सरोज बज्र उपनाम 'सरह' का एक दूहा देखिये—

जहि मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाह पवेस।
तहि बढ़ चित बिसाम करु, सरहे कहिय उवेस॥

उपर्युक्त दोहे से हमें हिन्दी का पूर्वाभास मिलता है। आगे चलकर संवत् ९९० वि० में देवसेन जैन ग्रन्थकार ने 'श्रावकाचार्य' तथा 'दव्व सहाव पयास' नामक ग्रन्थों की रचना 'दूहा' (दोहा) छन्द में की। 'श्रावकाचार्य' का एक दूहा (दोहा) इस प्रकार है—

जो जिण सासण भाबियउ, सो मह कहियउ सारु।
सो पाले सइ भानु करि, सो तीर पावइ पारु॥

इस पद से भी यह आभास मिलता है कि काल के गत्यानुसार हमारी उस भाषा का रूप निर्मित हो रहा था। जिसे हम हिन्द-राष्ट्री (हिन्दी) के नाम से पुकार सकते हैं।

इसके अतिरिक्त महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने सहजिया सम्प्रदाय की कुछ पुस्तकों का संग्रह जिन्हें वे एक सहस्त्र वर्ष पूर्व प्राचीन मानते हैं, किया है। जिसका नाम उन्होंने 'बौद्ध गान' और 'दोहा' रक्खा है। इससे पता चलता है कि उस समय इस भाषा में दोहों का प्रधान प्रभुत्व था।

गुजरात प्रान्त के सोलंकी नरेश सिद्धराज जयसिंह (संवत् ११५०–११९९)

और उनके पुत्र कुमार पाल (११९९–१२३०) के यहाँ हेमचन्द्र नामक प्रसिद्ध जैन आचार्य थे। उन्होंने 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन' ग्रन्थ की रचना की है। अपभ्रंश के उदाहरण में उन्होंने दोहों को ही उद्धृत किया है।

भल्ला हुआ जो मारिया, बहिणि म्हारा कंतु।
लजेज तु बयसि अहु, जइ भग्गो घर एंतु॥

(हे बहिन अच्छा हुआ जो मेरा पति युद्ध में मारा गया। यदि वह कहीं भाग कर घेर आता तो तुम समवयस्काओं में मैं लज्जित होती।)

संवत् १२४१ वि० में सोमप्रभ सूरि नामक व्यक्ति ने 'कुमार पाल प्रतिबोध' नामक ग्रन्थ लिखा है। इसमें कुछ प्राचीन अपभ्रंश दोहे भी संग्रहीत हैं। इसका एक दो देखिये—

वेस बिसिट्ठइ बारियइ, जइबि मनोहरगत्त।
गंगाजल पक्वालियवि, सुणिहि कि होइ पवित्त॥

(मनोहर गात होते हुए भी ऊपरी भेष बनाने वाले से बचिये। गंगा जल में धुली हुई कुतिया क्या पवित्र हो सकती है?)

जैनाचार्य मेरुतंग के बनाये हुए 'प्रबन्ध चिन्तामणि' ग्रन्थ में प्राचीन राजाओं के आख्यानों का संग्रह है। मुंज और मृणालवती के आख्यान में अपभ्रंशकाल के दोहे भी मिलते हैं, जिनमें कुछ दोहे इस प्रकार हैं—

भुंज भणइ मृणालवइ, जुब्बण गयुं न झूरि।
जइ सक्कर सय खंडथिय, तो इस मीठी चूरि॥

(भुंज कहता है हे मृणालवति! गये हुए योवन को न पछता। यदि शर्करा सौ खण्ड हो जाय तो भी वह मीठी रहेगी।)

जा मति पच्छइ संपजइ, सा मति पहिली होइ।
भुंज भणइ मृणालवइ, बिघन न बेढ़इ कोइ॥

(भुंज कहता है, हे मृलालनती, किसी कार्य के पीछे जो मति उत्पन्न होती है, यदि वह पहिले ही उत्पन्न हो जाय तो उसे कोई बिघ्न नहीं सता सकता।)

चन्द्रवरदाई हिन्दी के प्रथम महाकवि कहे जाते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य इन्हीं की रचना है। इस ग्रन्थ में स्थान पर आप 'दूहा' छन्द का प्रयोग देखेंगे।

इस प्रकार दोहों की यह परम्परा बराबर चली आ रही है। वीरगाथा काल के पश्चात कविगण दोहा छन्द में अपनी भावनाओं को अत्यन्त मनोरम् एवं काव्यमयी अभिव्यक्ति द्वारा हिन्दी साहित्य का भण्डार भरते रहे। आगे चलकर यह परम्परा और भी विस्तृत हो गई और दोहे अपना एक अलग स्थान बनाकर हिन्दी साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति हो गये।

दोहा मात्रिक छन्द है। १३–११ के विराम से उसके दो चरण होते हैं। इसी के विपरीत यदि हम मात्राओं को पलट देते हैं। तो उसकी 'सोरठा' संज्ञा हो जाती है। वैसे तो हिन्दी साहित्य का कदाचित कोई भी ऐसा कवि न होगा जिसने दोहा छन्द के प्रति अपना अनुराग न दिखाया हो; किन्तु हिन्दी भाषा के नवविकसित रूप के साथ हम कबीर से ही इस दोहा छन्द की विस्तृत परम्परा मानेंगे। हम पहिले लिख आये हैं कि पहिले दूहा (दोहा) से ही हिन्दी कविता समझी जाती थी। चाहे जिस छन्द में वह लिखी गई हो। आगे चलकर सभी छन्दों में काव्य रचने की परम्परा चली।

दोहा छन्द को इतनी सर्वप्रियता प्राप्त होने का एक मात्र कारण यही न था कि यह दो चरणों और ४८ मात्राओं का एक छोटा सा छन्द है। वरन् विचारपूर्वक देखा जाय तो भावाभिव्यक्ति, ध्वन्यात्मकता एवं प्रभावोत्पदकता आदि काव्योपम गुणों की दृष्टि से भी यह छन्द सुकवि की कसौटी है। इसमें थोड़े से इने गिने वाक्यों में मार्मिक एवं गम्भीर उक्ति कहने की क्षमता है। बिहारी के शब्दों में यह 'नावक के तीर' का कार्य करते हैं। इनमें सूक्तियाँ बड़ी सरलता से कही जा सकती हैं। इसमें 'गागर में सागर, भरने की क्षमता है। चुभती हुई उक्ति कहने का ऐसा नपा तुला ढंग है कि लोगों के हृदय पर उसका तीव्र प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि भक्ति, नीति और शृंगारमयी अभिव्यक्ति के लिए कवियों ने इसे भरपूर अपनाया और सैकड़ों की संख्या में

लिखकर अपनी वाणी पवित्र करते हुए माँ भारती के भण्डार की पूर्ति की ओर करते चले आ रहे हैं।

कबीर—भक्ति मार्ग की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि संत कबीर ने अपनी साखियों के लिखने में दोहों का प्रयोग किया है। इस कवि ने पहिले पहल दोहों का अक्षय भण्डार हिन्दी साहित्य को प्रदान किया और मृत्यु पर्यन्त अपनी वाणी द्वारा आलोचनात्मक दृष्टि से हिन्दू मुस्लिम एकता का समर्थन करते हुए हिन्दी में उच्चकोटि का दोहा साहित्य दिया।

इनकी भाषा में खड़ी बोली, अवधी और पूर्वी (खिचड़ी हिन्दी-भाषा) का पूर्ण सम्मिश्रण है। यद्यपि शुष्कता के आवरण में यह दोहे—धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता और राष्ट्र के सुख-शान्ति-विनाशकारी भावनाओं का मूलोच्छेदन करने में समर्थ हैं और इनमें एक अनुपम प्रभावोत्पदकता पाई जाती है, किन्तु दार्शनिक चिन्तन के कारण इनमें काव्योपम सरसता का अभाव है। ईश्वर, माया और जीव आदि दार्शनिक तत्वों के विवेचन के साथ इनमें प्रेम-पीड़ा की भी बड़ी ही मार्मिक अभिव्यक्ति है।

तुलसी—सगुण भक्ति राम–शाखा के प्रधान कवियों में महाकवि तुलसीदास की सतसई दोहों के क्रमिक विकास में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। अवधी तथा ब्रज दोनों भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित महात्मा तुलसीदास के राम भक्ति प्लावित हृदय ने सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन की आदर्श भूमि निर्मित कर भक्ति के उस रूप की व्यञ्जना की, जिसमें लोकमंगल और लोकरंजन का परम उद्देश्य निहित है। उनका चातक चौतीसा भक्ति जीवन का चरम आदर्श है। इसमें भक्ति के आवश्यक अंग प्रेम की बड़ी ही गम्भीर एवं व्यापक व्यञ्जना हुई है। तुलसी सतसई में अन्य विशेषताओं में मुख्य विशेषता यह भी है कि इसके दोहे लोकोक्ति के रूप में साधारण जनता के भी कण्ठहार हो गये हैं।

रत्नावली—हिन्दी दोहाकारों में स्त्री कवियों का अभाव सा है; किन्तु महाकवि तुलसीदास की धर्मपत्नी रत्नावली देवी के दोहे हिन्दी साहित्य में अपने ढंग के निराले हैं। कुछ दिनों तक तो लोगों को इसमें सन्देह था कि

वास्तव में यह दोहे महाकवि तुलसीदास की धर्मपत्नी के ही हैं या किसी अन्य के। किन्तु अब निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि यह उन्ही की रचना है।

यद्यपि दोहों की संख्या अधिक नहीं है, फिर भी जितने दोहे मिले हैं वे एक पतिव्रता नारी हृदय के उच्चकोटि के उद्गार और भारतीय संस्कृति के द्योतक हैं।

रहीम—हिन्दी भाषाभाषी जन अपने इस मुसलमान कवि पर जितना गर्व करें वह थोड़ा है। रहीम के दोहे हिन्दी साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं और जब तक एक भी हिन्दीभाषी पृथ्वी पर रहेगा रहीम का नाम उसे नहीं भूल सकता। धर्म और नीति को लेकर कवि ने अपनी शिक्षाप्रद पद्धति में ऐसी अमूल्य रचना की है कि जिसे सुनते ही अमृत की वर्षा-सी होने लगती है।

भाषा और भाव इस कवि के अपने वशवर्ती हैं। माधुर्य और प्रसाद की दृष्टि से रहीम के दोहे, पाठक के हृदय में रस की गंगा बहाने में अत्यन्त समर्थ हैं। अनूठी उक्तियाँ कवि की अपनी विशेषता है।

बिहारी—हिन्दी काव्य-जगत में बिहारी दोहों के निर्माण ही के लिए जन्म ग्रहण करते दिखाई देते हैं। 'बिहारी सतसई' से हिन्दी साहित्य सतसइयों में नवीन परम्परा का जन्म हुआ। बिहारी सतसई की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इसकी दर्जनों टीकाएँ, इसके आधार पर अन्य भाषाओं में रचनाएँ, इस बात का प्रमाण है कि इस महाकवि ने सतसई ही लिखकर हिन्दी भाषा के भण्डार में एक अक्षय निधि एकत्र कर दी है। हृदय और कला पक्ष का ऐसा समन्वय दोहों में अन्यत्र नहीं दिखाई देता।

मानसिक भावनाओं और घात-प्रतिघातों का जितना सूक्ष्म ज्ञान इस कवि को था और जिसका सूक्ष्म वर्णन इस कवि ने किया है, उसे पढ़कर बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक पण्डित दाँतों तले उँगली दबाते और आवाक रह जाते हैं।

दोहों में कवि की पर्यवेक्षण शक्ति, स्त्री-पुरुषों की मनःस्थिति और उनके कथन की रसानुकूल प्रणाली ऐसी है कि कवि को दोहाकार-सम्राट कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं।

रसनिधि—दतिया रियासत के जमीदार ठाकुर पृथ्वी सिंह 'रसनिधि' ने बिहारी सतसई के आधार पर 'रतनहाजरा' नामक दोहों का ग्रन्थ लिखा। 'बिहारी सतसई' से यह इतने प्रभावित थे कि कहीं-कहीं बिहारी के दोहों के वाक्य के वाक्य ही इन्होंने स्वच्छन्दता से उठाकर रख दिये हैं। साथ ही फारसी काव्य के भावों को भरने और उनमें चातुर्य प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है।

सतसइयों की परम्परा में सात सौ से अधिक 'हजार' लिखकर इन्होंने एक विशेषता प्रकट की है।

मतिराम—यह कवि ब्रजभाषा की मधुरता के लिए प्रसिद्ध हैं। ब्रजभाषा का जो लालित्य और माधुर्य इस कवि के दोहों में है वह किसी भी कवि के दोहों में नहीं पाया जाता। 'मतिराम सतसई' उच्चकोटि की सतसइयों में है। यद्यपि कलापक्ष में यह 'बिहारी सतसई' के नीचे स्तर की है, किन्तु ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणों से युक्त यह भावों में 'विहारी सतसई' से किसी प्रकार भी पीछे नहीं है।

विहारी के समान दूर की कौड़ी के फेर में न पड़कर इनका कवि हृदय सरसता और स्वाभाविकता का ध्यान रखने में अत्यन्त सतर्क है। अनुप्रासयुक्त भाषा और भाव व्यञ्जना में इनकी सतसई अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

वृन्द—नीति विषयक दोहों के लिए 'वृन्द-सतसई' का हिन्दी साहित्य में अच्छा स्थान है। यह दोहे हिन्दी साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं।

भाषा की सादगी और नीति विषयक चुभती हुई बात कहने में वृन्द जी का अपना निश्चिन स्थान है। इसी से इनके दोहे लोगों को कहावतों के स्थान पर कहते हुए सुने जाते हैं। इस सतसई का अच्छा आदर है। एक विशेषता यह भी है कि सतसई की श्रृंगारिक परम्परा से, रीति कालीन प्रभाव से लोग ऊब से गये थे, किन्तु वृन्द जी की इस सतसई ने जन्म लेकर अपना और अपने कवि का नाम ही नहीं अमर किया वरन् हिन्दी सतसइयों की परम्परा में एक आमूल परिवर्तन करके एक नवीन धारा की सृष्टि की और कबीर तुलसी की परम्परा में अपनी परम्परा मिलाकर आगे के लिए मार्ग प्रदर्शन किया। इस कवि से भाषा गौरवान्वित हुई हैं।

रसलीन—सैयद गुलाम अली उपनाम 'रसलीन' हिन्दी के उन इने गिने दोहाकारों में हैं जो राधा भक्ति के साथ-साथ नखशिख वर्णन में अद्वितीय हैं। इनकी रचना में नखशिख का चुभता हुआ वर्णन भाषा की श्रेष्ठता और भावानुकूल रस व्यञ्जना इनकी अपनी देन है। इस कवि का—

'अमी हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुक झुक परत, जेहि चितवइ इकबार ॥'

प्रसिद्ध दोहा जिसे लोग भ्रम से बिहारी की रचना कहते हैं, इनके काव्य की कसौटी है। यह मस्त कवि अपनी उक्ति वैचित्र्य के लिए हिन्दी साहित्याकाश का जाज्वल्यमान नक्षत्र है और दोहाकारों की प्रथम पंक्ति में बैठने के योग्य है।

विक्रम—विक्रमादित्य सिंह 'विक्रमशाह चरखारी' के राजा थे। सतसईकारों में इनका भी अच्छा स्थान है। यह भी बिहारी की परम्परा में हैं। बिहारी सतसई को आदर्श मानकर इन्होंने भी अपनी 'विक्रम सतसई' की रचना की है। इससे 'मतिराम सतसई' का जिस प्रकार 'बिहारी सतसई' के पश्चात् आदर और सम्मान है उसी प्रकार 'मतिराम सतसई' के पश्चात् 'विक्रम सतसई' का भी अपना स्थान निश्चित है।

रस की मधुर व्यञ्जना का समावेश, ब्रजभाषा का निखरा रूप और भावों को अनुकूलता इस सतसई में पाई जाती है। बीच-बीच में शान्त रसात्मक दोहे बिहारी सतसई की परम्परा में आते हैं।

रामसहायदास—इनकी रचित 'रामसतसई' की अच्छी ख्याति है। इसके बहुत से दोहे सरसता और भाव में बिहारी के दोहों के सन्निकट पहुँचते हैं किन्तु कला पक्ष की उड़ान में बिहारी को पाने में अन्य दोहाकारों की भाँति यह भी सफल नहीं हो सके। 'रामसतसई' में हम प्राचीन दोहा परम्परा की सतसइयों की समाप्ति सी पाते हैं। यह सतसई प्राचीन परम्परा की अन्तिम कड़ी है। इसके पश्चात् हम आधुनिक काल में प्रवेश करते हैं।

अब यदि हम दोहों के क्रमिक विकास पर कबीर से लेकर राम सहायदास

के रचना काल तक दृष्टिपात करते हैं तो पता चलता है कि हिन्दी साहित्य के क्रमिक विकास में भी दोहा साहित्य का एक विशिष्ट स्थान है। दोहा साहित्य के द्वारा काव्यमयी मनोरम् अभिव्यक्तियों के अतिरिक्त कवि के समय की धार्मिक सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। कवियों की मनोरम सूक्तियाँ एवं उक्तियाँ जनजीवन का निर्माण करने में भी सफल हुई हैं। यहाँ हमें एक बात और स्मरण रखनी चाहिये कि भक्तिकाल के पश्चात् रीतिकाल में जिस दोहा साहित्य का सृजन हुआ उस पर राजकीय आश्रय का भी प्रभाव प्रत्यक्ष है। कलाकार की काव्योपासना को धन और यशोलिप्सा निरन्तर प्रोत्साहित करती रहती थी।

आधुनिक युग में राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव को लिए हुए हिन्दी साहित्य का जो नव विकसित रूप आया, वह भाषा और साहित्य दोनों दृष्टियों से विशेष महत्व रखता है। इस युग के कवियों ने भी दोहासाहित्य की परम्परा को बड़े ही गौरवपूर्ण ढंग से अक्षुण्य बनाये रखने का सफल एवं स्तुत्य प्रयत्न किया है। पूर्व दोहाकारों में जीवन की विविध झाँकियों के अतिरिक्त धार्मिकता, जागरुकता और सरसता दिखाई पड़ती है, पर इस युग के दोहाकारों में सामयिक परिस्थितियों के प्रभाव स्वरूप राजनीतिकता; देशभक्ति और सामाजिकता की छाप स्पष्ट प्रतीत होती है।

'हरिऔध'—आधुनिक युग के प्रतिनिधि कवि पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय ने जहाँ खड़ी बोली में 'प्रियप्रवास' 'वैदेही बनवास' और 'चोखे चौपदे' आदि ग्रन्थों की नवीन परम्परा का जन्म दिया वही 'हरिऔध सतसई' लिखकर भारती माँ के भण्डार में सतसई की प्राचीन परम्परा को जीवित रखने में सहयोग देकर दोहा साहित्य भण्डार की वृद्धि की।

'हरिऔध' जी की सतसई टकसाली और अपने ढंग की अनोखी है। इसमें कवि की भाषा, भाव और विचारों की गहरी छाप है। भक्तिपूर्ण भावनाएँ, स्थान-स्थान पर सूक्तियाँ और सौन्दर्यप्रियता महाकवि की अपनी एक निजी विशेषता है। इन्होंने इस सतसई की रचना करके सतसई-परम्परा में एक जान सी डाल दी है। कवि को प्रायः परम्परागत काव्य शैलियों का आभीष्ट था। यह

सतसई कवि की इसी भावना का परिणाम है। महाकवि की सर्वतोमुखी प्रतिभा दोहों में भी अपनी प्रतिमा प्रदर्शित कर रही है।

भाषा टकसाली, मधुर और प्राञ्जल है। खड़ी बोली का शुद्ध रूप हमें कहा- कवि के दोहों में मिलता है। समय आने पर सतसई का अच्छा समादर होगा।

रामचरित उपाध्याय—उपाध्याय जी की 'ब्रज सतसई' हिन्दी साहित्य में आधुनिक सतसइयों में प्रसिद्ध है। शृङ्गार, नीति और भक्ति वैराग्य, इन तीन खण्डों में इसकी रचना हुई है। इससे यह उपादेय और पठनीय है। उपाध्याय जी ने हजारो की संख्या में दोहे लिखे। यह सतसई उन्हीं दोहों से संकलित करके हिन्दी संसार के सन्मुख प्रस्तुत की गई है। उपाध्याय जी आधुनिक युग के सफल कवि और साहित्यानुरागी रहे हैं। इनका प्रमाण इनकी इस सतसई में दृष्टिगोचर होता है।

वियोगी हरि—ब्रजभाषा के अनन्य प्रेमी और देशभक्त श्री हरि प्रसाद द्विवेदी 'वियोगी हरि' ने 'वीर सतसई' रचकर ख्याति और यश दोनों प्राप्त किया है। सतसई की परम्परा की दिशा को आप ने औचक ही मोड़ देकर हिन्दी साहित्य में अपनी अभूत पूर्व प्रतिभा का परिचय दिया। यह तत्कालीन राजनैतिक वाता- वरण का प्रभाव था।

आधुनिकता की छाप रखते हुए अतीत के प्रसिद्ध वीरों की प्रशस्तियों से परिपूर्ण 'वीर सतसई' अपने नाम को सार्थक करती हुई हिन्दी भाषा की अमूल्य निधि है। साथ ही साथ सतसई साहित्य की परम्परा के परिवर्तन-युग की श्रेयमयी धारा है।

ब्रजभाषा काव्य की परम्परा के साथ सतसई परम्परा का जीवन स्थिर रखते हुए कवि ने शृङ्गारमयी तन्द्रा से इन परम्पराओं को निकाल कर समाज भक्ति, देशभक्ति और वीररस का समावेश करके भाषा और भाव को ओजस्विता प्रदान की है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'वीर सतसई' पर १२०० रु० का मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान कर अपने को गौरवान्वित किया है।

दुलारेलाल भार्गव—भार्गव जी को हिन्दी दोहाकारों में जो स्थान प्राप्त

हुआ है वह अन्य कवि को इतने कम दोहों की रचना करके नहीं प्राप्त हो सका। आप ने लगभग ५०० दोहे ही लिखे होंगे। इनके कुछ दोहों का संग्रह 'दुलारे दोहावली' के नाम से प्रकाशित हुआ है, जिसमें इन्हें महाराज ओरछा नरेश वीर सिंह देव पुरस्कार २०००रु० का प्राप्त हुआ है।

भाषा और शैली की दृष्टि से वर्तमान दोहाकारों में भार्गव जी ही ऐसे कवि हैं जिनके दोहों में बिहारी सतसई की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होता है। कला और आधुनिकता की दृष्टि से इनको अच्छी सफलता मिली है।

नवीन—पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हिन्दी के ऐसे प्रमुख कवियों में हैं जिन पर हिन्दी माता को गर्व है। 'नवीन' जी कवि ही नहीं, वरन् एक यशस्वी पत्रकार और भारतीय नेता भी थे।

पाठको को 'नवीन' जी के दोहाकार होने आश्चर्य होगा। क्योंकि यह एक धुरन्धर प्रणय और प्रलय गायक थे। नवीन जी ने लगभग एक हजार दोहे लिखे हैं। राष्ट्र सेवा के उपहार स्वरूप अंग्रेज महा प्रभुओं द्वारा कवि को मिलने वाले जेल-जीवन के गौरवमय पुनीत वर्षों में ही अधिकांश दोहों की रचना हुई है।

आप का 'विस्मृता उर्मिला' नामक महाकाव्य का एक सर्ग केवल दोहों में ही लिखा गया है। इनकी संख्या सात सौ के लगभग है।

'नवीन' जी भाषा के सुगठित रूप पर उतना ध्यान नहीं देते जितनी स्वाभाविकता द्वारा भावाभिव्यक्ति पर। प्रत्येक पंक्ति कवि के भावों की सम्यक् अभिव्यञ्जना का ही उद्देश्य लेकर चलती है। आप के विचार से शब्द कैसे ही क्यों न हों यह चिन्तनीय विषय नहीं। यही कारण है कि संस्कृत गर्भित प्रवाहमयी पदावली के बीच कहीं-कहीं साधारण ग्राम्य शब्दों का भी प्रयोग भी आप की भाषा में पाया जाता है वह भाव सबलता की पुष्टि करता है।

चितचोर—राजा राम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा' ने हिन्दी दोहा परम्परा में आधुनिक काल के कवियों में अपना एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान स्थिर कर लिया है। आपने 'चितचोर' उपनाम से केवल आँखों पर ही ११११ दोहों का

'अनोखी आँखे' ग्रन्थ लिखा है। आप हजारा कार से भी आगे बढ़ गये हैं। इसके इसके अतिरिक्त फुटकर दोहे भी लिखे हैं। 'अनोखी आँखों' में अनेक विषय और नवों रसों के दोहे आँखों पर ही मिलेंगे। इस ग्रन्थ की यही विशेषता है। इसमें खड़ी बोली का विशिष्ट परिमार्जित रूप पाया जाता है। शब्दमैत्री और प्रवाह शुक्लजी की भाषा की विशेषता है।

बन्धु—राधा बल्लभ पाण्डेय 'बन्धु' राष्ट्रीय और सामाजिक विषयों पर दोहा लिखने में बड़े प्रवीण हैं। आपके दोहे 'सनेही' जी के सम्पादन में निकलने वाले 'सुकवि' में काफी संख्या में निकल चुके हैं।

किसान और रोटी के प्रश्न पर बन्धु जी ने बड़े सुन्दर दोहे लिखे हैं। कुछ विशेष जाति की स्त्रियों पर आपकी कथनोक्तियाँ बड़ी तीखी हैं।

बन्धु जी की भाषा शुद्ध और प्राञ्जल है। इनके दोहों में काव्यत्व एवं प्रभावोत्पादकता के गुण प्रचुर मात्रा में हैं। बन्धुजी सफल दोहाकारों की श्रेणी में आते हैं।

अशंक—दीनानाथ 'अशंक' हिन्दी के प्रसिद्ध दोहाकार कवियों में हैं। इनकी नीति विषयक सतसई आपने ढंग की निराली है। सीधी-सादी भाषा में नीति की बात कह देना इनकी अपनी विशेषता है। 'अशंक' जी की यह सतसई हमें 'वृन्द' की परम्परा की याद दिलाती है। इसकी भाषा और भाव इतने सरल हैं कि छोटे-छोटे बच्चे भी इन्हें समझ सकते हैं।

नीति का स्थान-स्थान पर समावेश और एक बात कह कर दूसरी बात कहने में सिद्धहस्त 'अशंक' जी की शैली इतनी रोचक है कि सारी सतसई पढ़ डालिये पाठक का जी नहीं ऊबेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि बातचीत में आपने अपना समय व्यतीत कर दिया हो। आत्मा को शान्ति और सन्तोष, निराश जीवन को साहस दिलाना इस सतसई के दोहों की अपनी एक विशेषता है।

दिनेश—तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' नवीन सतसई कारों में 'श्याम सतसई' रचकर सतसई साहित्य में वृद्धि की है। इनकी सतसई सात शतकों में समाप्त हुई है। पंजाबी होते हुए भी परिमार्जित भाषा और अनेक विषयों की बहुरूपता

का रूप देकर इन्होंने सतसई को उपयोगी और सामयिक बनाने का प्रयत्न किया है, जिसमें इन्हें पूर्ण सफलता मिली है।

दिव्य—अम्बिका प्रसाद वर्मा एम० ए० 'दिव्य' हिन्दी के उन दोहाकारों में हैं जिन पर हिन्दी को गर्व करना चाहिये। दोहाकार के साथ-साथ 'दिव्य' जी कुशल चित्रकार भी हैं। अपने स्वरचित दोहों पर चित्र बनाकर अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। इनके दोहे प्रकृति सौन्दर्य चित्रण में अपनी विशेषता रखते हैं।

सतसई की भाषा ब्रजभाषा है। भाषा मधुर और प्राञ्जल है। दोहे काव्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं। अलंकारों की शोभा भी आपके दोहों में सर्वत्र मिलेगी। 'दिव्य' जी हिन्दी के सफल दोहाकार हैं!

रज—दीवान बहादुर चन्द्रभान सिंह 'रज' की 'प्रेम सतसई' प्रेम रसात्मक भावों की अनुभूति का सफल प्रयास है। इस प्रयास में दीवान साहब को पूर्ण सफलता मिली है। कहीं-कहीं शृङ्गार की सीमा का अतिक्रमण खटकता है। भाषा ब्रज होते हुए कहीं-कहीं उसका विकृत रूप और प्रयोग ठीक नहीं जँचता। प्राचीन परम्परा के अनुसार प्रत्येक दोहे में उपनाम का प्रयोग किया गया है।

'प्रेम सतसई' भक्त और प्रेमी जनों के लिए उपयोगी और साहित्य की अच्छी सम्पत्ति है। दीवान साहब अपने प्रयास में सफल हुए हैं। उनके हृदय की भावुकता और प्रेम की कसक सराहनीय है।

करुण—रामेश्वर शुक्ल 'करुण' आधुनिक सतसईकारों में अच्छा स्थान रखते हैं। इनकी 'करुणा सतसई' में करुणाजनक दोहों द्वारा देश की भिन्न-भिन्न आधुनिक समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

देशकाल का ध्यान रखते हुए कवि ने 'करुण सतसई' में शृङ्गारात्मक प्रवृत्ति रोकने का भरसक प्रयत्न किया है। इसका कारण कवि का अपना निजी राष्ट्रीय जीवन है। सतसई में कवि का भावजगत साम्यवादी सिद्धान्तों से प्रभावित है। उत्तर प्रदेशीय होते हुए कवि का अधिक जीवन पंजाब में व्यतीत हुआ। इससे भाषा व्रजभाषा होते हुए भी उसमें प्रान्तीयता की स्पष्ट छाप है। अन्य भाषाओं

के शब्दों का भी कवि ने स्वच्छन्दता से प्रयोग किया है। सतसई राजनैतिक इतिहास से प्रभावित समाज के कारुणिक जीवन की झाँकी है। कवि को सतसई लिखने में सफलता प्राप्त हुई है।

जानकी प्रसाद द्विवेदी—द्विवेदी जी ने प्रचुर मात्र में दोहो की रचना करके हिन्दी साहित्य के भण्डार की पूर्ति की है। मध्य प्रदेश के निवासी द्विवेदी जी ने प्राचीन परम्परा के अनुसार प्रत्येक दोहो में अपना नाम देना प्रिय है। दोहे नीति विषयक बड़े ही पुष्ट और भावनाओं से ओतप्रोत हैं।

भाषा मिलीजुली, साफ और सरल है। ऐसी आशा की जाती है कि आप के नीति विषयक दोहे लोगों की जिह्वा पर नीति युक्त बात कहने में प्रयुक्त किये जायँगे।

किशोर चन्द कपूर—आचार्य गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' जी के शिष्य बाबू किशोरचन्द कपूर, कानपुर निवासी बड़े ही काव्य-रसिक, काव्य-मर्मज्ञ और साहित्यानुरागियों के परम भक्त थे। इन्होंने केवल 'दोहा' छन्द लिखकर ही उसमें सिद्धि प्राप्त की थी। आप सिद्ध और आशु दोहाकार ने। कदाचित ही किसी दोहाकार ने इतने प्रचुर दोहे लिखे हों। आप के दोहों की संख्या ६२८४ है।

'ब्रजविनोद', 'गीता', और 'ब्रजचन्द्र विनोद' ग्रन्थ लिखकर आप अपना नाम दोहा साहित्यकारों में अमर कर गये हैं।

हिन्दी साहित्य में दोहाकारों की कमी नहीं। कदाचित् ही कोई कवि हो जिसने दोहा न लिखा हो। दोहों के लिखने का क्रम इधर कुछ ढीला दिखाई देता है। वह कवियों के अतुकान्त छन्दों के प्रयोग की होड़ का कारण हो सकता है। फिर भी दिशा बदल रही है और लोग चौपदे पर उतर आये हैं। आशा है वह युग पुनः आयेगा जब कवि थोड़े में बहुत कुछ कहने के लिये बाध्य होगा। ऐसी मेरी धारणा है।

———

कबीर दास

कबीरदास अपने काव्य के कारण एक युगान्तरकारी कवि हैं। उनका काव्य धार्मिक और सामाजिक जीवन की पक्षपात रहित विवेचना है। अंधपरम्पराओं को निर्मूल करने और जीवन में जागरण लाने की अपूर्व शक्ति है। उन्होंने हिन्दू कर्मकाण्ड और मुस्लिम साम्प्रदायिक धर्म भावना के दूषित रूप से वीरता से निडर होकर सामना किया। यदि कहा जाय तो उन्होंने अपने काव्य द्वारा सर्वप्रथम संत मत की स्थापना की।

कबीर संत थे। कवि तो वह अपने उपदेशप्रद काव्य के द्वारा कहे जाने लगे। बड़े पदों के अतिरिक्त दोहों में उनके उपदेश का एक बड़ा अंश है। जिस संतमत का उन्होंने प्रचार किया, वह आगे चलकर उनके अनुयायियों द्वारा 'कबीर पंथ' कहलाया, जिसमें हिन्दू-मुसलमान दोनों हैं।

कबीर का जन्म उनके पंथ के अनुसार संवत् चौदह सो पचपन ज्येष्ठ सुदी पूर्णिमा दिन सोमवार है। यह सन् १३९८ है। इसी वर्ष नादिरशाह का जबरदस्त हमला भारत में हुआ। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में मतभेद है, किन्तु उनके धर्मावलम्बी उन्हें दीर्घायु होना मानते हैं। इसके अनुसार उनका मृत्यु काल १५७५ वि० बतलाते हैं जिससे वह १२० वर्ष की आयु के प्राप्त करने वाले हुए।

कबीर वाणी का संग्रह बीजक के नाम से प्रसिद्ध है, जिसके तीन भाग रमैनी, सबद और साखी हैं। साखी में उनके दोहे हैं। साम्प्रदायिक शिक्षा, नीति और सिद्धान्त के उपदेश मुख्यतः साखी में है। इसकी भाषा सधुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी, पंजाबी तथा पूर्वी मिश्रित खड़ी बोली है।

कबीर उस युग के महान संत रामानन्द के शिष्य थे यह तो निर्विवाद ही है। रामानन्दजी का 'राम' आगे चलकर कबीर का निर्गुण व्यापक 'राम' हुआ। कबीर ने सर्वप्रथम जीवन की जटिल समस्याओं को सुलझाते हुए धर्म और दर्शन

के ऐसे सिद्धान्त स्थिर किये जो सरलता से जनता द्वारा हृदयङ्गम किये जा सकते थे। उनकी समदृष्टि ने उन्हें सर्वजनीन सार्वभौमता प्रदान की।

वह गृहस्थ थे यह निर्विवाद है। जुलाहा उनकी वृत्ति थी। काशी में रहने का प्रमाण है। मगहर में मृत्यु हुई यह निश्चय है।

हिन्दी साहित्य को कबीर की देन एक ईश्वरीय देन है। उनके काव्य के सम्बन्ध में बड़ी ही छानबीन सैकड़ों वर्षों से हो रही है। फिर भी अभी तक वह विवादास्पद है। हमें तथ्य लेना है और यह निश्चय है कि इस संत ने हिन्दी साहित्य को वह निधि दी है जो अक्षय है और अन्तर्राष्ट्रीय है। इस कवि को उत्पन्न कर हिन्दी साहित्य सदैव के लिए अमर हो गया है।

❀

[दोहा]

कबीर मेरी जाति कउ[1], सब कोउ हसने हारु[2]।
बलिहारी इस जाति कउ, जिह जपिओ सिरजनहार ॥१॥
कबीर डगमग[3] किआ करहि, कहा डुलावहिं[4] जीउ।
सरव सुख[5] को नाइको, राम नाम रस पीउ ॥ २ ॥
कबीर कंचन के कुण्डल बने, ऊपर लाल जड़ाउ।
दीसे दाधे[6] कान जिउ, जिन मनि नाही नांउ[7] ॥ ३ ॥
कबीर ऐसा एकु आधु जो, जीवत म्रितकु होइ।
निरभै होइ कै गुन रवै[8], जत पेखउ तत सोइ ॥ ४ ॥
कबीर जा दिन हउ[9] मुआ, पाछे भया अनन्दु।
मोहि मिलिओ प्रभु आपना, सगी भजहि गोबिंदु ॥ ५ ॥

१—को २—हँसने वाला ३—अस्थिरता ४—लालच करना ५—सुख ६—जले हुए ७—नाम ८—ईश्वर ९—मैं।

कबीर सब ते हम बुरे, हम तजि भलो समु कोइ।
जिनि ऐसा करि बूझिआ, मीतु हमारा सोई॥ ६॥
कबीर चन्दन का बिरवा[1], भला बेढ़िओ ढाक पलास।
ओइ भी चन्दन होइ रहे, बसे जु चंदन पास॥ ७॥
कबीरा बाँसु बड़ाई बूड़िआ, इउ मत डूबहु कोइ।
चन्दन के निकटे बसै, बाँसु सुगन्ध न होइ॥ ८॥
कबीर हज जह फिरिओ, कहुतक ठाँओ ठाँइ।
इक राम सनेही बाहरा, ऊजरू[2] मेरैं भाइ॥ ९॥
कबीर माइआ[3] डोलनी[4], पवन[5] झकोलन हारु।
सन्तहु माखन खाइआ, छाछि पीऐ संसारु॥१०॥
कबीर माया डोलनी, पवन[6] बहैं हिवधार[7]।
जिन बिलोइआ तिन पाइआ, भवर[8] बिलोवनहार॥११॥
कबीर माया चोरटी, मुसिमुसि लावै हाट।
एक कबीरा ना मुसै, जिनि कीन्ही बारहबाट[9]॥१२॥
कबीर सूखु न एह युग, करहि जो बहुतै मीत[10]।
जो चितु राखै एक सिउ[11], ते सुख पावै नीत॥१३॥
कबीर जिसु मरनै तै जगु डरै, मेरे मनु आनन्दु।
मरने ही ते पाइऐ, पूरन परमानन्दु॥१४॥
राम पदारथ पाइकै, कबीर गांठि न खोलु।
नहीं पटण[12] नहीं पारखी, नहीं गाहकु नहि मोलु॥१५॥
कबीर तासिउ प्रीति करि, जाको ठाकुरु[13] राम।
पण्डित, राजे भूपती, आवहँ कउने काम॥१६॥
कबीर प्रीति एक सिंउ कीए, आन दुबिधा जाइ।
भावै लांबे केस करु, भावै धररि मुड़ाइ॥१७॥

१—सन्त रूपी वृक्ष २—उजाड़ ३—माया ४—मटकी ५—मथानी (प्रणायाम रूपी) ६—प्राणायाम रूपीधार ७—घृतधार ८—ब्रह्म (दूसरा कोई) ९—नष्ट-भ्रष्ट १०—मित्र ११—एक से (ब्रह्म से) १२—नगर १३—मालिक।

कबीर जगु काजल की कोठरी, अंध परे तिस माँहि।
हउ बलिहारी तिन्ह कउ, पैसि जो नीकस जाँहि ॥१८॥

कबीर इहु तनु जाइगा, सकहु तो लेहु बहोरि[1]।
नांग पावहुँ ते गये, जिनके लाख करोरि ॥१९॥

कबीर यह तन जाइगा, कवनै मारग लाइ।
कै संगत कर साध की, कै हरि के गुन गाइ ॥२०॥

कबीर मरता मरता जगमुआ, मरि भी न जानिआ कोइ।
ऐसै मरने जो मरै, वहुरि न मरना होइ ॥२१॥

कबीर मानुस जनमु दुर्लभ हैं, होइ न बारैबार।
जिउ बन फल पाके भुइ गिरहि, बहुरि द लागै डार ॥२२॥

कबीरा तुही कबीर[2] तू, तोरो नाउ कबीरु[3]।
राम रतन तब पाइऐ, जउ पहिले तजहि[4] सरीरु ॥२३॥

कबीर झंखु न झंखीऐ[5], तुमरो कहिओ न होइ।
करम करीम[6] जो कर रहे, मेटि न साकै कोई ॥२४॥

कबीर कसौटी राम की, झूठा टिकै न कोइ।
राम कसउटी जो सहैं, जो मरि जीवा होइ ॥२५॥

कबीर बेड़ा जर जरा, फूटे छेद हजार।
हरुए हरुए तिर गये, डूबे जिन सिर भार ॥२६॥

कबीर हाड़ जरै जस लाकरी, केस जरे जस घास।
इहु जग जरता देखि कै, भया कबीरु उदासु ॥२७॥

कबीर गरबु न कीजीऐ, चाम लपेटे हाड़।
हैं वर[7] ऊपर छत्रतर[8], ते पुनि धरनी गाड़ ॥२८॥

कबीर गरबु न कीजिऐ, ऊँचा देखि अवासु।
आजु कालि भुंइ लेटणा, ऊपरि जामै घासु ॥२९॥

१–बचा लेना २–सर्वोपरि ब्रह्म ३–महान् ४–मुक्त होना ५–ग्लानि करना ६–दयालु ७–श्रेष्ठ घोड़े ८–नीचे।

कबीर गरब न कीजिऐ, रंकु न हँसीऐ कोइ।
आजहु सु नाउ समुद्र[1] महि, किआ जाने किया होई ॥३०॥

कबीर ऐसा कोई न जनमियो, अपने घर[2] लावै आगि।
पाँचउ लरिका[3] जारि कै, रहैं राम लव लाग ॥३१॥

कबीर समुंदु[4] न छोड़िऐ, जउ अति खारो[5] होइ।
पोखरि पोखरि ढूंढ़ते, भलो न कहिहैं कोई ॥३२॥

कबीर मनु निरमल भया, जैसा गंगा नीरु।
पाछो लागो हरि फिरै, कहत कबीर कबीर ॥३३॥

कबीर हरदी पीअरी, चूना ऊजल भाइ।
राम सनेही तउ मिलै, दोनउ बरन गँवाइ ॥३४॥

कबीर हरदी पीरतनु, हरै चून चिनु न रहाइ।
बलिहारी इह प्रीत कउ, जिह जाति बरन कुलु जाइ ॥३५॥

कबीर मेंहदी कर घालिआ[6], आपु पिसाइ पिसाइ।
तैं त्यह बात न पूछियै, कबहु न लाई पाइ[7] ॥३६॥

कबीर बैद मुआ रोगी मुआ, मूआ समु संसारु।
एकु कबीरा ना मुआ, जिह नाही रोवन हार ॥३७॥

कबीर जैसी होइ परी, मन को भावतु कीन।
मरने ते किआ डरपना, जब हाथ सिंधडरा[8] लीन ॥३८॥

कबीर कुकरु राम को, मोतिया मेरो नाँउ।
गले राम की जेवरी[9], जहँ खींचे तहँ जाऊँ ॥३९॥

कबीर सात समुन्दहि मसि[10] करउ, कलम करउ बनराइ[11]।
बसुधा[12] कागदु[13] जउ करउ, हरि जसु लिखनु न जाइ ॥४०॥

१–संसार सागर २–शरीर ३–पंच इंद्रियाँ ४–गुरु समुद्ररूप ५–क्रोधी ६–तह्रेया छिछलागुरु ७–पैर ८–सती स्त्रियों का सती होने पर सिंधौरा लेना ९–रस्सी १०–स्याही ११–बन के वृक्ष १२–पृथ्वी १३–कागज।

कबीर जो हम जंत्र[1] बजावते, टूटि गई सभ तार।
जंत्र बिचारा का करे, चले वजावन हार[2] ॥४१॥
मारग मोती बीखरे, अन्धानिकसियो आइ।
जोति विना जगदीस की, जगत उलंघे जाइ ॥४२॥
कबीर साधू कउ मीलने जाइऐ, साथि न लीजै कोई।
पाछे पाँव न दीजियै, आगे होइ सो होइ ॥४३॥
कबीर देखि कै किह कहउँ, कहे न को पतिआइ।
हरि जैसा तैसा उही, रहउँ हरखि गुन गाइ ॥४४॥
कबीर चकई जउ निसि बीछुरै, आइ मिलइ परभाति।
जो नर विछुरे सम सिउ, ना दिन मिलै न राति ॥४५॥
कबीर काल करंता अबहि करु, अब करंता सुइतालु[3]।
पाछे कछू न होइगो, जउ सिर पर आवै कालु ॥४६॥
कबीर कउड़ी कउड़ी जोरि कै, जोरै लाख करोरि।
चलती वार न कछू मिलिओं, लई लँगोटी तोरि ॥४७॥
कबीर रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि मन का अभिमानु।
ऐसा कोई दासु होइ, ताहि मिलै भगवानु ॥४८॥
ऊँच भवन कनकामनी, सिखर धुजा फहराइ।
ता वे भली मधूकरी, संत संग गुनु गाइ ॥४९॥
कबिरा जहाँ गिआनु तहँ धरमु है, जहाँ झूठु तह पाप।
जहाँ लोभु तहँ कालु है, जहाँ छिमा तहँ आप[4] ॥५०॥
कबीर सेवा का दुइ भले, एकु सन्तु एकु रामु।
राम जु दादा मुकुति को, सन्तु जपावै नामु ॥५१॥
कबीर भली मधुकरी, नाना विध को नाजु।
दावा काहू को नहीं, वड़ा देस बड़ राजु ॥५२॥
कबीर पालि समूहा सरवरु भरा, पी न सकै कोइ नीर।
भाग वड़े तो पाइ यो तू, भरि भरि पीउ कबीर ॥५३॥

१–यन्त्र शरीर २–आत्मा। ३–क्षण ४–ईश्वर

कवीर परभाते तारे खिसहि, तिडइहु खिसै सरीरु।
ए दुइ आखर न खिसहि, सो गहि रहिओ कवीर ॥५४॥
कबीर कोठी काठ की, दह दिसि लागी आगि।
पण्डित पण्डित नलमुए, मूरख उबरे भागि ॥५५॥
कवीर संसा दूरि करि, कागज देइ बिहाइ।
बावन आखर सोधि कै, हरि चरनो चितलाइ ॥५६॥
कवीर सन्त न छाँडै सन्तई, कोटिक मिलइ असन्त।
मलया गिरि भुजंगम बेढिओ, त सीतलता न तजंत ॥५७॥
कबीर मन सीतलु भइआ, पाइया ब्रह्म गिआनु।
जिन जुआला जग जारिआ, ते जन उदक समान ॥५८॥
कबीर सारी सिरजन हार की, जानै नाही कोइ।
कै जानै आपन धनी, कै दासु दिवानो होइ ॥५९॥
कवीर भली भई जो भङ, परिअ गई सम धूलि।
ओरा गरि पानी भइआ, जाइ मिलिओ ढल कूलि ॥६०॥
कवीरा धूल सकेलि के, पुरिआ बाँधी देत।
दिवस चारि को पेखना, अंत खेह को खेह ॥६१॥
कबीर सूरज चाँद कै, उदै भई सम देह।
गुरु गोबिन्द के विनु मिले, पलट भई सम खेह ॥६२॥
जहँ अनभउ तहँ भै नहीं, जह भउ तहँ हरि नाहि।
कहिओ कबीर विचारि कै, सन्त सुनहु मन माहे ॥६३॥
कबीर जिनहु किछु जानिआ नहीं, तिन सुख नींद बिहाइ।
हमहु न बूझा बूझना, पूरी परी बलाइ ॥६४॥
कबीर मुद्धा मुनारे किआ, चढ़हि साईं न बहिरा होइ।
जा कारन तूं वाग देहि, दिलही भीतर जोइ ॥६५॥
सेख सबूरी बाहर किआ, हज कावै जाइ।
कवीर जाकर दिल सावत नहीं, ताकउ कहाँ खुदाइ ॥६६॥
कवीर अलह क करि बंदगी, जेहि सुमिरत दुख जाइ।
दिल महँ साईं परगटै, बुझै बलन्ती नाहि ॥६७॥

कबीर जोरी कीए ज़ुलुम हैं, क़हता नाउ हलालु।
दफतर लेखा माँगियै, तब होइ गो कवन हवालु ॥६८॥

कबीर गुरु लागा तब जानिऐ, मिटै मोह तन ताप।
हरस सोग दाझै नहीं, तब हरि आपहि आप ॥६९॥
कबीर राम कहनु महि भेदु हैं, तामहि एकु विचारु।
सोई राम सभै कहहिं, सोइ कउतुक हार ॥७०॥

कबीर रामै राम कहु, कहिबे माहि विवेक।
एकु अनेकहिं मिलि गइआ, एक समाना एक ॥७१॥
कबीर जाघर साधन सेबीअहि, हरि की सेवा नाहि।
ते घर मरघट सारिखे, भूत बसहिं तिन माँहि ॥७२॥
कबीर गूँगा हुआ बावरा, बहरा हुआ कान।
पाँवहु ते पिंगल भइया, मारिआ सतगुरु बान ॥७३॥
कबीर सतगुरु सूरमे, वाहिआ बानु जु एकु।
लागत ही भुंइ गिरि परिआ, परा करेजे छेकु ॥७४॥

कबीर निरमल बूंद अकास की, परि गइ भूमि विकार।
बिन सङ्गत इव मानई, होइ गई झठ छार ॥७५॥
कबीर निरमल बूँद अकास की, लीनी भूमि मिठाइ।
मानिक सिआने पचि गए, ना निरवारी जाइ ॥७६॥

कबीर हज काबे होइ गइआ, केती बार कबीर।
साईं मुझ महि किअ खता, मुखहु न बोलै पीर ॥७७॥
कबीर जीउ जो मारहि जोरु करि, कहते हेहिजु हलालु।
दफतर दइ जब काढि हैं, होइगा कवन हवालु ॥७८॥

कबीर जोरू किआ सो जुलमु हैं, लेइ जवाब खुदाइ।
दफतर लेखा नीकसै, मार मुहैं मुहि खाइ ॥७९॥

कबीर मेरा मुझ महिंकिछु नहीं, जो किछु हैं सो तेरा।
मेरा तुझ कउ सउँपते, किआ लागै हैं सो मेरा ॥८०॥

कबीर तूँ तूँ करता तू हुआ, मुझ महि रहा न हूँ।
जब आपा पर का मिटि गइआ, जत देखउ तत तूँ ॥८१॥

कबीर हरि का सुमिरन जो करै, सो सुखिआ संसारि।
इत उत कतहि न डोलई, जिस राखै सिरजन हार ॥८२॥

कबीर टालै टोले दिनु गइआ, बिआजु बढ़तउ-जाइ।
ना हरि भजिओ न खतु फटिओ, कालु पहुँचो आई ॥८३॥

कबीर कुकरू भउकना, करंग पिछै उठि धाइ।
करमी सतगुरु पाइआ, जिन हउ लिआ छड़ाइ ॥८४॥

कबिरा हमरा को नहीं, हम किसहू के नाहिं।
जिन इहु रचनु रचाइया, तिस ही माहि समाहि ॥८५॥

कबीर कीचड़ आटा गिरि परिआ, किछो न आइओ हाथ।
पीसत पीसत चाबिआ, सोइ निबहिआ साथ ॥८६॥

कबीर मनु जानै सब बात, जानत ही अवगुन करै।
काहे की कुसलात, हाथ दीप कूए परै ॥८७॥

कबीर लागी प्रीति सुजान सिउ, बरजै लोगु अजानु।
ता सिउ टूटी किउ बनै, जाके जीअ परानु ॥८८॥

कबीर जो मैं चितवउ ना करै, किआ मेरे चितवे होइ।
अपना चितविआ हरि करै, जो मेरे चिति न होइ ॥८९॥

कबीर कैसो कैसो कूकियै, न सोइए असार।
रात दिवस के कूकने, कबहू के सुनै पुकार ॥९०॥

कबीर राम रतनु मुखु कोथरी, पारख आगे खोलि।
कोइ आइ मिलैगो माहकी, लेगो महँगे मोलि ॥९१॥

कबीर तखर रूपी राम हैं, फल रूपी बैरागु।
छाइआ रूपी साधु हैं, जिनि तजिआ बाद बिवादु ॥९२॥

कबीर ऐसा बीज बोइ, बारह मास फलन्त।
सीतल छाया गहिर फल, पंखी केल करन्त ॥९३॥

कबीर दाता तरुवर दइआ, फल उपकारी जीवन्त।
पंखी चले दिसावरी, बिरखा सुफल फलन्त ॥९४॥

कबीर एक घड़ी आधी घरी, आधेहुँ ते आध।
भगतन सेती गोसटे, जो कीने सो लाभ ॥९५॥

नीचे लोइन करि रहौ, ले साजन घट माहि।
सम रस खेलउ पीअ सउ, किसी लखावउ नाहि ॥९६॥

आठ जाम चौसठ घरी, तुअ निरखत रहै जीउ।
नीचे लोइन किउ करउ, सम घट देखहु पीउ ॥९७॥

हरि हैं खाँड़ु रेतु महि बिखरी, हाथी चुनीन जाइ।
कह कबीर गुरु भली बुझाई, चींटी होइ के खाइ ॥९८॥

कबीर जउ तुहि साध पिरन्न की, पाके सेती खेलु।
काँची सरसो पेरिकै, न खलि भई न तेलु ॥९९॥

कबीर जउ ग्रिह करहि त धरम करु, नाहि त करु बैरागु।
बैरागी बंधनु करै, ताको बड़ो अभागु ॥१००॥

———

१—गूदड़ी।

गोस्वामी तुलसीदास

[तुलसी]

हिन्दी साहित्याकाश के चन्द्र महाकवि तुलसीदास की सतसई हिन्दी काव्य ग्रन्थों में एक विशेष स्थान रखती है। भाषा, भाव और विचार की दृष्टि से 'तुलसी सतसई' की उच्चता सराहनीय है।

तुलसीदास के जन्म के सम्बन्ध में चाहे लोगों में मतभेद हो, किन्तु मरण संवत् १६८० वि० तो प्रसिद्ध है। जन्म संवत् अधिकतर लोग १५५४ मानते हैं। इससे कहा जाता है कि इन्हें दीर्घायु मिली।

दोहों की शृङ्गारिक दोहा परम्परा को यह चेतावनी देते हैं। अपने भगवान राम की स्मृति में भक्ति और नीति की वाणी वेद के सूत्रों के समान इस कवि ने दोहों की रचना की। कला और काव्य पक्ष के साथ-साथ अध्यात्म और मानुषी प्रक्रिया से पूर्ण तुलसीदास की चमत्कारिक लेखनी ने दोहा साहित्य में एक अभूत पूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया। विद्वत्ता की तो कहीं-कहीं ऐसा पुट इस महात्मा ने रख दिया है कि बड़-बड़ विद्वान भी अर्थ करते हुए चिन्तित देखे गये हैं। अध्यात्म की पूर्ण परम्परा समझे हुए अर्थ समझना तो दुर्लभ है ही अर्थ समझना और लगाना दो कठिन प्रतीत होते हैं। जिस विषय का जिस दोहे में वर्णन इस महाकवि ने किया है उसका प्रभाव मस्तिष्क में अक्षुण्य बना रहता है। नीति के दोहे तो साधारण जनता की जिह्वा से सदैव सुनने में आते रहते हैं।

कल्पना को उड़ान, भावों की गम्भीरता तो मानो इस कवि की अपनी ही वस्तु है। आध्यात्म पक्ष के दोहे आध्यात्मिकता से परिपूर्ण होकर अपनी एक निश्चित अध्यात्म परम्परा का परिचय देते हैं।

भाषा में कवि की अपनी निश्चित गतिविधि है। अवधी भाषा का प्रयोग करते हुए देखा गया है कि जहाँ कवि का निवास स्थान रहा है वहाँ की भी भाषा का उन पर पूर्ण प्रभाव पड़ा है और वहाँ के व्यवहारिक शब्दों का उन्होंने बड़ी ही

सुन्दरता से प्रयोग किया है किन्तु फिर भी भाषा की साहित्यिकता का रूप बिगड़ने नहीं पाया। तात्कालिक प्रचलित ब्रजभाषा और अवधी का जो साहित्यिक रूप उन्होंने स्थिर किया उनकी सतसई में वही पुष्ट रूप है।

गोस्वामी जी के दोहे हिन्दी भाषा के शृङ्गार तो हैं ही, साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य की वह स्थायी सम्पत्ति भी है।

❀

[दोहा]

नमो नमो श्रीराम प्रभु, परमातम परधाम।
जेहि सुमिरे सिधि होत है, तुलसी जन-मन-काम ॥ १ ॥

जगत-जननि श्री जानकी, जनक राम सुभ-रूप।
जासु कृपा अति अघ-हरनि, करनि बिबेक अनूप ॥ २ ॥

बुद्धि-बिनय-गति-हीन सिसु, सुपथ कुपथ गत-ग्यान।
जननि जनक तेहि किमि तजहिं, तुलसी सरिस अजान ॥ ३ ॥

तुलसी सुभ-कारन समुझि, गहत राम रस नाम।
असुभ-हरन सुचि-सुभ-करन, भगति-ज्ञान-गुन-धाम ॥ ४ ॥

अहि-रसना थन-धेनु रस, गनपति द्विज गुरुवार।
माधव सित सिय-जनम-तिथि, सतसैया अवतार ॥ ५ ॥

१—सिधि=सिद्ध। २—जननि=माता। जनक=पिता। ३—अजान=अज्ञानी। ४—रस=औषधि। ५—अहिरसना=सर्प की जीभ, २। थम धेनु=गाय का थन, ४। रस=छः रस, ६। गणपति द्विज=गणेश के दाँत, १। अर्थात सम्वत् १६४२। गुरुवार=बृहस्पतिवार। माधवसित=बैसाख शुक्ल पक्ष। सम्वत् १६४२ वैसाख शुक्ल ९ दिन गुरुवार यह सतसई की रचना काल है।

भरन हरन अति अमित बिधि, तत्त्व-अरथ कबिरीति ।
सांकेतिक सिद्धान्त-मत, तुलसी बदत बिनीति ॥ ६ ॥

बिमल बोध कारन सु-मति, सतसैया सुख-धाम ।
गुरु-मुख पढ़ि गति पाइ हैं, बिरति भगति अभिराम ॥ ७ ॥

सहस नाम मुनि-भवति सुनि, तुलसी-बल्लभ नाम ।
सकुचत हिय हँसि निरखि सिय, धरम-धुरंधर राम ॥ ८ ॥

आसन दृढ़ आहार दृढ़, सुमति ज्ञान दृढ़ होय ।
तुलसी बिना उपासना, बिनु दुलहे की जोय ॥ ९ ॥

प्रेम सरीर प्रपंच रुच, उपजी अधिक उपाधि ।
तुलसी भली सो बैदई, वेगि बाँधई ब्याधि ॥१०॥

तुलसी राम कृपालु तें, कहि सुनाउ गुन दोस ।
होय दूबरी दीनता, परम पीन सन्तोस ॥११॥

तुलसी खोटे दास कर, रघुपति राखत मान ।
ज्यों मूरख उपरोहितहिं, देत दान जजमान ॥१२॥

तुलसी हम सों राम सों, भलो मिलो हैं सूत ।
छोड़े बनइ न संग्रहे, ज्यों घर माँह कपूत ॥१३॥

कोटि बिघन संकट बिकट, कोटि सत्रु जौं साथ ।
तुलसी बल नहिं कर सकैं, जो सुदिष्ट रघुनाथ ॥१४॥

६—भरन=ग्रहण । हरन=छोड़ देना । सांकेतिक=पदों के अर्थ की वास्तविक संकेत । सिद्धान्त मत=मत के सिद्धान्त अर्थात् निरूपण । सतसई के रचना के सम्बन्ध में कवि का विनीत भाव । ७—सु-मति=उत्तम बुद्धि । विरति=वैराग्य । गति=मुक्ति । ८—भाव—तुलसी वल्लभ नाम सुन कर सीता जी रामचन्द्र को देख सकुचाती, हँसती हैं कि जानकी वल्लभ से कैसे तुलसी वल्लभ हुए । कवि की हास्योक्ति दोहे में कितनी सुन्दर है । ९—जोय=बधू । १०—प्रपंच रुज=मोह रूपी रोग । ११—पीन=मोटा । १२—उपरोहितहिं=पुरोहित को । १३—सूत=मेल । १४—सुदिष्ट=अच्छी दृष्टि, कृपा ।

डोलत बिपुल बिहंग बन, पियत पोखरिन बारि।
सु-जस धवल चातक नवल, तोर भुवन दस-चारि ॥१५॥

चढ़त न चातक चित कबहुँ, प्रिय पयोद के देख।
यातें प्रेम पयोधि बर, तुलसी जोग न रोख ॥१६॥

मान राखिबो माँगिबो, पिय सों सहज सनेहु।
तुलसी तीनो तब फबै, जब चातक मत लेहु ॥१७॥

राम राम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय।
लरिकाई को पौरिवो, धोखेहु बूड़ि न जाय ॥१८॥

तुलसी बिलँब न कीजिए, भजि लीजै रघुबीर।
तन-तरकस से जात हैं, स्वास सरीखे तीर ॥१९॥

असन बसन सुत नारि सुख, पापिह के घर होय।
संत-समागम राम-धन, तुलसी दुरलभ होय ॥२०॥

तुलसी मीठे बचन तें, सुख उपजत चहुँओर।
बसी करन यह मन्त्र हैं, परिहरु बचन कठोर ॥२१॥

तुलसी राम सनेहु करु, त्यागु सकल उपचार।
जैसे घटत न अङ्क नव, नव कर लिखत पहार ॥२२॥

गिरत अण्ड संपुट अरुण, जमत पक्ष अन्यास।
अलल सुवन उपदेस केहि, जात सु उलटि अकास ॥२३॥

१५—बारि=जल। चातक=पपीहा। १६—पयोद=बादल। १७—फबै=अच्छा लगे। १८—खता=धोखा। १९—तन-तरकस=शरीररूपी तरकस। २०—संत समागम=सतसंग। २१—परिहर=छोड़। २२—उपचार=उपाय। पहार=पहाड़ा। नौ के पहाड़ों का जोड़ नौ ही होता है। २३—अलल=पक्षी विशेष। इस पक्षी के लिए प्रसिद्ध है कि यह पृथ्वी पर नहीं बैठता, उड़ता ही रहता है। जब इसे अण्डा देना होता है तो पृथ्वी की ओर नीचे चलता और बीच ही में इसके लाल रंग के अंडे निकल कर फूटते हैं और उसमें से बच्चे निकल कर पुन: आकाश को उड़ जाते हैं।

शूर यथा गण जीति अरि, पलटि आव चलि गेह।
तिमि गति जानहिं राम की, तुलसी सन्त सनेह ॥२४॥
दुख सुख दोनों एक सम, सन्तन के मनमाहि।
मेरु उदधिगत मुकुर जिमि, भार भीजिबो नाहिं ॥२५॥
शरणागत तेहि राम के, जिन्ह दिय धी सिय रूप।
जा पत्नी घर उदय भय, नाशै भ्रम तम कूप ॥२६॥
संग दोष ते भेद अस, मधु मदिरा मकरन्द।
गुरु गम ते देखहिं प्रकट, पूरण परमानन्द ॥२७॥
दोषहु गुरभ की रीति यह, जानु अनल गति देखि।
तुलसी जानत सो सदा, जेहि बिबेक सुबिसेखि ॥२८॥
यद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तामरस लाल।
संतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहिं मराल ॥२९॥
रावण रावण को हन्यो, दोष राम कह नाहिं।
निज हित अनहित देखु किन, तुलसी आपहिं माहिं ॥३०॥
सुमिरु राम भजु राम पद, देखु राम सुनु राम।
तुलसी समुझहु राम कह, अहनिशि यह तव काम ॥३१॥
शिला शाप मोचन चरण, हरण सकल जञ्जाल।
भरण करन सुख सिद्धि तर, तुलसी परम कृपाल ॥३२॥

२४—गण जीति अरि=शत्रुओं को जीतकर। पलटि आव=लौटते हैं। सनेह=प्रेम। २५—मेरु उदधि गत मुकुर=मेरु पर्वत जो समुद्र में आइने की तरह देखती हैं, न तो भार है न जल में भी जाता है। २६—धी=बुद्धि, सिय रूप। जा पत्नी घर उदय भय=राम की पत्नी सीता रूप धी के उदय होते। २७—मधु=शहद। मकरन्द=रस। गुरु गम=गुरु के उपदेश। २८—अनल=अग्नि। २९—तोय=जल। तामरस=कमल। ३०—आपहिं महिं=अपने में। ३१—अहनिशि=रात दिन। ३२—शिला=पत्थर, अहिल्या। शापमोचन=शाप को नाश करने वाले।

आदि चन्द चञ्चल सहित, भजु तुलसी तजु काम।
अघगञ्जन रञ्जन सुजन, भव भञ्जन सुख धाम ॥३३॥

गिरिजा पति कल आदि इक, हरि नक्षत्र युधि जान।
आदि अन्द भजु अन्त पुनि, तुलसी शुचि मन मान ॥३४॥

वीर कौन सह मदन सर, धीर कौन रत राम।
कवनक्रूर हरि पद विमुख, को कामी वश वाम ॥३५॥

तुलसी तगण विहीन नर, सदा नगण के बीच।
तिनहि यगण कैसे लहैं, परे सगण के कीच ॥३६॥

बैर मूल हित बचन, प्रेम मूल उपकार।
दोहा सरल सनेह मय, तुलसी करे विचार ॥३७॥

मृदु मेचक शिररुह रुचिर, शीश तिलक भ्रूबङ्क।
धनु शर गहि जनु तड़ित युत, तुलसी लसत मयङ्क ॥३८॥

३३–भाव=आदि चन्द=चन्द्र का आदि, अर्थात् चन्द्र का नाम राजीव उसका आदि 'रा' और चञ्चल=मन इसका आदि 'म' दोनों मिलकर 'राम' हुए—उनके गुण कहे हैं। ३४–भाव=गिरिजा पति अर्थात् पार्वती के पति 'शिव' इसके आदि में एक कला बढ़ाने से दीर्घ 'सी' हुई। हरि अर्थात् सूर्य इसका नाम सविता भी है, इसके अन्त का 'ता' मिलाने से 'सीता' हुआ। नक्षत्र अर्थात् तारा उसके अन्त का 'रा' और युधि अर्थात् संग्राम इसके अन्त का 'म' मिलाकर हुआ 'राम'। इन्हीं सीता राम का भजन करो। ३५–मदनसर=बामदेद के कारण। ३६–भाव=नगण का फल उदासीनता और नगण का फल सुख है। यगण का फल वुद्धि की वृद्धि है और सगण की फल मृत्यु है। अर्थात् जो सुख में पड़ा है उदासीन नहीं है उसकी वुद्धि वृद्धि कैसे होगी। उसका अन्त तो मृत्यु ही है। ३७–हित हर=भलाई के हरने वाले। दोहा-दो अर्थात् दो (बैर और प्रेम) + हा अर्थात् नाश। अर्थात् सम रहना। ३८–इस दोहे में उत्प्रेक्षा अलङ्कार में मुख शोभा वर्णन है। मृदु=कोमल। मेचक=श्याम। शिररुह=सिर पर शोभायमान। भ्रूबङ्क=टेढ़ी भौहें। तड़ित=विजली। मयङ्क=चन्द्र।

आदि द है मध्ये र है, अन्त द है सो बात।
राम विमुख के होत हैं, राम भजन से जात ॥३९॥
देश काल करता करम, बुधि विद्या गति हीन।
ते सुरतरु तर दारिदी, सुरसरि तीर मलीन ॥४०॥
धरम धुरीण सुधीर धरं, धारण वर पर पीर।
धरा धराधर सम अचल, वचन न बिचल सुधीर ॥४१॥
चन्द्र अनल नहिं हैं कहूँ, झूठो बिना विवेक।
तुलसी ते नर समुझिहैं, जिनहिं ज्ञान रस एक ॥४२॥
सतसैया तुलसी सतर, तम हर पर पद देत।
तुरित अविद्या जन दुरित, बरतुल सम करि लेत ॥४३॥
यह करतब सब ताहि कों, यहि ते यह परमान।
तुलसी मरम न पाइहौ, बिन सद्गुरु बरदान ॥४४॥
रोम रोम ब्रह्माण्ड बहु, देखत तुलसी दास।
बिन देखे कैसे कोऊ, सुनि माने विश्वास ॥४५॥
मात पिता निज बालकहिं, करहिं इष्ट उपदेश।
सुनिमाने विधि आप जेहि, निज सिर सहे कलेश ॥४६॥
तुलसी वोलन बूझई, देखत देख न जोय।
तिन शठ को उपदेश का, करब सयाने कोय ॥४७॥

३९—आदि द, मध्य र ओर अन्त द मिलकर हुआ दरद। ४०—देश काल= समय असमय ओर अवसर का विचार। ४१—धरम धुरीण=धर्म के धारण करने वाले। धरा=पृथ्वी। धराधर=पर्वत। ४२—चन्द्र अनल=चन्द्रमा में अग्नि, अर्थात् वियोगियों को दाहक। ४३—सतर=शीघ्र। पर पद=मोक्ष पद। वरतुल=श्रेष्ठता के योग्य। ४४—मरम=भेद। ४५—रामरूप की व्यापकता का वर्णन। ४६—बिधि= ब्रह्मा। ब्रह्मा ने अपने पिता विष्णु के उपदेश से नाभि से कमल पैदा करके सदा क्लेश सहते हैं। भाव यह है कि माता-पिता भी अपने ही इष्ट का उपदेश देते हैं, और यह नहीं देखते कि इसका क्या अन्त होगा, अर्थात् स्वतन्त्र होकर भजन कैसे करें। ४७—बूझई=समझते हैं। जोय=देखकर। शठ=दुष्ट।

जो न सुनै तेहि का कहिय, कहा सुनाइय ताहि।
तुलसी तेहि उपदेश ही, तासु सरिस मति जाहि ॥४८॥
निज नैनन दीखत नहीं, गही आँधरे बाँह।
कहत मोहवश तेहि अधम, परम हमारे नाँह ॥४९॥
काह भयो बन बन फिरे, जो बनि आयो नाहिं।
बनते बनते बन गयो, तुलसी घर ही माहिं ॥५०॥
बर मेधा मानहु गिरा, धीर धर्म निग्रोध।
मिलन त्रिवेणी मलहरणि, तुलसी तजहु विरोध ॥५१॥
बसत क्षमा गृह जासु मन, वाराणसी न दूरि।
बिलसति सुरसति भक्ति जँह, तुलसी नय कृत भूरि ॥५२॥
गए पलटि आवै नहीं, हैं सो कारु पहिचान।
आजु जेई सोइ कालिह हैं, तुलसी भर्म न मान ॥५३॥
मानस उर बर सम मधुर, राम सुयश शुचि नीर।
हटेउ वृजिन बुधि बिमल भइ, बुध नहिं अगम सुधीर ॥५४॥
प्रेम उमंग कवितावली, चली सरित शुचि धार।
राम बराबरि मिलन हित, तुलसी हर्ष अपार ॥५५॥
जानहिं हंस रसाल कहँ, तुलसी सन्त न आन।
जाकी कृपा कटाक्ष ते, पाये पद निर्बान ॥५६॥
चुम्बक आहन रीति जिमि, सन्तन हरि सुखधाम।
जान तिरीक्षर सम सफरि, तुलसी जानत राम ॥५७॥

४८—उपदेशही=उद्देश देते ही। ४९—नाँह=मालिक। ५०—बनि आयो=भक्ति नहीं की। ५१—वर=श्रेष्ठ। मेधा=वुद्धि। गिरा=सरस्वती। निग्रोध=अक्षयवट। ५२—क्षमागृह=क्षमा के मध्य। वाराणसी=काशी। नय=नीति। कृत=कर्म। ५३—पलटि=लौट कर। भरम=भ्रम। ५४—उर बर=श्रेष्ठ हृदय। मानस=मानसरोवर। वृजिन=दुःख। ५५—सरित=नदी। बराबरि=बराबर। ५६—रसाल=जल। हंस=सूर्य। निर्वाण=मोक्ष। ५७—आहन=लोहा। तिरीक्षर=तेज। सफरि=मछली।

कर्म मिटाये मिटत नहिं, तुलसी किये विचार।
करतब ही को फेर हैं, या विधि सार-असार ॥५८॥

एक किये होय दूसरो, बहुरि तीसरो अङ्ग।
तुलसी कैसेहु ना नशै, अतिशै कर्म तरङ्ग ॥५९॥

सन्तन की गति उर्विजा, जानहु शशि परमान।
रमित रहत रसमय सदा, तुलसी रति नहिं आन ॥६०॥

जातरूप जिमि अनल मिलि, ललित होत तन ताय।
सन्त शीतकर सीय तिमि, लसहि राम पद पाय ॥६१॥

या जग ते नयहीन नर, बरबस दुःख मग जाहि।
प्रकटत दुरत महादुखी, कहँ लग कहियत ताहि ॥६२॥

तुलसी कवनेहुँ योग ते, सत संगति जब होय।
राम मिलन संशय नहीं, कहहिं सुमति सब कोय ॥६३॥

समता स्वारथ हीन ते, होत सु बिशद विवेक।
तुलसी यह तीनहीं फबे, जिनहिं अनेकन एक ॥६४॥

५८—करतव=कर्त्तव्य। सार-असार=तत्व तथा तत्व रहित।

५९—कर्म तरङ्ग=कर्म की लहर। भाव यह है कि तीन प्रकार के कर्मों (क्रियमाण, संचित, प्रारब्ध) में एक करने से दूसरा और दूसरा करने से तीसरा स्वयं सिद्ध होता है।

६०—उर्विजा=सीता जी। रति=प्रीति। शशि परमान=चन्द्र के समान शीतल।

६१—जातरूप=सोना। ताय=तपा कर। शीतकर सीय=शीतल (स्वभाव, सीता, क्षमा कारिणी।)

६२—नयहीन=नीति हीन, अर्थात् अनीतिरत। प्रकटत दुरत=आवागमन में पड़े।

६३—कवनेहुँ योग=किसी प्रकार संयोग से।

६४—फबे=अच्छी लगे। स्वारथ=सुख के अंग—१—सुन्दरी बनिता, २—सुगंध, ३—सुन्दर वस्त्र, ४—गानतान, ५—ताम्बूल, ६—उत्तम भोजन, ७—वाहन आदि।

स्वारथ सो जानहु सदा, जासों विपति नसाय।
तुलसी गुरु उपदेश बिनु, सो किमि जानी जाय ॥६५॥
कारज स्वारथ हित करै, कारण करै न होय।
मनवा ऊख विशेष ते, तुलसी समुझहु सोय ॥६६॥
यह मन महँ निश्चय धरहु, है कोउ अपर न आन।
कासन करत विरोध हठि, तुलसी समुझ प्रमान ॥६७॥
सर्व सकल तैं है सदा, विश्लेषित सब ठौर।
तुलसी जानहिं सुहृद ये, ते अति मति शिरमौर ॥६८॥
सदा सगुण सीता रमण, सुख सागर बलधाम।
जन तुलसी परखे परम, पाये पद विश्राम ॥६९॥
तब लगि हम ते सब बड़े, जब लगि है कछु चाह।
चाह रहित कह को अधिक, पाय परम पद थाह ॥७०॥
तन निमित्त जहँ जो भयो, तहाँ सोई परमान।
जिन जाने माने तहाँ, तुलसी कहहिं सुजान ॥७१॥
कारज रत कर्त्ता समुझु, दुःख सुख भोगत सोय।
तुलसी श्रीगुरुदेव बिन, दुःखप्रद दूरि न होय ॥७२॥
होत पिता ते पुत्र जिमि, जानत को कहु नाहिं।
जब लग सुत परसो नहीं, पितु पद लहैं न ताहि ॥७३॥

६५—किमि=किस प्रकार।

६६—मनवा=मन।

६७—अपर=दूसरा। कासन=किससे।

६८—तैं है=तू है। विश्लेषित=विभाजित।

६९—परखै=परीक्षा किया।

७०—तब लगि=तब तक।

७१—तन निमित्त=तन के कारण। सुजान=ज्ञानवान।

७२—दुःखप्रद=दुःख देने वाला। रत=लगा हुआ।

७३—परसो=ग्रहण करना, स्पर्श करना।

जाहि कहत हैं सकल सो, जेहि कह तन सों ऐन।
तुलसी ताहि समुझि हिये, अजहुँ करहु चित चैन ॥७४॥

गुरु करिबो सिद्धान्त यह, होय यथारथ बोध।
अनुचित उचित लखाय उर, तुलसी मिटै विरोध ॥७५॥

सत संगति को फल यही, संशय लहै न लेश।
ह्वै स्थिर शुचि सरलचित, पावै पुनि न कलेश ॥७६॥

बिन काटे तरुवर यथा, मिटै कवन विधि छाहँ।
त्यों तुलसी उपदेश बिन, निस्संशय कोउ नाहँ ॥७७॥

अपनो करतव आप लखि, सुनि सुनि आपु विचार।
तौ तोहिं कहँ दुखदा कहा, सुखदा सुमति अधार ॥७८॥

ब्राह्मण वर विद्या विनय, सुरति विवेक निधान।
पथ रति अनय अतीत मति, सहित दया श्रुति मान ॥७९॥

बिनय छत्र सिर जासु के, प्रति पद पर उपकार।
तुलसी सो क्षत्री सही, रहित सकल व्यभिचार ॥८०॥

वैश्य बिनय मग पग धरै, हरै कटुक बर बैन।
सदय सदा शुचि सरलता, हीय अचल सुख ऐन ॥८१॥

७४—कहतब=कहना। ऐन=घर।

७५—यथारथ=सच्चा। बोध=ज्ञान।

७६—लेश=किञ्चित। शुचि=पवित्र।

७७—तरुवर=वृक्ष। निस्संशय=संशय रहित।

७८—करतब=कर्म। दुःखदा=दुःख देने वाला। सुमति=सुबुद्धि।

७९—ब्राह्मण के कर्म—सुरति विवेक निधान=विचारों से अच्छी रति। पथरति=सुमार्ग में प्रीत। अनय अतीत=अनीति सहित। श्रुति=वेद।

८०—क्षत्रिय के कर्म—विनयछत्र=नम्रता का छत्र। प्रतिपद=हर समय।

८१—वैश्य के कर्म—कटुक=कड़ुवी। सदय=दयावान। अचल=स्थिर बुद्धि।

शूद्र क्षुद्र पथ परिहरै, हृदय बिप्र पद मान।
तुलसी मन सम तासु मति, सकल जीव सम जान ॥८२॥

समुझत है संतोष धन, याते अधिकन आन।
गहत नहीं तुलसी कहत, ताते अवुध मलान ॥८३॥

तुलसी जब लगि लखि परत, देह प्राण को भेद।
तब लग कैसे कै मिटै, करम जनित वहु खेद ॥८४॥

नाम कहत बैकुंठ सुख, नाम कहत अध खान।
तुलसी तातें उर समुझि, करहु नाम पहिचान ॥८५॥

निज गुन घटन न नाग नग, हर्षि न पहिरत कोल।
गुञ्जा प्रभु भूषण करे, ताते बढ़े न मोल ॥८६॥

देइ सुमन करि बास तिल, परिहरि खरि रसलेत।
स्वारथ हित भूतल भरे, मन मेचक तन सेत ॥८७॥

तुलसी मित्र महा सुखद, सवहि मित्र की चाड़।
निकट भये बिलसत सुखय, एक छपाकर छाड़ ॥८८॥

खल नर गुण मानै नहीं, मेटहि दाता ओप।
जिमि जल तुलसी देत रबि, जलद करत तेहि लोप ॥८९॥

८२–शूद्र के कर्म—क्षुद्रपथ=नीच राह। सम=बराबर।

८३–अबुध=मूर्ख। मलान=दुःखी।

८४–कैसे कै=किस प्रकार। खेद=दुःख।

८५–अघ=पाप। भाव यह है कि प्रभु की आराधना शुद्ध मन से करने से ही मुक्ति मिलती है।

८६–नाग नग=गज मुक्ता। गुञ्जा=घुँघची।

८७–परिहरि=छोड़ कर। खरि=खली। मेचक=काला।

८८–चाड़=चाह। सुखय=उत्तम सुख। छपाकर=चन्द्र। मित्र=सूर्य। अमावस को चन्द्र सूर्य एक ही राशि पर होने से चन्द्र की कला क्षीण हो जाती है।

८९–ओय=रूप का प्रकाश। रवि=सूर्य, जो कभी-कभी बादलों में छिप जाता है।

बड़े राम रत जगत में, कै परहित चित जाहि।
प्रेम पैज निबही जिन्हैं, बड़ो सो सब ही चाहि ॥९०॥

उरग तुरग नारी नृपति, नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित, इनहिं न पलटत बार ॥९१॥

मन्त्र तन्त्र तन्त्री त्रिया, पुरुष अश्वधन पाठ।
प्रतिगुण योग वियोग ते, तुरित जाहिं ये आठ ॥९२॥

नारि नगर भोजन सचिव, सेवक सखा अगार।
सरस परिहरे रङ्ग रस, निरस विषाद विकार ॥९३॥

सहि कुबोल साँसति असम, पाय अनट अपमान।
तुलसी धर्म न परिहरहिं, ते बर सन्त सुजान ॥९४॥

तुलसी असमय के सखा, साहत धर्म विचार।
सुकृत शील स्वभाव ऋजु, राम शरण आधार ॥९५॥

बैर सनेह सयानपहि, तुलसी जो नहिं जान।
तेकि प्रेम मग पग धरत, पशु बिन पूछ विषान ॥९६॥

९०—रामरत=राम में प्रेम। परहित=परोपकार। पैज=प्रतिज्ञा।

९१—उरग=सर्प। तरग=घोड़ा। परखत रहब=देखते रहिये, इनसे सावधान रहें।

९२—तुरित जाहिं=तुरन्त ही नष्ट होते हैं।

९३—सचिव=मंत्री। सखा=मित्र वर्ग। अगार=आगार, गृह। भाव यह है कि इन्हें प्रतिदिन सेवित रहने से ये निरस, विषाद और विकार युक्त होते हैं, किन्तु कुछ दिन अलग रहने से रसयुक्त होते हैं।

९४—कुबोल=कठोर बोल। सांसति=क्लेश। असम=विषम संकट। अनट=अन्याय। बर=श्रेष्ठ।

९५—असमय=आपत्ति। ऋजु=कोमल।

९६—सयान पहि=विचारवान। विषान=सींग।

चढ़ो बधूरहि चङ्ग जिमि, ज्ञान ते शोक समाज।
करम धरम सुख संपदा, तिमि जानिबो कुराज ॥९७॥

जो जगदीश तो अति भलो, जो महीश तो भाग।
जन्म जन्म तुलसी चहत, राम चरण अनुराग ॥९८॥

बरन बिशद मुक्ता सरिस, अर्थसूत्र सम तूल।
सतसैया जग बर विशद, गुण शोभा सुख मूल ॥९९॥

दोहा चारु बिचारु चलु, परिहरि बाद बिवाद।
सुकृत सीम स्वारथ अवधि, परमारथ मर्याद ॥१००॥

९७—बघूरहिं=बवंडर। चङ्ग=पतङ्ग। कुराज=बुरे राज्य। भाव यह है कि बवंडर में चढ़ी पतङ्ग और ज्ञान से शोक जैसे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार कुराज से धर्म कर्म सुख और धन का नाश होता है।

९८—यहाँ तर्क यह है कि राम या शिव की उपासना दोनों मेरे लिए परम सौभाग्य की बात है।

९९—सतसई की प्रशंसा।

१००—सतसई के दोहों की प्रशंसा।

श्रीमती रत्नावली देवी

हिन्दी साहित्य में स्त्री दोहाकारों का प्रायः अभाव है। ऐसी दशा में रत्नावली देवी का स्थान बहुत की महत्वपूर्ण और विशेष आदरणीय है।

इनके पिता का नाम पं० दीनबन्धु पाठक था। यह संस्कृत के विद्वान और धार्मिक पुरुष थे। इनकी माता का नाम दयावती था। इन्ही देवी के गर्भ से संवत १५६७ वि० में इनका जन्म उनके पितृगृह वदरिया ग्राम जिला ऐटा में जो सोरों तीर्थ के पास है, हुआ था। इनके तीन भाई शिव, शंकर और शम्भु थे। यह दीनवन्धु जी की चौथी सन्तान थीं। इस विद्वान परिवार में जन्म लेकर कन्या रत्नावली भी शिक्षित और गुणज्ञ शीला कन्या थीं। यह माता-पिता और ग्राम वासियों की बड़ी दुलारी थीं।

संवत् १५८३ में तुलसी दास से इनका विवाह हुआ। एक बार रक्षा-बन्धन के अवसर पर यह अपने मायके आई। कहते हैं कि रात्रि को गंगापार कर तुलसीदास अपनी ससुराल पहुँचे और रत्नावली से साक्षात्कार किया। रत्नावली ने पति-प्रेम की सराहना के साथ-साथ भगवान के भी प्रेम की सराहना की। एक तो विचित्र उत्तेजना, जिसके वशीभूत होकर तुलसीदास ऐसी भीषण रात्रि में वहाँ आए थे और दूसरी ओर पत्नी का सौजन्यपूर्ण व्यवहार और प्रेम और भगवद-भक्ति की सराहना, इन सब मानसिक आघातों के कारण तुलसीदास को मानसिक वैराग्य हो गया।

रत्नावली पर कटुवाक्य कहने और उसके कारण तुलसीदास का वैरागी होना यह दोषारोपण तुलसी चरित्र चर्चा करने वाले जो करते हैं वह निराधार है। वास्तव में समय पर मनोवैज्ञानिक परिस्थितियाँ उनके रामभक्ति का कारण हुई। यह घटना संवत् १६०४ वि० की है।

तुलसीदास के चले जाने पर रत्नावली ने अपना जीवन भगवद्भक्ति और पति आराधना में व्यतीत किया। उनकी मृत्यु संवत् १६५१ वि० की है।

श्रीमती रत्नावली देवी का जीवन-चरित्र 'रत्नावली-चरित' श्री मुरली धर चतुर्वेदी कृत प्राप्त हुआ है। यह उनकी प्रामाणिक जीवनी है। इनके दोहों की चार हस्तालिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं। जिनमें दो में १११ और दो में २०१ दोहों की संख्या है। इन दोहों में एक भारतीय सांस्कृतिक नारी का उज्ज्वल चरित्र और उसकी वाणी का प्रभावपूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होता है।

भाषा की दृष्टि से दोहे व्रजभाषा के परिमार्जित रूप हैं। तत्सम और तद्भव का समान रूप से व्यवहार और एकरूपता है। भाव की दृष्टि से दोहे न तो कलात्मक हैं और न मस्तिष्क को थकान देने वाले ऊँचे उड़ान वाले, किन्तु भाव की सादगी और प्रसादगुण सराहनीय है। अलंकारों का भी यथास्थान प्रयोग है।

आप्तवाक्या, निजी अनुभव और आर्य संस्कृति का आधार दोहों में सम्यक् रूप से प्रस्फुटित हुआ है। दोहे उत्कृष्ट, ओजस्वी और हिन्दी भाषा के रत्न हैं। हिन्दी साहित्य को अपनी इस देवी पर गर्व है।

ॐ

[दोहा]

होइ सहज ही हौं कही, लह्यो बोध हिरदेस।
हौं रतनावली जँचि गई, पिय हिय काँच विसेस ॥ १ ॥
रतन दैव बस अमृत बिष, विष अमिरत बनि जात।
सूधी हू उलटी परै, उलटी सूधी बात ॥ २ ॥
रतनावलि औरै कछू, चहिय होइ कछु और।
पाँच पैंड़ आगे चलै, होनहार सक ठौर ॥ ३ ॥
भल चाहत रतनावली, विधि बस अनभल होइ।
हौं पिय प्रेम बढ़यो चह्यो, दयो मूल तें षोइ ॥ ४ ॥

३—पैंड़=पग। ४—मूल=जड़।

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

जानि परै कहुँ रज्जु अहि, कहुं अहि रज्जु लषात।
रज्जु-रज्जु अहि-अहि कबहुँ, रतन समय की बात ॥ ५ ॥
हों न नाथ अपराधिनी, तौउ छमा करि देउ।
चरननि दासी जान निज, बेगि मोरि सुधि लेउ ॥ ६ ॥
जदपि गए घर सों निकरि, मो मन निकरे नाहिं।
मन सों निकरौ ता दिनहिं, जा दिन प्रान नसाहिं ॥ ७ ॥
छमा करहु अपराध सब, अपराधिन के आय।
बुरी भली हौं आप की, तजौं न लेहु निभाय ॥ ८ ॥
कहाँ हमारे भाग अस, जो पिय दरसन देयँ।
वाहि पाछिली दीठि सों, एक बार लषि लेयँ ॥ ९ ॥
कबहुँ कि ऊगै भाग रवि, कबहुँ कि होइ विहान।
कबहुँ कि बिकसै उर कमल, रतनावलि सकुचान ॥१०॥
सोवत सों पिय जगि गये, जगिहु गई हों सोइ।
कबहुँ कि अब रतनावलिहिं, आय जगावें मोइ ॥११॥
सुवरन पिय संग हों लसी, रतनावलि सम कांचु।
तिहि बिछुरत रतनावली, रही कांचु अब सांचु ॥१२॥
राम जासु हिरदे बसत, सो पिय मम उर धाम।
एक बसत दोउ बसैं, रतन भाग अभिराम ॥१३॥
मोइ दीनों संदेस पिय, अनुज नंद के हाथ।
रतन समुझि जनि पृथक मोहि, जो सुमिरत रघुनाथ ॥१४॥
दुषनु भोगि रतनावली, मन महं जनि दुषियाइ।
पापनु फल दुष भोगि तू, पुनि निरमल ह्वै जाई ॥१५॥
रतनावलि भवसिंधु मधि, तिय जीवन की नाव।
पिय केवट बिन कौन जग, षेय किनारे लाव ॥१६॥
हों न उऋृन पिय सों भई, सेवा करि इन हाथ।
अब हों पावहुँ कौन बिधि, सदगति दीना नाथ ॥१७॥

५—रज्जु=रस्सी। अहि=सर्प। १४—नंद=नंददास।

पति पद सेवा सों रहित, रतन पादुका सेइ।
गिरत नाव सों रज्जु तिहि, सरित पार करि देइ ॥१८॥
मलिया सींची बिबिध बिधि, रतन लता करि प्यार।
नहिं बसन्त आगम भयो, तब लगि परयो तुसार ॥१९॥
नारि सोइ बड़भागिनी, जाके पीतम पास।
लषि लषि चष सीतल करै, हीतल लहै हुलास ॥२०॥
असन बसन भूषन भवन, पिय बिनु कछु न सुहाय।
भार रूप जीवन भयो, छिन छिन जिय अकुलाय ॥२१॥
पति गति पति वित मींति पति, पति गुर सुर भरतार।
रतनावलि सरबस पतिहि, बंधु बंद्य जगसार ॥२२॥
पति के सुप सुष मानती, पति दुष देषि दुषाति।
रतनावलि धनि द्वैत तजि, तिय पिय रूप लषाति ॥२३॥
सब रस रस इक ब्रह्म रस, रतन कहत बुधि लोय।
पै तिय कहँ पिय प्रेम रस, बिंदु सरिस नहिं सोय ॥२४॥
पिय सांचो सिंगार तिय, सब झूठे सिंगार।
सब सिंगार रतनावली, इक पिय विनु निस्सार ॥२५॥
नेह सील गुन वित रहित, कामी हूँ पति होय।
रतनावलि भल नारि हित, पूज्य देव सम होय ॥२६॥
अंध पंगु रोगी बधिर, सुतहि न त्यागति माय।
तिमि कुरूप दुरगुन पतिहि, रतन न सती बिहाय ॥२७॥
कूर कुटिल रोगी ऋनी, दरिद मंद मति नाह।
पाइ न मन अनषाइ तिय, सती करत निरबाह ॥२८॥
विपति कसौटी पै बिमल, जासु चरित दुति होइ।
जगत सराहन जोग तिय, रतन सती है सोइ ॥२९॥
सती बनत जीवन लगै, असती बनत न देर।
गिरत देर लागै कहा, चढ़िबो कठिन सुमेर ॥३०॥

२०—चष=नेत्र। २४—लोय=लोग। २८—दरिद=दरिद्र।

बारे पन सों मातु पितु, जैसा डारत बानि।
सो न छुटाये पुनि छुटत, रतन भयेहुँ सयानि ॥३१॥
नाच बिषय-रस गीत गँधि, भूषन भ्रमन बिचारु।
अंग राग आलस रतन, कन्यहिं हितन सिंगारू ॥३२॥
भूषन रतन अनेक जग, पै न सील सम कोइ।
सील जासु नैनन बसत, सो जग भूषन होइ ॥३३॥
सत्य-सरस-बानी रतन, सील लाज जे तीन।
भूषन साजति जो सती, सोभा तासु अधीन ॥३४॥
सुवरन-मय रतनावली, मनि मुकता हारादि।
एक लाज बिनु नारि कह, सब भूषन जग बादि ॥३५॥
ऊँचे कुल जनमें रतन, रूपवती पुनि होय।
धरम दया गुन सील बिनु, ताहि सराह न कोय ॥३६॥
बनिक फेरुआ भिच्छुकन, जनि कबहूँ पतिआइ।
रतनावलि जेई रुप धरि, ठग जन ठगत भ्रमाइ ॥३७॥
अनजाने जन को रतन, कबहुँ न करि बिसवास।
बस्तु न ताकी खाइ कछु, देइ न गेह निवास ॥३८॥
अनृत बचन मायारचन, रतनावली बिसारि।
माया अनिरत कारने, सती तजीं त्रिपुरारि ॥३९॥
अगिनि तूल चकमक दिया, निसि महँ धरहु सम्हारि।
रतनावलि जनु का समय, काज परे लेउ बारि ॥४०॥
आलस तजि रतनावली, यथा समय करि काज।
अब को करिबो अबहिं करि, तबहि पुरै सुख साज ॥४१॥
रतनावलि सब सों प्रथम, जगि उठि करि गृह काज।
सबनु सुवाइहि सोइ तिय, धरि सम्हारि गृह काज ॥४२॥

३२—गँधि=गन्ध, सुगन्ध। ३५—वादि=वेकार।
४०—चकमक=एक पत्थर विशेष।

तू मृग श्री ह्री धी रतन, तू तिय सकति महान।
तू अबला सबला बनै, धरि उर सती विधान ॥४३॥
सासु ससुर पति पद परसि, रतनावलि उठि प्रात।
सादर सेइ सनेह नित, सुनि सादर तेहि बात ॥४४॥
रतनावलि पति छांड़ि इक, जेते नर जग मांहिं।
पिता भ्रात सुत सम लषहु, दीरघ सम लघु आहिं ॥४५॥
सासु जिठानिहिं जननि सम, ननदहिं भगिनि समान।
रतनावलि निज सुत सरिस, देवर करहु प्रमान ॥४६॥
सौतिहि सखि सम व्यवहरौ, रतन भेद करि दूरि।
वासु तनय निज तनय गनि, लहौ सुजस सुख भूरि ॥४७॥
पति पितु जननी बंधु हितु, कुटुम परोसि विचारि।
यथायोग आदर करै, सो कुलवंती नारि ॥४८॥
धन जोरति मित व्यय धरति, घर की वस्तु सुधारि।
सूप करम आचार कुल, पतिरत रतन सु नारि ॥४९॥
जे न लाभ अनुसार जन, मित व्यय करहिं विचारि।
ते पाछे पछितात अति, रतन रंकता धारि ॥५०॥
चिनगारिहु रतनावली, तूलहिं देति जराय।
लघु कुसंग तिमि नारि को, पतिब्रत देत डिगाय ॥५१॥
छनहुँ न करि रतनावली, कुँलटा तिय को संग।
तनक सुधाकर संग सों, पलटति रजनी रंग ॥५२॥
धिकतिय सो परपति भजति, कहि निदरत जग लोग।
बिगरत दोऊ लोक तिहि, पावति बिधवा जोग ॥५३॥
एकहि जगदाधार तिमि, एकुहि तिय भरतार।
बचन सुजन को एकुही, रतन एकु जगसार ॥५४॥
घी का घट है कामिनी, पुरुष तपत अंगार।
रतनावली घी अगिन को, उचित न संग बिचार ॥५५॥

४३—सबला=बलवती। ५०—मितव्यय=थोड़ा व्यय। ५१—तूलहि=रुई।

बारे पन सों मातु पितु, जैसा डारत बानि।
सो न छुटाये पुनि छुटत, रतन भयेहुँ सयानि ॥३१॥
नाच बिषय-रस गीत गँधि, भूषन भ्रमन बिचारु।
अंग राग आलस रतन, कन्यहि हितन सिंगारू ॥३२॥

भूषन रतन अनेक जग, पै न सील सम कोइ।
सील जासु नैनन बसत, सो जग भूषन होइ ॥३३॥
सत्य-सरस-बानी रतन, सील लाज जे तीन।
भूषन साजति जो सती, सोभा तासु अधीन ॥३४॥
सुवरन-मय रतनावली, मनि मुकता हारादि।
एक लाज बिनु नारि कह, सब भूषन जग बादि ॥३५॥

ऊँचे कुल जनमें रतन, रूपवती पुनि होय।
धरम दया गुन सील बिनु, ताहि सराह न कोय ॥३६॥
बनिक फेरुआ भिच्छुकन, जनि कबहूँ पतिआइ।
रतनावलि जेई रुप धरि, ठग जन ठगत भ्रमाइ ॥३७॥
अनजाने जन को रतन, कबहुँ न करि बिसवास।
बस्तु न ताकी खाइ कछु, देइ न गेह निवास ॥३८॥
अनृत बचन मायारचन, रतनावली बिसारि।
माया अनिरत कारने, सती तजीं त्रिपुरारि ॥३९॥
अगिनि तूल चकमक दिया, निसि महँ धरहु सम्हारि।
रतनावलि जनु का समय, काज परे लेउ बारि ॥४०॥
आलस तजि रतनावली, यथा समय करि काज।
अब को करिबो अबहिं करि, तबहिं पुरै सुख साज ॥४१॥

रतनावलि सब सों प्रथम, जगि उठि करि गृह काज।
सबनु सुवाइहि सोइ तिय, धरि सम्हारि गृह काज ॥४२॥

३२—गँधि=गन्ध, सुगन्ध। ३५—बादि=बेकार।
४०—चकमक=एक पत्थर विशेष।

तू मृग श्री ह्री धी रतन, तू तिय सकति महान।
तू अबला सबला बनै, धरि उर सती विधान ॥४३॥
सासु ससुर पति पद परसि, रतनावलि उठि प्रात।
सादर सेइ सनेह नित, सुनि सादर तेहि बात ॥४४॥
रतनावलि पति छांड़ि इक, जेते नर जग मांहि।
पिता भ्रात सुत सम लषहु, दीरघ सम लघु आहिं ॥४५॥
सासु जिठानिहिं जननि सम, ननदहिं भगिनि समान।
रतनावलि निज सुत सरिस, देवर करहु प्रमान ॥४६॥
सौतिहि सखि सम व्यवहरो, रतन भेद करि दूरि।
वासु तनय निज तनय गनि, लहौ सुजस सुख भूरि ॥४७॥
पति पितु जननी बंधु हितु, कुटुम परोसि विचारि।
यथायोग आदर करै, सो कुलवंती नारि ॥४८॥
धन जोरति मित व्यय धरति, घर की वस्तु सुधारि।
सूप करम आचार कुल, पतिरत रतन सु नारि ॥४९॥
जे न लाभ अनुसार जन, मित व्यय करहिं बिचारि।
ते पाछे पछितात अति, रतन रंकता धारि ॥५०॥
चिनगारिहु रतनावली, तूलहिं देति जराय।
लघु कुसंग तिमि नारि को, पतिव्रत देत डिगाय ॥५१॥
छनहुँ न करि रतनावली, कुँलटा तिय को संग।
तनक सुधाकर संग सों, पलटति रजनी रंग ॥५२॥
धिकतिय सो परपति भजति, कहि निदरत जग लोग।
बिगरत दोऊ लोक तिहि, पावति विधवा जोग ॥५३॥
एकहि जगदाधार तिमि, एकुहि तिय भरतार।
बचन सुजन को एकुही, रतन एकु जगसार ॥५४॥
घी का घट है कामिनी, पुरुष तपत अंगार।
रतनावली घी अगिन को, उचित न संग बिचार ॥५५॥

४३—सबला=बलवती। ५०—मितव्यय=थोड़ा व्यय। ५१—तूलहि=रुई।

बारवधू रथ चढ़ि चलै, धारि रतन सिंगार।
पैदर दीन सती सरिस, होहि न महिमागार ॥५६॥
रतनावली जिय जानि तिय, पतिब्रत सकति महान।
मृत पतिहू जीवित करयो, सावित्री सतिवान ॥५७॥
पति सनमुख हँसमुख रहति, कुसल सकल गृह काज।
रतनावलि पति सुखद तिय, धरति जुगल कुल लाज ॥५८॥
जो मन बानी देह सों, पियहि नाहिं दुष देति।
रतनावलि सो साधवी, धनि सुख जग जस लेति ॥५९॥
उद्यापन तीरथ बरत, जोग जग्य जप दान।
रतनावलि पति सेव बिन, सबहि अकारथ जान ॥६०॥
सात पैग जा सँग भरे, ता सँग कीजै प्रीति।
सब विधि ताहि निबाहिये, रतन बेद की रीति ॥६१॥
जाने निज मन दयो, ताहि न दीजै पीठि।
रतनावलि तापै रषहु, सदा प्रेम की दीठि ॥६२॥
धनसुष जनसुष बंधुसुष, सुत सुख सबहिं सराहि।
पै रतनावलि सकल सुष, पिय सुष पटतर नाहिं ॥६३॥
माता पिता भ्रातादि सब, जे परिमित दातार।
रतनावलि दातार इक, सरबस को भरतार ॥६४॥
आपनु मन रतनावली, पिय मन माँह करि लीन।
सतीसिरोमनि होइ धनि, जस आसन आसीन ॥६५॥
चतुर बरन को विप्र गुरु, अतिथि सबन गुरु जानि।
रतनावलि तिमि नारी को, पति गुरु कह्यो प्रमानि ॥६६॥
देति मन्त्र सुठि मीत सम, नेहिनि मातु समान।
सेवति पति दासी सरिस, रतन सुतिय धनि जान ॥६७॥

५६—बारवधू=वेश्या। ६३—पटतर=बराबरी।
६५—जस =यश।

रतन देह पति को भयो, तोहि कहा अधिकार।
पति समुहे पाछे रतन, रहि पति चित अनुसार ॥६८॥

बचन हेत हरिचंद नृप, भये सुपच के दास।
बचन हेत दसरथ दयो, रतन सुतहि बन बास ॥६९॥

नर अधार बिनु नारि तिमि, जिमि स्वर बिनु हल होत।
करनधार बिनु उदधि जिमि, रतनावलि गति पोत ॥७०॥

रतनावलि धरमहि रखत, ताहि रखावत धर्म।
धरमहि पातत सो पतत, जेहि धरम को मर्म ॥७१॥

रतन करहु उपकार पर, चहहु न प्रति उपकार।
लहहिं न बदलो साधु जन, बदलो लघु व्योहार ॥७२॥

परहित जीवन जासु जग, रतन सफल हैं सोइ।
निजहित कूकर काक कपि, जीवहिं का फल होइ ॥७३॥

अस करनी कर तू रतन, सुजन सराहैं तोइ।
तुव जीवन लख मुद लहैं, मरे करें सुधि रोइ ॥७४॥

सोइ सनेही जो रतन, करहि विपति में नेह।
सुख सम्पति लखि जन बहुरि, बनें नेह के गेह ॥७५॥

पियति परें जे जन रतन, निबहैं प्रीति पुरानि।
हितू मीत सतिभाय तें, पै न बहुरि जिय जानि ॥७६॥

रतनावलि मुखबचन हूँ, इक सुख दुःख को मूल।
सुख सरसावत बचनं मधु, कटु उपजावत सूल ॥७७॥

रतनावलि कांटो लग्यो, वैदनि दयो निकारि।
बचन लग्यो निकस्यो न कहुँ, उन डारो हिय फारि ॥७८॥

भलें होइ दुरजन गुनी, भली न तासों प्रीति।
विषधर मनिधर हू रतन, डसत करत जिमि भीति ॥७९॥

६९–सुपच=डोम।

७२–प्रति उपकार=बदला।

भल एक्लो रहिवो रतन, भलो न खल सहबास।
जिमि तरु दीमक संग लहैं, आपन रूप बिनास ॥८०॥

कुल के एक सपूत सों, सकल सपूती नारि।
रतन एक ही चंद जिमि, करत जगत उजियारि ॥८१॥

बालहि सीख सिखाय अस, लखि लखि लोग सिहायं।
आसिष दें हरषें रतन, नेह करें पुलकायं ॥८२॥

शस्त्र शास्त्र बीना तुरग, बचन लुगाई लोग।
पुरुष विशेषहिं पाइ जे, बचन सुजोग अजोग ॥८३॥

फूलि फलहि इतरायं खल, जग निदरहिं सतरांय।
साधु फूलि फलि नय रहें, सब सों नय बतरांय ॥८४॥

एकु एकु आखरु लिखें, पोथी पूरति होइ।
नेकु धरम तिमिनित करौं, रतनावलि गति होइ ॥८५॥

पांच तुरग तन रथ जुरे, चपल कुपथ ले जात।
रतनावलि मन सारथिहि, रोकि रुकें उतपात ॥८६॥

रतन न पर दूषन उगटि, आपनु दोष निवारि।
तोहि लखें निरदोष वे, दें निज दोष विसारि ॥८७॥

करहु दुषी जनि काहु को, निदरहु काहु न कोय।
को जानैं रतनावली, आपनि का गति होय ॥८८॥

रतन जनक धन ऋन उऋन, बहु जग जन गन होइ।
पै जननी ऋन सों उऋन, होइ विरल जन कोइ ॥८९॥

स्रम सों बाढ़त देह बल, सुष संपति धन कोष।
बिनु स्रम बाढ़त रोग तन, रतन दरिद दुष दोष ॥९०॥

ऊपर सों हरि लेत मन, गांठि कपट उर माहिं।
बेर सरिस रतनावली, बहु नर नारि लषाहिं ॥९१॥

८४—निदरहिं=निरादर करते हैं। ८७—उगटि=खोल।

उर सनेह कोमल अमल, ऊपर लगें कठोर।
नरियर सम रतनावली, दीसहिं सज्जन थोर ॥९२॥

मन बानी अरु करम में, सत जन एक लषायँ।
रतन जोइ विपरीत गति, दुरजन सोइ कह्वायँ ॥९३॥

जे उपकारी को रतन, करत मूढ़ अपकार।
ते जग अपजस लहत पुनि, मरें नरक अधिकार ॥९४॥

रतनावलि नइ चलि सदा, नइ सुभाइ बतराइ।
नारि प्रसंसा नइ रहे, नित नूतन अधिकाइ ॥९५॥

रतनावलि करतव समुझि, सेइ पतिहि निषकाम।
तप तीरथ ब्रत फल सकल, लहैं बैठि घर वाम ॥९६॥

पुन्य धरम हित नित पतिहि, रहि बढ़ाय उतसाह।
ताहि पुन्य निज गुनि रतन, पुन्य करत जोनाह ॥९७॥

सती धरम धरि जांचि नित, हरि सों पति कुसलात।
जनम जनम तुव तिय रतन, अचल रहैं अहिवात ॥९७॥

जो तिय मन बच काय सों, पिय सेवति हुलसाति।
तेहि चरननु की धूर धरि, रतनावली सिहाति ॥९९॥

जासु चरित वर अनुसरै, सतवंती हरषाइ।
ता इक नारी रतन पै, रतनावलि बलि जाइ ॥१००॥

———

९२—नरियर=नारियल। १००—बलि=निछावर।

श्री अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना

[रहीम]

हिन्दी साहित्य को अपने इस कवि पर गर्व है। यह गर्व उस समय और भी दूना हो जाता है जब हमें यह ध्यान आता है कि यह मुसलमान थे। इनकी साहित्य सेवा बड़े महत्व की है। यह वास्तव में हृदय पक्ष के भावुक कवि थे।

इनके पिता प्रसिद्ध वीर और अकबर के अभिभावक बैराम खाँ ख़ानख़ाना थे। रहीम का जन्म संवत १६१० वि० में लाहौर में हुआ। इनके पिता बैराम खाँ का जब अकबर से मनोमालिन्य बढ़ा तो यह स्त्री-पुत्र सहित हज्ज को चल दिए। रास्ते में एक अफगान ने पुरानी शत्रुता के कारण इन्हें मार डाला। उस समय अब्दुर्रहीम खानखाना की व्यवस्था केवल ४ वर्ष की थी। अकबर ने यह समाचार सुनकर इन्हें और इनकी माँ को आगरा बुला लिया। यहीं इनके पठन-पाठन का प्रबन्ध हुआ। तीव्र बुद्धि होने के कारण इन्होंने अरबी, फारसी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

इनका विवाह खाने आजम की बहिन माहबानू बेगम से हुआ था।

यह अकबर के साथ युद्ध में जाया करते थे, और अन्त में अपनी वीरता, अनुभव और विजय के कारण इन्हें गुजरात की सूबेदारी मिली। इसके पश्चात् इन्हें उच्चपद प्राप्त हुए और जागीरें भी खूब मिलीं।

यह शाहजादा सलीम के शिक्षक भी नियत किए गए। अकबर के मरने के बाद जहाँगीर के राजत्व काल में इन्हें अनेक राजनीतिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। जिससे कई बार इन्होंने अविश्वासी सिद्ध होकर सजा भी भोगी।

इनका देहावसान संवत १६८२ वि० में हुआ। इनका मकबरा भग्नावस्था में दिल्ली में अब तक वर्तमान है।

यह प्रसिद्ध दानी और गुणग्राहकता के लिए विशेज प्रसिद्ध थे। इन्होंने अपने धन-जन की दुरवस्था अपने जीवन काल ही में देख ली थी। इन्हें संसार का कटु अनुभव था।

इन्होंने अनेक कवियों को आश्रय दिया। गंग को एक छप्पय पर छत्तीस लाख रुपया दे डाला था। महाकवि तुलसीदास से भी इनकी घनिष्ठता थी।

हिन्दी साहित्य में इनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनके दोहे हिन्दी पाठकों को सूक्ति के रूप में सदा याद रहते हैं। जिनमें हृदय की सच्ची अनुभूति और भावुकता का अच्छा सम्मिश्रण है। इनके बरवे हिन्दी साहित्य के शृङ्गार हैं।

रहीम की सतसई प्रसिद्ध है। किन्तु अभी तक उसका कोई हिन्दी साहित्य में अस्तित्व नहीं। किन्तु जो भी दोहे इनके अब तक उपलब्ध हुए हैं वह इन्हें एक उच्च कवि सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। दोहों के अतिरिक्त इस कवि ने और छन्दों में भी रचना की है, किन्तु हिन्दी साहित्य में यह दोहाकार के ही रूप में विशेष प्रसिद्ध हैं। इनके नीति विषयक और शिक्षा-प्रद दोहे इनके अनुभव और हृदय के सच्चे परिचायक हैं।

'बरवै नायिका भेद' यह ग्रन्थ भी रहीम की एक अमूल्य रचना है। रीतिकाल के प्रथम इस विषय की रचना में पारंगत इस कवि की बुद्धि विकास का यह ग्रन्थ अच्छा परिचायक है। जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में सूर के पदों, बिहारी के दोहों और तुलसीदास के चौपाइयों का श्रेष्ठ स्थान है, उसी प्रकार रहीम के बरवे भी हिन्दी साहित्य में उनकी एक अपनी वस्तु हैं।

इसके अतिरिक्त 'नगर शोभा', 'मदनाष्टक', 'शृङ्गार सोरठा', 'बरवै' तथा फुटकर पदों के संग्रह भी प्राप्त हुए हैं। 'रहीमकाव्य' संस्कृत और हिन्दी मिश्रित पदों की रचना है। जिसमें कवि के संस्कृत ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है।

'खेट कौतुकम्' संस्कृत और फारसी भाषाओं की मिश्रित रचना है।

यह ज्योतिष ग्रन्थ है। जिससे प्रकट होता है कि कवि को ज्योतिष का भी ज्ञान था।

इन्होंने 'वाक़यात बाबरी' का तुर्की से फारसी में अनुवाद किया था और फारसी में एक दीवान की भी रचना की थीं।

इनकी रचनाएँ व्रज और अवधी दोनों भाषाओं में हैं। इनका भाषा पर अच्छा अधिकार था।

कहते हैं मुसलमान होते हुए भी यह राम और कृष्ण में पूर्ण भक्ति रखते थे। इनके दोहों से यह बात स्पष्ट झलकती है।

रहीम और हिन्दी के अन्य कवियों की रचनाओं में अनेक सादृश्य भाव हैं। यह बात पूर्ववर्ती और परवर्ती दोनों कवियों में पाई जाती है। संस्कृत काव्य के आधार पर भी इन्होंने अपने कुछ छन्दों की रचना की है। किन्तु उनका रूप इतना सुन्दर और उक्तियाँ इतनी परिमार्जित हैं कि यह कवि की अपनी-सी वस्तु जँचती है। ऐसा हिन्दी साहित्य के अच्छे-अच्छे अनेक कवियों में पाया जाता है।

महात्मा कबीरदास, सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, रसखान, बिहारी, मतिराम और हिन्दी के अन्य कवियों की रचनाओं से इनकी भाव साम्यता साफ झलकती है। जिनमें पूर्ववर्ती कवियों के लिए आप यह भले ही कहें कि उनकी रचनाओं से रहीम प्रभावित हुए थे, किन्तु परवर्ती कवियों के लिए यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी लुभावनी उक्तियों से बिहारी आदि कवि भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। यह इस कवि के लिए और भी गौरव की बात है।

भाषा पर रहीम का पूर्ण अधिकार था। इनकी टकसाली भाषा तुलसीदास के टक्कर की है।

रहीम के दोहे हिन्दी भाषा को गौरवान्वित करने में बड़े सहायक हुए हैं।

रहीम के दोहे हिन्दी साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं।

[दोहा]

अच्युत - चरन - तरंगिनी, शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी, की जो इन्दव भाल ॥१॥

अधम बचन ते को फल्यो, बैठि ताड़ की छाँह।
रहिमन काम न आय है, ये नीरस जग माँह ॥२॥

अनुचित बचन न मानिए, जदपि गुरायसु गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ ते, सुजस भरत को बाढ़ि ॥३॥

अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ॥४॥

अमर बेलि बिनु मूल की, प्रति पालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥५॥

अमृत ऐसे बचन ते, रहिमन रिस की गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥६॥

आदर घटे नरेस ढिग, बसे रहे कछु नाहिं।
जो रहीम कोटिक मिले, धिक जीवन जगमाँहिं ॥७॥

१–अच्युत-चरन-तरंगिनी=विष्णु भगवान के चरणों से निकली गंगा जी। शिव-सिर-मालति-माल=शिव जी के मस्तक पर मालती पुष्प की माला के समान शोभित। इंदव-भाल=चन्द्र से शोभायमान मस्तक वाले, शिव जी।

२–नीरस=रसहीन, तत्वहीन।

३–गुरायसु=(गुरु + आयसु) बड़ो की आज्ञा। गाढ़ि=कठिन।

४–गाढ़े=कठिन।

५–अमरबेलि=वृक्षों पर फैलने वाली बिना जड़ और पत्तों की एक विशेष लता।

६–रिस=क्रोध। गाँस=मनोमालिन्य।

७–ढिग=पास। कोटिक=करोड़ों।

उरग, तुरँग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथिआर।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार ॥८॥

अंतर दाव लगी रहै, धुँआ न प्रकटै सोय।
कै जानै जिय आपनो, जा सिर बीती होय ॥९॥

कहि रहीम संपति-सगे, बनत बहुत बहु रीत।
विपति-कसौटी जे कसे, सोही साँचे मीत ॥१०॥

काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी के भये, नदी सिरावत मौर ॥११॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भी धीम।
केहि की प्रभुता नाहिं घटि, पर घर गए रहीम ॥१२॥

खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक मिलाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत यही सजाय ॥१३॥

खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान ॥१४॥

जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यह रहीम जग जोय।
मड़ए तर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय ॥१५॥

८—उरग=साँप। तुरँग=घोड़ा।

९—दाव=अग्नि।

१०—सम्पति-सगे=धन के साथी। विपति-कसौटी=विपत्ति रूपी कसौटी। कसे=ठीक उतरे।

११—काजसरै=काम निकलना।

१२—धीम=छोटा। प्रभुता=प्रभुत्व, बड़प्पन।

१३—करुए मुखन=कड़वी बात बोलने वाले, कटुभाषी।

१४—खैर=(फारसी) खैर, कुशल। खून=हत्या। मदपान=मदिरा पान।

१५—गाँठ=मनोमालिन्य या ईख की गाँठ। मड़एतर की गाँठ=वर-वधू का गँठ बन्धन।

जिहिं अंचल दीपक दुर्‌यो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात ॥१६॥
जिहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिचभौन।
तासों दुःख-सुख कहन की, रही बात अब कौन ॥१७॥
जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि-बुझि कै सुलगाहिं ॥१८॥
जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत घाम औ मेह ॥१९॥
जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलत रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोईं भीम ॥२०॥
तबहीं लौ जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम ॥२१॥
दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥२२॥
धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज ॥२३॥
नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर, अरु मीठे पर लोन ॥२४॥
पावस देखि रहीम मन, कोयल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भए, हमको पूछत कौन ॥२५॥

१६—दुर्‌यो=छिपाया गया। १७—भौन=घर।
१८—दाहे=जलाए। १९—देह=शरीर।
२०—पेट लागि=पेट के लिए। २१—धीम=कम। कुचित गति=बुरी दशा।
२२—वित हानि=धन का नाश। २३—रज=धूल। मुनि पत्नी=अहिल्या।
२४—सलोने=नमकीन।
२५—दादुर=मेढक। यथा—'तुलसी' पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमहिं पूछिहैं कौन॥

मोहन छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराँय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय ॥२६॥

बड़े बड़ाई न करैं, बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल ॥२७॥

भावो काहू ना दही, भावी दह भगवान।
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जान ॥२८॥

मान सहित विष खाय के, संभु भए जगदीस।
बिना मान अमृत पिए, राहु कटायो सीस ॥२९॥

यों रहीम दुःख-सुख सहस, बड़े लोग सह सांति।
उवत चंद जेहि भाँति सों, अथवत ताही भाँति ॥३०॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहिगै सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल ॥३१॥

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।
परबस परे परोस बस, परे मामिला जानि ॥३२॥

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिलै, मिले गाँठ पड़ जाय ॥३३॥

२६—परछवि=दूसरे की शोभा। पथिक=राहगीर।

२७—बड़ाई=आत्मप्रशंसा। बड़े बोल बोलना=बढ़कर बातें करना।

२८—भावी=भविष्य। भावीदह=भविष्य के नाश करने वाले।

२९—जगदीश=जग के स्वामी शिव। राहु=एक राक्षस जिसके देव रूप होकर अमृत पीने पर भगवान ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट लिया था, और जिसका रुण्ड राहु ओर मुण्ड केतु अमर हुए।

३०—साँति=शान्ति। उवत=उदित होता है। अथवत=अस्त होता है।

३१—कहिजै सरग पताल=उलटा-सीधा कह गई।

३२—हित अनहित=मित्र शत्रु। मामिला=मुकदमा।

३३—गाँठ=मनोमालिन्य।

रहिमन विगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम ॥३४॥

रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात।
बड़े बड़े समरथ भए, तौ न कोऊ मर जात ॥३५॥

रन बन व्याधि विपत्ति में, रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गए कि सोय ॥३६॥

रहिमन मनहि लगाइ के, देखि लेहु किन कोय।
न: को बस करिबो कहा, नारायण बस होय ॥३७॥

रहिमन यह तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दै, गरूए राखि बटोर ॥३८॥

रहिमन रहिला की भली, जो परसै चितलाय।
परसत मन मैला करै, सो मैदा जरि जाय ॥३९॥

रहिमन रिस को छाँड़ि कै, करौ गरीबी भेस।
मीठो बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस ॥४०॥

रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार।
चोरी करि होरी रची, भई छनिक में छार ॥४१॥

रहिमन विपदा हू भली, जो थोरै दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥४२॥

रीति प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत ॥४३॥

३४—तऊ=तिस पर भी। ३५—भेषज=दवाई। काल=मृत्यु। समरथ=समर्थ।
३६—जननी जठर=माँ का पेट। ३७—नर=मनुष्य। नारायण=ईश्वर।
३८—हलुकन=हलके, नीच। गरुए=भारी, सज्जन। ३९—रहिला=चला।
४०—रिस=क्रोध। नै=नम्र। ४१—वित्त=धन। छनिक=क्षण। छार=राख, भस्म।
४२—हित अनहित=मित्र, शत्रु। ४३—गोत=गोत्र, वंश। बहुरि=फिर।

रूप, कथा, पद, चारुपट, कंचन, दोहा, लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति, मोल रहीम विसाल ॥४४॥

सब को सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम ॥४५॥

समय दसा कुल देखि कै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥४६॥

समय परे ओछे बचपन, सब के सहे रहीम।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे भीम ॥४७॥

समय पाय फल होत है, समय पाय झरि जात।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछितात ॥४८॥

समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक ॥४९॥

ससि, संकोच, साहस, सलिल, मान, सनेह, रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम ॥५०॥

कहि रहीम इक दीप तें, प्रकट सबै दुति होय।
तन-सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोय ॥५१॥

काह करौं बैकुंठ लै, कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो, जो गल पीतम बाँह ॥५२॥

४४—रूप=सुन्दरता। पद=छन्द। चारु पट=सुन्दर वस्त्र। लाल=रत्न।
४५—हित=मित्रता। ४६—कुल=वंश।
४७—ओछे=नीच, तुच्छ। ४८—फल=कार्य। झरि जात=नष्ट हो जाता है।
४९—समय चूक=अवसर निकल जाना। चूक=भूल। हूक=दुःख।
५०—सीम=सीमा।
५१—दुति=शोभा। तन-सनेह=प्रेम। दृग-दीपक=नेत्र रूपी दीपक।
५२—ढाक=मदार। गल=गले। पीतम वाँह=प्रेमी की बाँह, अर्थात् साथ।

गुन ते लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि ।
कूपहु ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि ॥५३॥

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेश ।
जापर विपदा पड़त है, सो आवत यहि देश ॥५४॥

छोटन सों सोहैं बड़े, कहि रहीम यह रेख ।
सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख ॥५५॥

जाल परे जल जात वहि, तजि मीनन को मोह ।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाड़त छोह ॥५६॥

जे गरीब पै हित करैं, ते रहीम वड़ लोग ।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥५७॥

जो बड़ेन को लघु कहैं, नहिं रहीम घटि जाहिं ।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुःख मानत नाहिं ॥५८॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥५९॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तो अतिही इतराय ।
प्यादे सो फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥६०॥

जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल ।
तौ काहे कर पर धर्‌यो, गोबर्धन गोपाल ॥६१॥

५३–गुन=गुण अथवा रस्सी । सलिल=जल । ५४–अवध-नरेस=श्री रामचन्द्र जी ।
५५–सहसन=हजारो । मेख=खूँटा । ५६–मीन=मछली । छोह=प्रेम ।
५७–बापुरो=बेचारा । मिताई=मित्रता ।
५८–गिरधर=पर्वत धारण करने वाले । मुरलीधर=मुरली धारण करने वाले ।
५९–भुजंग=साँप ।
६०–इतराय=घमंड करे । प्यादा=पैदल सिपाही । फरजी=मंत्री, वज़ीर ।
६१–करिबोहुतो=करना था । इहैं=यही । हवाल=दशा, हालत ।

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बढ़े उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय ॥६२॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान ॥६३॥

थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरधर कहत न कोय ॥६४॥

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं ॥६५॥

देन हार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोभ भरम हम पै धरें, नीचे याते नैन ॥६३॥

धन थोरो इज्जत बड़ी, कहि रहीम का बात।
जैसे कुल की कुल बधू, चिथड़न माँहिं समात ॥६७॥

धरती की सी रीत है, सीत घाम अरु मेह।
जैसी परै सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह ॥६८॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु ते अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥६९॥

निज कर क्रिया रहीम कहि, सिधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥७०॥

६२–गति=दशा। ६३–सँचहिं=संचित करते हैं। सुजान=सज्जन।
६४–थोरो=थोड़ा। ज्यों=जैसे।
६५–अरथ=अर्थ। आखर=अक्षर। नट=एक जाति। ६६–भरम=भ्रम।
६७–कुलबधू=पतिव्रता। चिथड़न=फटे वस्त्र, गरीबी दशा।
६८–धरती=पृथ्वी। सीत, घाम, मेह=जाड़ा, गर्मी, बरसात।
६९–नाद=राग, आवाज। रीझेहु=प्रेम होने पर।
७०–क्रिया=कर्म, कार्य। सिधि=सिद्धि। पाँसा=खेल, जुआ।

बसि कुसंग चाहत कुशल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ॥७१॥

मथत-मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोईं मीत है, भीर परे ठहराय ॥७२॥

मन से कहाँ रहीम प्रभु, दृग सों कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान ॥७३॥

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीत, अभ्यास, जस, होत-होत ही होय ॥७४॥

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुःख प्रकट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥७५॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटे स्वान के, दोऊ भाँति बिपरीत ॥७६॥

रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं ॥७७॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहैं देर ॥७८॥

७१–सोस=सोच। यथा—दुर्जन के संसर्ग ते, सज्जन लहत कलेस।
ज्यों दसमुख अपराध ते, बंधन लह्यो जलेस ॥ (वृन्द)

७२–मही=मट्ठा। मीत=मित्र। भीर=दुःख। ठहराय=साथ दे।

७३–प्रभु=मालिक, राजा। दिवान=मंत्री। आदरैं=आदर करें। बिकान=बिका।

७४–जस=यश। ७५–नयन दरि=नेत्रों से गिर कर। कस न=क्यों न।

७६–यथा—हितहू भलो न नीच को, नाहि न भलो अहेत।
चाट अपावन तन करे, काटि स्वान दुःख देत ॥ (वृन्द)

७७–आपु=घमंड। यथा—जब मैं था तो हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं ॥ (कबीर)

७८–दिनन को फेर=बुरे दिन।

रहिमन तब लग ठहरिए, दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहिं करिय पयान ॥७९॥

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँट न लैहैं कोय ॥८०॥

रहिमन निज सम्पति बिना, कोउ न विपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहि रवि सकै बचाय ॥८१॥

रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुष, चून ॥८२॥

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँके तीन ॥८३॥

रहिसन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥८४॥

रहिमन बहु भेषज करत, व्यधि न छाँडत साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥८५॥

रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय ॥८६॥

रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पिअत हू, साँप सहज धरि खाय ॥८७॥

७९—पयान=चल देना। ८०—गोय=छिपा। अठिलैहैं=हँसी करेंगे।
८१—जलज=कमल। ८३—जस=जैसा।
८२—पानी=जल, इज्जत।
८४—दून=दूना। जरदी=पीलापन। सफेदी=सफेद पन।
८५—भेषज़=दवा। व्याधि=रोग। अरोग=निरोग।
८६—सुखद=सुख देने वाला। तप्यो=जला, या अत्याचार किया। तरैयन=तारों।
८७—अगुनी=अवगुणी। अगुन=अवगुण। राग=रागनी। पय=दूध।

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान।
भू पर जनम वृथा धरै, पसु बिन पूँछ विषान ॥८८॥

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥८९॥

साधु सराहै साधुता, जती जोखिता जान।
रहिमन साँचे सूर को, बैरी करें बखान ॥९०॥

रहिमन रहिबो वा भलो, जौ लौं सील समूच।
सील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ॥९१॥

रहिमन रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय।
भीति आप पै डारि कै, सबै पिया वै तोय ॥९२॥

राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि।
कहि रहीम तिहिं आपुनो, जनम गँवायो बादि ॥९३॥

विरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत ॥९४॥

रहिमन मारग प्रेम को, मत मतिहीन मझाव।
जो डिगिहैं तो फिर कहूँ, नहिं धरने को पाँव ॥९५॥

रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माँहिं।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ॥९६॥

८८—जस=यश। विषान=सींग। ८९—मुए=मरे। नाहिं=नहीं।

९०—जोखिल=जोगी पन। ९१—समूच=सम्पूर्ण। ढील=कमजोर, कमी।
कूच=चल देना। ९२—घट=घड़ा। गुन=रस्सी। तोय=जल।

९३—उपाधि=उपद्रव। बादि=व्यर्थ।

९४—घन=बादल। तम=अँधेरा। आस=आशा। उद्योत=उजाला। खद्योत=जुगनू।

९५—मारग=मार्ग। मझाव=चलो। मतिहीन=बुद्धिहीन।

९६—मैन=कामदेव। निबहत=निर्वाह।

सर सूखे पंछी उड़ैं, औरै सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥९७॥

होय न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बढ़िहू सो बिन काज ही, जैसे तार खजूर ॥९८॥

हित रहीम इतऊ करै, जाकी जहाँ बसात।
नहिं यह रहै न वह रहै, रहै कहन की बात ॥९९॥

सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही बाट।
फिर सौदा पैहौ नहीं, दूरि जान है बाट ॥१००॥

९७—सर=तालाब। पच्छ=पंख। ९८—ढिग=पास। विन काज ही=व्यर्थ।
९९—बसात=शक्ति। १००—बाट=रास्ता।

श्री बिहारी लाल चौबे

[बिहारी]

हिन्दी साहित्य से यदि बिहारी के दोहे अलग कर दिये जायँ तो ऐसा प्रतीत होगा—जैसे किसी सौभाग्यवती स्त्री के मस्तक से सिन्दूर का बिन्दु हटा दिया हो गया ।

कविवर बिहारी का जन्म संवत् १६६० वि० में ग्वालियर के निकट बसुवा गोविन्दपुर में हुआ था । यह जाति के माथुर थे । इनकी मृत्यु संवत् १७७३ में हुई ।

यह महाराज जयपुर के राजा मिर्जा जयशाह (जर्मसिंह) के आश्रित कवि थे। महाराज को बिलासिता के गर्त से निकालने का श्रेय इनके एक दोहे को ही है ।

श्रृङ्गार रस के ग्रन्थों में जो सम्मान 'बिहारी सतसई' को प्राप्त हुआ है आज तक किसी भी ग्रन्थ को नहीं हुआ ।

'बिहारी सतसई' की पचासों टीकाएँ गद्य और पद्य में निकल चुकी हैं । दोहों के भावों को लेकर कवियों ने इन पर कुंडलिया, शेर तथा अन्य प्रकार के छन्दों की भी रचना की है । यहाँ तक कि संस्कृत में भी इन दोहों का अनुवाद हो चुका है ।

'बिहारी' की ख्याति से पता चलता है कि प्रचुर मात्रा में काव्य लिखने से यश नहीं मिलता, वरन् काव्य की उत्कृष्टता ही इसमें अपेक्षित है ।

कवि में मुक्तक काव्य की उपयोगिता और शक्ति केवल दोहे ही लिखकर सिद्ध कर दिया है कि प्रबन्ध काव्य से कम शक्ति मुक्तक छन्दों में नहीं है और वह शक्ति दोहों में अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है ।

विहारी के एक-एक दोहे हिन्दी भाषा के अमूल्य रत्न हैं ।

रस व्यञ्जना की पूर्णता उनके अनुभावों के विधान से लक्षित होती है ।

इसमें उनकी कल्पना की मधुरिमा अपने चरम सीमा को पार कर गई है। कोई भी शृङ्गारी कवि अनुभावों की ऐसी सुन्दर योजना नहीं कर सका।

रस व्यञ्जना के अतिरिक्त बिहारी ने वस्तु व्यञ्जजना का भी विशेष रूप से सहारा लिया है; जो इनकी विरह और सुकुमारता में पूर्णरूप से लक्षित होती है।

कहीं-कहीं कल्पना की क्लिष्टता मस्तिष्क को उलझन में डाल देती है, किन्तु जब आप कल्पना शक्ति की रीति और रुढ़िवादी शक्तियों से उसका भाव समझ लेंगे तो हृदय आनन्द विभोर हो उठेगा।

अलंकारों का स्वाभाविक प्रभाव, तथा संचारी भावों की व्यञ्जना कवि को कितना ऊँचा उठाने में सहायक हुई है सर्वत्र देखते ही बनता है।

बिहारी ने सूक्तियाँ भी कहीं हैं, जो अधिकतर निति विषयक हैं।

कुछ दोहे आर्या सप्तशती और गाथा शप्तशती के आधार पर निर्मित करके भी उनमें जो चमत्कार उत्पन्न कर दिया है वह उनकी अपनी ही देन है।

भाषा ब्रज का साहित्यिक रूप है। भाषा की एकरूपता कवि में सर्वत्र वर्तमान है।

लक्षण ग्रन्थ न होते हुए भी सतसई को कुछ लोगों ने लक्षण ग्रन्थ के अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया है।

'बिहारी सतसई' हिन्दी की आगे आने वाली सतसई परम्परा में अपना सदा से प्रभाव रखती चली आ रही है। ऐसी आशा है कि यह प्रभाव आगे भी चलता जायगा। बिहारी सतसई के आधार पर और उनकी ख्याति से प्रभावित होकर अपनी प्रसिद्धि प्राप्ति के लिये अनेक कवियों ने सतसई रचकर हिन्दी भण्डार भरने का प्रयत्न किया है किन्तु बिहारी के समान अभी किसी को सफलता नहीं मिली।

बिहारी सतसई ने आगे की पीढ़ी वाले कवियों में मार्ग प्रदर्शन का अच्छा कार्य किया है।

बिहारी सतसई हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि और स्थायी सम्पत्ति रहेगी, और सदा इससे हिन्दी साहित्य का मस्तक ऊँचा होता रहेगा।

❀

[दोहा]

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोई।
जा तन की झाँई परै, स्यामु हरित-दुति होइ ॥१॥

हौं रीझी, लखि रझिझौ, छबिहिं छबीले लाल।
सोनजुही सी होति दुति, मिलत मालती माल ॥२॥

बहकै सब जिय की कहत, ठौरु कुठारु लखैंन।
छिन औरै, छिन और से, ए छबि-छाके नैन ॥३॥

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन-विरदु, वारक बारनु तारि ॥४॥

झीनैं पट मैं झुलमुली, झलकति ओप अपार।
सुरतरु की मनु सिंधु मैं, लसति सपल्लव डार ॥५॥

कीनैं हूँ कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौनु।
भोमन मोहन-रूपु मिलि, पानी मैं कौ लौनु ॥६॥

१—भवबाधा=संसार के बिघ्न। नागरि=पुन्दरी। झाँईं=परछाईं, झलक। हरित-दुति=हरे रंग की होती है।

२—दुति=आभा। मिलत=मिलते ही। दुति—मिलत=आभा से मिलते ही।

३—बहके=वश में न रहे। छवि-छाके=छवि रूपी मदिरा से तृप्त। ठौरु-कुठौरु=अवसर अनवसर।

४—अनाकनी=अनसुनी। फीकी=प्रभाव रहित। गुहारि=पुकार। बिरदु=प्रशंसा। तारन-विरदु=तारने वाले होने की प्रसिद्धि। वारक=एक बार। बारनु=हाथी।

५—झीनैं=पतले। झुलमुली=झुलमुलाना अर्थात् कभी दिखाना और कभी न दिखाना। लसति=शोभायमान। ओप=आभा, सुन्दरता।

६—काढ़ै=निकाले। मन=यह शब्द क्लिष्ट है जिसके अर्थ मन और मानसरोवर हैं,

अजौं तरयौना हीं रह्यो, श्रुति सेवत इक-रंग।
नाक-बास बेसरि लह्यो, बसि मुकुतनु कैं संग ॥७॥

जम-करि-मुँह-तरहरि परयो, इहिं धरहरि चित लाउ।
विषय-तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाउ ॥८॥

तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उर बसी, ह्वै उरबसी समान ॥९॥

कौन भाँति रहिहै बिरदु, अब देखिबी मूरारि।
बीधे मोसों आई कै, गीधे गीधहिं तारि ॥१०॥

नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहि काल।
अली, कली ही सौं बँध्यो, आगैं कौन हवाल ॥११॥

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहिं।
ज्यों आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहि ॥१२॥

कौंहर सी एड़ीनु की, लाली देखि सुभाई।
पाइ महावरु देइ को, आपु भई वे-पाइ ॥१३॥

७—अजौं=अब तक भी। तरयौना=यह शब्द श्लिष्ट है जिसके अर्थ कार्यकूल और दूसरा अर्थ अधोवर्ती है। श्रुति=(१) वेद की श्रुति (२) कान। नाक-बास=(१) स्वर्ग निवास (२) नासिको का निवास। बेसरि=(१) बेसर (२) अधम प्राणी। मुकुतनु=(१)जीवन-मुक्त सज्जनों (२) मोतियों।

८—तरहरि=नीचे। धरहरि=निश्चय। नरहरि=(१) नरसिंह भगवान (२) कवि के दीक्षागुरु नरहरिदास। परिहरि=छोड़कर।

९—उरबसी=अप्सरा विशेष। उरबसी=हृदय पर पहिनने का भूषण विशेष।

१०—बिरदु=प्रसिद्धि। देखिबी=देखना है। बीधे=उलझे। गीधे=ललचाए हुए गीधहिं=गिद्ध को। ११—विकासु=खिलावट। हवाल=दृश्य।

१२—जिहिं=जिसके द्वारा। देखियै=देखा जाता है।

१३—कौंहर=इन्द्रायन का फल। वे-पाइ=मति-पंगु, स्तब्ध।

दीरघ साँस न लेहि दुःख, सुख साईंहिं न भूलि।
दई दई क्यौं करतु है, दई दई सु कबूलि ॥१४॥
कहा भयौ जौ बीछुरे, मो मनु तोमन-साथ।
उड़ी जाउ कित हूँ तऊ, गुड़ी उड़ायक-हाथ ॥१५॥
सीतलताऽरु सुबास कौ, घटै न महिमा मूरु।
पीनस वारैं जौ तज्यौ, सोरा जानि कपूरु ॥१६॥
बंधु भए का दीन के, को तारयो रघुराई।
तूठे तूठे फिरत हौ, झूठे बिरद कहाइ ॥१७॥
थोरैं ही गुत रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनौ भए, आज कालिह के दानि ॥१८॥
कब कौ टेरत दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नाइक जग-बाइ ॥१९॥
पत्रा हीं तिथि पाइयै वा, घर कैं चहुँ पास।
नित प्रति पून्योंई रहै, आनन ओप-उजास ॥२०॥

१४—दीरघ साँस=लम्बी साँस। साईंहिं=स्वामी। कबूलि=अंगीकृत कर।

१५—गुड़ी=पतंग। उड़ायक=उड़ाने वाला।

१६—मूरु=जड़, आस्तित्व। पीनस वारैं=पीनस रोग वाले ने। सोरा=शोरा।

१७—रघुराइ=श्री रामचन्द्र। तूठे-तूठे=प्रसन्न हुए। बिरद=प्रशंसा।

नोट—कवि का अभिप्राय है कि अभी तक जितनों का आपने उद्धार किया वे मेरे ऐसे पतित थे ही नहीं।

१८—रीझते=प्रसन्न होते। बानि=आदत। दानि=दानी।

१९—जग-बाइ=संसार की वायु अर्थात् संसार का बुरा प्रभाव।

नोट—उपालम्भ द्वारा कवि जगत गुरु, जगनायक के ऊपर संसार का प्रभाव पड़ना दिखला रहा है यद्यपि संसार पर इनका प्रभाव पड़ना चाहिए।

२०—पत्रा=तिथिपत्र। चहुँ पास=चारों ओर। पून्यौ=पूर्णिमा। आनन-ओप-इजास=मुख की चमक का प्रकाश।

नोट—सुन्दरी के पूर्णिमा ऐसे मुख से पूर्णिमा नित्य प्रति रहती है। अर्थात् चन्द्रमुख के कारण केवल पत्रा से ही पूर्णिमा जानी जाती है।

रहति न रन जयसाहि-मुख, लखि लाखनु की फौज।
जाँचि निराखरऊ चलै लै, लाखन की मौज ॥२१॥

दियौ सु सीस चढ़ाइ लै, आछी भाँति अएरि।
जापैं सुखु चाहतु लियौ, ताके दुखहिं न फेरि ॥२२॥

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, विपति-बिरादरनहार ॥२३॥

तंत्री-नाद, कार्बत्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे, बूड़े सब अंग ॥२४॥

प्रकट भए द्विजराज-कुल, सुबस बसे ब्रज आई।
मेरे हरौ कलेस सब, केसव केसवराइ ॥२५॥

सतर भौं, रूखे बचन, करति कठिनु मनु नीठिं।
कहा करौं, ह्वै जाति हरि, हेरि हँसौं हीं डीठि ॥२६॥

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥२७॥

२१—लाखनु=लक्खी आदो एक सरदार। निराखर=अनपढ़। लाखनु=लाखों।

२२—आछी भाँति=प्रसन्नतापूर्वक। अएरि=अंगीकार करके।

२३—कोरिक=करोड़। संग्रहौ=जोड़ो। बिपति-बिदारनहार=बिपत्ति हरने वाले।

२४—तांत्री-नाद=वीणा आदि का मधुर स्वर। कबित्त रस=काव्य-स्वाद। सरस-राग=रसील। गाना अथवा स्नेह। रति रंग=प्रीति का आनन्द। अनबूड़े=डूबे नहीं। बूड़=डूबे, नष्ट हुए। तरे=बन गए, श्रेष्ठ हो गए। बूड़े=निमग्न हुए, लिप्त हुऐं। सबे अंग=पूर्ण रीति से, सर्वांग।

२५—द्विजराज कुल=चन्द्रवंश। केसव=कृष्ण। केसवराइ=बिहारी के पिता।

२६—सतर=तर्जन-युत, कड़ी। नीठि=किसी प्रकार। हरि=देख। हरि=कृष्ण। हँसौंही=हँसमुख। डीढि=दृष्टि, निगाह।

२७—अनुरागी=प्रेमी। गति=चाल। स्याम रँग=यह पद श्लिष्ट है, श्याम श्रीकृष्ण के प्रेम या काले रंग के प्रेम में। उज्जलु=निर्मल, पवित्र, श्वेत।

कैसैं छोटे नरनु तैं, सरत बड़नु के काम।
मढ्यौ दमामौ जातु क्यौं, कहि चूहे कैं चाम ॥२८॥

जपमाला छापैं तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन-काँचै नाचै बृथा, साँचै सँचै रामु ॥२९॥

घरु घरु डीजत दीन ह्वै, जनु जनु जाचतु जाइ।
दियैं लोभ-चरमा चखनु, लघु पुनि बड़ौ लखाइ ॥३०॥

मोहन-मूरति स्याम की, अति अद्‌भुत गति जोइ।
बसतु सुचित-अंतर तऊ, प्रतिबिंबितु जग होइ ॥३१॥

बाल कहा लाली भई, लोइन-कोइनु माँह।
लाल तुम्हारे दृगनु की, परी दृगनु मैं छाँह ॥३२॥

जहाँ जहाँ ढाढ़ौ लख्यौ, स्यामु सुभग-सिरमौरु।
बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु, दृगनु अजौं वह ठौरु ॥३३॥

बड़े न हूजे गुननु बिनु, बिरद-बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ्यो न जाइ ॥३४॥

कनकु कनक तैं सौगुनी, मादकता अधिकाइ।
उहिं खाऐं बौराइ, इहिं पाऐं हीं बौराइ ॥३५॥

२८—सरत=निकलना। दमामौ=बड़ा नगाड़ा।

२९—जपमाला=जप की माला। छापैं=छाप आदि। मन काँचै=कच्चे मन वाला। राँचै=प्रसन्न हो।

३०—लोभ-चसमा=लोभ रूपी चश्मा। चखनु=नेत्रों।

३१—जोइ=देख। चित-अंतर=चित्त के भीतर।

३२—लोइन-कोइनु=नेत्रों के कोयों में। छाँह=आभा, छाया।

३३—सुभग-सिरमौरु=भाग्यवानों में श्रेष्ठ, सुन्दरता में श्रेष्ठ। अजौं=अब भी। ठौरु=स्थान।

३४—बिरद=प्रशंसात्मक नाम। कनकु=(१) धतूरा (२) सोना।

३५—मादकता=उन्मत्त करने की शक्ति।

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुराग।
जिहँ ब्रज-केलि-निकुञ्ज, मग, पग-पग होतु प्रयागु ॥३६॥
कीजै चित सोई तरे, जिहिं पतितनु के साथ।
मेरे गुन-औगुन-गगनु, गनौ न गोपीनाथ ॥३७॥
संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति कैं धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध ॥३८॥
जात जात बिनु होतु है, ज्यौं जिय मैं संतोषु।
होत होत जौ होइ, तौ होइ घरी मैं मोषु ॥३९॥
हरि कीजति बिनती यहै, तुम सौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डर्‌यो, रह्यौ पर्‌यौ रहौं दरबार ॥४०॥
लइ सौंह सी सुनन की, तजि मुरली धुनि आन।
किए रहति नित रातिदिनु, कानन-लागे कान ॥४१॥
गिरि तैं ऊँचे रसिक-मन, बूड़े जहाँ हजारु।
वहै सदा पसु नरनु कौं, प्रेम-पयोधि पगारु ॥४२॥
जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब मैं, अपत कँटीली डार ॥४३॥
मैं बरजी कै बार तूँ, इत कित लेति करौट।
पँखुरी लगैं गुलाब की, परिहै गात खरौट ॥४४॥

३६—हरि-राधिका-तन-दुति=कृष्ण और राधा की श्यामल गौर तन की शोभा, गंगा, यमुना। अनुरागु=प्रेम, प्रेम का रंग लाल माना गया है, इससे सरस्वती। प्रयागु=तीर्थराज, संगम।

३७—गुन-औगुन-गननु=गुण अवगुणों के समूह।

३८—सुमति=अच्छी मति। कुमति कै धंध=बुरी मति में पड़े हुए।

३९—बिनु=बन। मोषु=मोक्ष।

४०—कीजति=करता हूँ।

४१—सौंह=कसम। कान-लागे=बन की ओर लगे हुए।

४२—रसिक=रसीला। जहाँ=जिसमें। हजारु=हजारों। पसु=अरसिक। पगारु=खाइं।

४३—बहार=बसन्त। अपत=पत्र-रहित।

४४—बरजी=मना किया। करौट=करवट। पँखुरी=पंखड़ी। खरौट=खुरच।

मोहूँ दीजै मोषु, ज्यों अनेक अधमनु दियौ।
जौ बाँधैं ही तोषु, तौ बाँधौ अपनैं गुननु ॥४५॥
सोहत संगु समान सौं, यहै कहै सबु लोगु।
पान-पीक ओठनु बनै, काजर नैननु जोगु ॥४६॥
सबै हँसत करतार दै, नागरता कैं नावँ।
गवौ गरबु गुन कौ सरबु, गऐं गँवारैं गाँव ॥४७॥
मैं तपाइ त्रयताप सौं, राख्यौ हियौ हमामु।
मति कबहुँक आऐं यहाँ, पुलकि पसीजैं स्यामु ॥४८॥
बहकि बड़ाई आपनी, कत राँचत मति-भूल।
बिन मधु मधुकर कें हियैं, गड़ै न गुड़हर फूल ॥४९॥
गोपिनु कैं अँसुववनु भरी, सदा असोस अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही, बगर बगर कैं बार ॥५०॥
सीस-मुकुट, कटि-काछनी, कर-मुरली उर-माल।
इहिं बानक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल ॥५१॥
हरि-छवि-जल जब तैं परे, तब तैं छिनु किछुरैं न।
भरत ढरत बूड़त तरत, रहत घरी लौं नैन ॥५२॥
नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचौ ह्वै चलै, ते तौ ऊँचौ होइ ॥५३॥

४५—मोषु=मोक्ष। तोषु=संतोष। गुननु=गुणों से, रस्सी से।
४६—जोगु=योग्य। ४७—नागरता=चातुरी। गँवारैं=ग्रामीण।
४८—त्रयताप=तीनों दुःख। हमामु=स्नानागार, जिसमें गरमी रहती है और उसके अन्दर जाते ही पसीना आ जाता है। पसीजैं=करुणार्द्र हों। स्यामु=श्याम।
४९—बहकि=बहकना। राँचत=लाल होना, प्रसन्न होना। मतिभूल=बुद्धि के भ्रम से। मधुकर=भ्रमर, गुणग्राही। नोट—गुड़हर के फूल के प्रति अन्योक्ति।
५०—नै=नदी। डगर-डगर=प्रति मार्ग। बगर-बगर=घर-घर।
५१—बानक=वेष, साज। बिहारी लाल=आनन्द क्रीड़ा करने वाले लाल।
५२—घरी=समय-बोधक जलयन्त्र की कटोरी।
५३—नल-नीर=फुहारे के नल का जल। गति=चाल। नीचौ=नम्र, निम्नगामी।

भूषन-भारु सँभारिहै, क्यों इहिं तन सुकुमार।
सूझे पाइ न धर परैं, सोभा हीं कैं भार ॥५४॥
लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरव गरूर।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ॥५५॥
गुनी गुनी सब कैं कहैं, निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं, अरक-समानु उदोतु ॥५६॥
दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यौ न वढ़ै दुख-दंदु।
अधिक अँधेरौ जग करत, मिलि मावस रवि-चंदु ॥५७॥
तौ लगु या मन-सदन मैं, हरि आवैं किहिं बाट।
बिकट जटे जौ लगु निपट, खुटैं न कपट-कपाट ॥५८॥
दृग उरझत टूटत कुटुमं, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरज़न-हियैं, दई, नई यह रीति ॥५९॥
भजन कह्यौ, तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ गँवार ॥६०॥
जनमु जलधि पानिय बिमलु, भौ जग आधु अपारु।
रहै गुनी ह्वै गर पर्‌यो, भलैं न मुकता-हारु ॥६१॥

५४—भूषन-भारु=अलंकार-भार। धर=पृथ्वी। सूधे=सीधे।

५५—सबी=यथार्थ चित्र। गरब-गरूर=अभिमान। कूर=विकृत वुद्धि वाला।

५६—तरुअरक=मदार का वृक्ष। अरक=सूर्य। उदोतु=प्रकाश।

५७—दुराज=द्विराज दु अमली। दुख-दंदु=दु:खो का उत्कर्ष। मानस=अमावस्या।

५८—मन-सदन=मन रूपी घर। बिकट जटे=अत्यन्त दृढ़। खुटैं=खुलैं।

५९—उरझत=मिलते हैं। टूटत कुटुम=कुटुम्ब के सम्बन्ध टूटते हैं। गति=ईर्ष्या।

६०—भजन कह्यो=भजने को वतलाया। भज्यौ=भागा। भज्यौ=भोग किया, भजा।

६१—जलधि=समुद्र। पानिपु विमलु=शोभा या आवरू विमल है। आद्यु=आदर मोल। अपारु=अपार। गुनी=ढोरे में गुथकर या गुण वाला। भलैं न=ठीक नहीं हैं।

नोट—मोतियीं के हार के प्रति अन्योक्ति किसी गुणी मनुष्य के हेतु।

बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु।
भलो भलो कहि छोड़ियै, खोटैं ग्रह जप दान ॥६२॥

रनित भृंग-घंटावली, झरित दान मधु-नीरु।
मंद मंद आवतु चल्यौ, कुंजरु कुंज-मसीरु ॥६३॥

यह बरिया नहिं और की, तूँ करिया वह सोधि।
पाहन-नाव चढ़ाइ जिहिं, कीने पार पयोधि ॥६४॥

अधर धरत हरि कैं परत, ओठ—डीठि—पट—जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष रँग होति ॥६५॥

तौ अनेक औगुन-भरिहिं, चाहै याहि वलाइ।
जौ पति संपति हूँ बिना, जदुपति राखे जाइ ॥६६॥

करौ कुबत जगु कुटिलता, तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगी लाल ॥६७॥

मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।
अपनैं अपनैं बिरद की, दुहूँ निबाहन लाज ॥६८॥

६२—बसै=बसती है। ग्रह=नक्षत्र। खोटै ग्रह=शनी आदि।

६३—रनित=गूँजते हुए। भृंग-घंटावली=भ्रमरों रूपी घंटावली। दान=हाथ का मद। मधु=मकरंद। कुंजरु=हाथी। कुंजरु-कुंज-समीरु=कुंज समीर रूपी कुंजर।

६४—बरिया=अवसर। करिया=माँझी, श्रीरामचन्द्र। पाहन नाव=पत्थर की नाव।

६५—ओंठ-डीठि-पट-जोति=ओठ की ललाई, दृष्टि की श्यामलता और वस्त्र का पीलापन, इन सबकी ज्योति हरे बाँस की बाँसुरी में मिलकर इन्द्र धनुप रंग की हो जाती है।

६६—औगुन-भरिहिं=अवगुणों से भरी। पति=लज्जा। संपति=धन।

६७—कुबत=निंदा। कुटिलता=(१)बुराई (२)टेढ़ाई। सरल=(१) शुद्ध (२) सीधे। त्रिभंगी=तीन स्थान से टेढ़े।

६८—बहस=विवाद। अपनै-अपनै अपनी-अपनी। बिरद=प्रशंसा, नामवरी।

कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निस कही, पातक, राजा रोग ॥ ६९॥

समै समै सुंदर सबै, रुपु कुरुपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ ॥७०॥

इहीं आस बसंत ऋतु, अलि गुलाब कै मूल।
ह्वैहैं फेरि बसंत ऋतु, इन डारनु वे फूल ॥७१॥

चल्यौ जाइ ह्याँ को करै, हाथिनु के व्यापार।
नहिं जानतु इहिं पुर बसैं, धोबी, ओड़ कुंमार ॥७२॥

करतु जातु जेती कटनि, बढ़ि रस—सरिता-सोतु।
आलबाल उर प्रेम-तरु, तितौ तितौ दृढु होतु ॥७३॥

इक भीजैं, चहलैं परैं, बूडैं बहैं हजार।
किते न औगुन जग करैं, बै-नै चढ़ती बार ॥७४॥

नाच अचानक हीं उठे, बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं नंदित करी, यह दिसि नंदकिसोर ॥७५॥

६९—श्रुति=वेद। सुम्रत्यौ=स्मृति भी। सयाने=चतुर। निसकही=शक्तिहीन का।

७०—समै=समय अवसर। जितै=जितनी। रुचि=इच्छा।

७१—इहीं=इसी। आस=आशा। अटक्यौ=निरत।

७२—ओड=और।

नोट—गुणी जन के प्रति कवि की अन्योक्ति।

७३—कटनि=काट। रस-पक्ष में इसका अर्थ हृदय पर घाव करना, और जल-पक्ष में नदियों के द्वारा करार का काटा जाना, होता है। रस=मिलने का चाव तथा जबल। सोतु=सोता, धारा। सच्चे प्रेम की तो यह व्यवस्था है कि जितनी ही मनुष्य का चाव बढ़ता है उतना ही उसको प्रेम दृढ़ होता है।

७४—बै=उम्र=नै=नदी। चहलैं=कीचड़!

७५—नंदित=आनन्दित।

जाकैं एकाएक हूँ, जग व्यौसाइ न कोइ।
सो निदाघ फूलै फरै, आकु डहडहौ होइ ॥७६॥

बतरस-लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ ॥७७॥

नहिं पावसु, ऋतुराजु यह, तजि तरवर चित-भूल।
अपतु भऐ बिनु पाइहैं, क्यौं नव दल फल फूल ॥७८॥

पावस-घन-अँधियार महि, रह्यौ भेद नहिं आनु।
रात द्यौस जान्यौ परतु, लधि चकई चकवानु ॥७९॥

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोबन सौ कियौ, दीरघ-दाघ निदाघ ॥८०॥

कहा कुसुमु कह कौमुदी, कितक आरसी जोति।
जाकि उजराई लखैं, आँखि ऊजरी होति ॥८१॥

लोपे कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै, गो, गोपी गोपाल ॥८२॥

७६—एकाएक हूँ=अकेला भी। व्यौसाइ=उद्योग करने वाला। निदाघ=ग्रीष्म। आकु=मदार।

७७—बतरस-लालच=बातचीत करने के आनन्द के लालच से। सौंह करैं=सौगन्ध खाना। भौंहनु हँसै=थोड़ा हँसना। नटि जाय=मुकर जाती है।

७८—अपतु=पत्र-शून्य, मानरहित। नोट—वृक्ष पर अन्योक्ति।

७९—नोट—वर्षाऋतु की सघन घटाओं का वर्णन।

८०—नोट—ग्रीष्म के कारण साँप, मोर और मृग और बाघ एक ही स्थान पर विरोध छोड़ कर हैं।

८१—नोट—गौरवर्ण की प्रशंसा। आँख ऊजरी होना=ज्योति सम्पन्न होना।

८२—लोपे=लुप्त हुए। कोपे=क्रोधित हुए।

छिप्यो छवीलौ मुँहु लसै, नीलैं अंचर-चीर।
मनौ कलानिधि झलमलै, कालिन्दी कैं नीर ॥८३॥

रहैं निगोड़े नैन डिगि, गहैं न चेत अचेत।
हौं कसु कैं रिस के करौं, यै निसुके हँसि देत ॥८४॥

वाम बाँह फरकतिमिलैं, जो हरि जीवन मूरि।
तौ तोहीं सौं भेटिहौं, राखि दाहिनी दूरि ॥८५॥

छुटे छुटावत जगत तैं, सटकारे सुकुमार।
मनु बाँधत बेनी-बँधे, नील छबीले बार ॥८६॥

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट-पट झीन।
मानहु सुरसरिता-विमल, जल उछरत जुन मीन ॥८७॥

अनियारे दीरघ दृगनु, किती न तरुनि सनाम।
वह चितवनि औरे कछू, जिहि बस होत सुजान ॥८८॥

पटु पाँखै भखु काँकरै, सपर परेई संग।
सुखी परेवा पुहुमि मैं, एकै तुँहीं विहंग ॥८९॥

८३—अंचर-चीर=अंचलपट। छबीलौ=छबीला। कलानिधि=चन्द्रमा।

८४—निगोड़े=पंगु, स्त्रियों का एक प्रकार का गालीयुत व्यंग। निसुके=दरिद्र, यह शब्द भी व्यंगयुत कोसने का है।

८५—फरकति=फड़कना, वाम अंग फड़कना स्त्रियों के लिए शुभ सूचना और प्रिय मिलन का द्यौतक है।

८६—सटकारे=पतले तथा लचकीले, साँटी के से लम्बे। मनु=मन।

८७—झीन=पतले। सुरसरिता=गंगा। जुग=दो। मीन=मछली।

८८—अनियारे=कोरदार। सुजान=चतुर, गुणीजन।

८९—पटु पाँखै=वस्त्र पंख है। भखु काँकरै=कंकड़ का भोजन। सपर=पर सहित। परेई=कबूतरी। परेवा=कबूतर। पुहुभि=पृथ्वी।

तौं, बलियै भलियै बनी, नागर नन्दकिसोर।
जौं तुम नीकैं कै लख्यो, मो करनी की ओर ॥९०॥
सुनि पग-धुनि चितई इतै, न्हाति दयैं हीं पोठि।
चको झुकी सकुची डरी, हँसी लजी सी डीठि ॥९१॥
वारौं बलि तो दृगनु पर, अलि खंजन मृग मीन।
आधीडीठि-चितौनि जिहिं, किए लाल आधीन ॥९२॥
करलै चूमि चढ़ाइ सिर, उर लगाइ भुज भेटि।
लहि पाती पिय की लखति, बाँचति धरति समेटि ॥९३॥
ज्यौं कर त्यौं चिकुटी, ज्यौं चिकुटी त्यों नारि।
छबि सौं गति सी लै चलति, चातुर कातन-हारि ॥९४॥
किती न गोकुल कुल बधू, किहिं न काहि सिख दीन।
कौनैं तजी न कुल-गली, ह्वै मुरली-सुर-लीन ॥९५॥
इन दुखिया अँखियानु कौं, सुख सिरज्योई नाँहिं।
देखैं बनै न देखतै, अनदेखैं अकुलाँहिं ॥९६॥

९०—बलियै=बलिहारी। नीकैं कै=भली प्रकार। करनी=कर्म।

९१—नोट—स्नान करती हुई किसी पुरुष के आने पर लज्जा शील स्त्री की दशा वर्णन है।

९२—आधी डीठि=आधी दृष्टि। नोट—नेत्रों की प्रशंसा वर्णित है!

९३—नोट—प्रिय की पत्रिका मिलने पर आनन्द और उत्साहवर्द्धक कार्थ और दशा।

९४—चुटकी=रुई की सिउनी हाथ में सरकना। नारि=ग्रीवा। कातन-हारि=चर्खा कातने वाली।

९५—कुलवधू=पतिव्रता। कुल-गली=कुल मर्यादा। मुरली-सुर-लीन=मुरली के स्वर में आसक्त।

९६—सिरज्योई=बनाया। देखैं बनै न देखतै=लज्जा वश नहीं देखतीं या भर आती हैं। अन देखैं अँकुलाहिं=न देखने पर देखने के लिए व्याकुल होती हैं।

बेंदो भाल तँबोल मुँह, सीस सिलसिले बार।
दृग आँजे राजै खरी, एई सहज सिंगार ॥९७॥
सघनकुंज-छाया सुखद, सीतल सुरभि-समीर।
मन ह्वै जातु अजौं वहै, उहि जमुना के तीर ॥९८॥
कर समेटि कच भुज उलटि, खएँ सीस-पटु हारि।
काकौ मनु बाँधौ न यह, जूरा-बाँधन हारि ॥९९॥
ज्यौं ह्वैहौं त्यौं होउँगौं, हौं हरि अपनी चाल।
हठु न करौ अति कठिनु है, मो तारिबो गुपाल ॥१००॥

९७—तँ वोल=वान। सिलसिले=भीगे नोट—सहज शृंगार शोभा वर्णन।

९८—नोट—कृष्ण की अनुपस्थिति में कृष्ण की स्मृति वर्णन।

९९—कच=बाल। खएँ=पखुरा, भुजमूल। नोट—जूरा बाँधते समय का मनोहारी वर्णन।

१००—नोट—कर्मफल भोगने की गर्वोक्ति है।

ठाकुर पृथ्वी सिंह जी

[रसनिधि]

रचना काल—सं० १६६०-१७१७ वि०

हिन्दी साहित्य की वृद्धि के लिए क्षत्रिय राजाओं, महाराजाओं तथा धनी-मानी व्यक्तियों ने जो प्रयास किया है वह किसी से छिपा नहीं।

सतसई की परम्परा चल रही थी। सात सौ दोहों से अविक दोहे लिख कर भी लोगों ने सतसई नाम सार्थक किया। किन्तु दतिया रियासत में बरौनी इलाके के ताल्लुकेदार ठाकुर पृथ्वीसिंह ने इस परम्परा में एक नवीन परिवर्तन किया ओर उन्होंने अपने दोहों की संख्या सतसई तक ही सीमित न रखकर उसे एक हजार की संख्या तक पहुँचा कर अपना 'रतन हजारा' ग्रन्थ एक हजार दोहों का संग्रह हिन्दी प्रेमियों को भेंट किया जिस प्रकार 'सतसई' की सूझ संस्कृत के आचार्यों के आधार पर हुई थी, उसी प्रकार इस 'रतन हजारा' की सूझ भी संस्कृत काव्य ग्रन्थ के आवार पर है। संस्कृत में एक हजार सूक्तियाँ के ग्रन्थ मौजूद हैं।

ठाकुर पृथ्वी सिंह का उपनाम 'रसनिधि' या। अपने उपनाम 'रसनिधि' के अनुसार 'यथा नामो तथा गुणो' के अनुसार इस ग्रन्थ 'रतन हजारा' में शृंगार रसपूर्ण दोहों की बाहुल्यता है। कवि ने अपनी रसीली बुद्धि के अनुसार जिस प्रकार 'सतसई' परम्परा को छोड़कर 'हजारा' का आश्रय लिया है, उसी प्रकार अपने शृंगारात्मक दोहों में अपनी कला भी प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। इससे उनकी कला कहीं-कहीं शृंगारात्मक सीमा को पार करती हुई एक और ही स्थान पर जा रुकती है, जहाँ न तो कला की कली ही प्रस्फुटित हो पाई है, और न कवि को अपनी सफलता के दर्शन ही हुए हैं। इसी कला-प्रेम ने कवि को नवीनता के लोभ में कुछ ऐसा फँसाया है कि उसे पुनरुक्ति के चक्कर में पड़

जाना पड़ता है। इसी कारण कवि को कदाचित् इस चक्कर से निकलने के लिए सतसई सप्तक के सम्पादनकर्ता बाबू श्याम सुन्दर दास ने 'रतन हजारा' के रूप को वदल कर 'रसनिवि सतसई' का रूप देने का कष्ट किया है और ऐसा करके उन्होंने कवि के साथ अन्याय किया है।

'रतन हजारा' में कुछ दोहे आत्म-तत्व सम्बन्धी भी हैं। इन्हें पढ़ने से पता चलता है कि यद्यपि यह दोहे इने गिने हैं, किन्तु वे कबीर के दोहों की श्रेणी में स्थान पा सकने के अधिकारी हैं।

जागीरदार होने के कारण ठाकुर साहब ने धार्मिक वातावरण के भेदभाव को भी दूर करने के लिए दोहों का आश्रय लिया है।

यद्यपि रतन हाजरा कवि ने बिहारी सतसई के अनुकरण पर हिन्दी संसार के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है किन्तु जिस प्रकार कवि ने 'सतसई' के रूप को बदल कर 'हाजरा' का रूप दिया है, उसी प्रकार उनके दोहे भी बिहारी-दोहों से अपना अलग ही ढंग रखते हैं। इस कार्य में कवि को अपनी नवीन शैली पर सफलता भी मिली है।

शृंगार के प्रत्येक पहलुओं पर कवि ने अपनी लेखनी चलाई है। नायिका अंगों का भी वर्णन है, किन्तु नेत्रों का जैसा श्लाघ्य वर्णन किया गया है, उतना अन्य अंगों का नहीं।

'रतन हाजरा' की भाषा व्रजभाषा है। भाषा परिमार्जित और शुद्धता का जामा पहिने हुए है। कालानुसार फारसी के शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। भावों में कवि ने बिहारी की सी उड़ान या कला का प्रदर्शन न करके प्रसादगुण का यथेष्ट ध्यान रक्खा है। साथ ही साथ कवि की शृंगार परम्परा जब औचित्य को पार कर जाती है, तो बेतरह खटकती है।

कवि ने अपने जागीरदार होने की भी इसमें छाप रक्खी है, जिससे इनके राजकीय विषयक दोहे बड़े ही सुन्दर और मार्मिक हैं।

कवि का रचना काल सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण और अठ्ठारहवीं

शताब्दी का प्रथम चरण है; इसके 'रतन हजारा' में भाषा-भाव और विचारों की छाप का पूर्ण परिचय मिलता है।

दोहा साहित्यकारों में कवि का स्थान अच्छा है, और 'रतन हजरा' लिख कर कवि ने दोहों के साहित्यिक इतिहास में एक नवीन युग का आरम्भ किया है, इससे कवि की महत्ता और भी बढ़ जाती है।

'रतन हजारा' के अतिरिक्त कवि ने विष्णु पद, कीर्तन (स्तुति), कवित्त (प्रेमविषयक), बारहमासी, गीत संग्रह, स्फुट दोहा, रसनिधि सागर, अरिल्ल और हिंडोले आदि ग्रंथों की रचनाएँ की हैं, किन्तु 'रतन हजारा' के कारण ही कवि को इतनी ख्याति मिल चुकी है कि और ग्रंथों की ओर लोगों की दृष्टि ही नहीं जाती।

ठाकुर साहब की साहित्यिक सेवा हिन्दी साहित्य में चिर-स्मरणीय रहेगी।

❀

[दोहा]

लखत सरस सिंधुर वदन, भालथली नखतेस।
बिघन-हरन मंगल-करन, गौरी-तनय गनेस ॥ १ ॥

नमो प्रेम-परमारथी, इहि जाचत हौं तोहि।
नन्दलाल के चरन कौं, दे मिलाइ किन मोहि ॥ २ ॥

अब तौ प्रभु तारैं बनै, नातर होत कुतार।
तुमही तारन-तरन हौ, सो मोरै आधार ॥ ३ ॥

१—सिंधुबदन—हाथी के मुंख वाले गणेश। भालथली=मस्तक। नखतेस=चन्द्र।
नोट—गणेश जी के सर पर भी चन्द्रमा की वास माना जाता है।

२—इहि=यह। जाँचत=माँगत। ३—नातर=नहीं तो।

कैइक स्वांग बनाइ कै, नाचौ बहु बिधि नाच।
रीझत नहिं रिझवार वह, बिना हिए के साँच ॥ ४ ॥

तेरो गति नन्द लाड़ले, कछू न जानी जाइ।
रजहू तैं छोटो जु मन, ता मैं बसियत आइ ॥ ५ ॥

सब सुख छाड़े नेहिया, तुव सुख लेत उठाइ।
सब सुख चाहत सब रहै, तुव सुख नहीं मिठाइ ॥ ६ ॥
मोहे नैकु न नैन जे, मन मोहन कै रूप।
नीरस निपट निकाम ज्यौं, बिन पानी कै कूप ॥ ७ ॥

साँची सी यह बात है, सुनियो सज्जन सन्त।
स्वांगी तौ वह एक है, वहि के स्वांग अनन्त ॥ ८ ॥
आपु फूल आपुहि भँवर, आपु सुबास बसाइ।
आपुहि रस आपुहि रसिक, लेत आपु रस आइ ॥ ९ ॥
हिन्दू मैं क्या और है, मुसलमान मैं और।
साहिव सब का एक है, ब्याप रहा सब ठौर ॥१०॥
करत फिरत मन वावरे, आप नहीं पहिचान।
तो ही मैं परमातमा, लेत नहीं पहिचान ॥११॥
तूँ सज्जन या बात कौं, समुझ देख मन माहिं।
अरे दया मैं जो मजा, सो जुलमन मैं नाहिं ॥१२॥
प्रीतम इतनी बात कौ, हिय कर देखु बिचार।
बिनु गुन होत सुनिकहूँ, सुमन हिए कौ हार ॥१३॥

४—कैइक=कई एक। हिए=हृदय। ५—रजहू=धूल। ता मैं=उसमें।
६—नेहिया=प्रेमी। ७—निकाम=वेकाम।
८—स्वांगी=स्वांग करने वाला। ९—भँवर=भ्रमर। सुबास=सुगन्ध।
१०—साहिब=स्वामी, ईश। ११—बावरे=बावले।
१२—मजा=स्वाद। जुलमन=अत्याचार।
१३—गुन=गुण। सुमन=पुष्प, अच्छा मन।

हित करियत यह भाँति सौं, मिळियत है वह भाँत।
छरि नीर तैं पूछ लै, हित करिबे की बात ॥१४॥

रूप-समुद्र छवि-रस भरौ, अति ही सरस सुजान।
ता मैं तं भर लेत दृग, अपनै घट उनमान ॥१५॥

अरे मीत या बात कौ, देख हिए कर गौर।
रूप दुपहरी छाँह कब, ठहरानी इक ठौर ॥१६॥

लाल भाल पै लसत है, सुन्दर बिन्दी लाल।
कयौ तिलक अनुराग ज्यौं, लख कै रूप रसाल ॥१७॥

बिधि ने जग मैं तैं रच्यौ, ऐसी भाँति अनूप।
आभूषन कौ है लला, आभूषन तुव रूप ॥१८॥

और सदादन पै लखौ, भूलहु चित्त न देइ।
अँखिया मोहन रूप कौं, बिन रसना रस लेइ ॥१९॥

जो भावै सो कर लला, इन्हैं बाँध वा छोर।
हैं तुव सुबरन रूप के, ये मेरे दृग चोर ॥२०॥

पल पींजरन मैं दृगसुवा, जदपि मरत है प्यास।
तदपि तलफ जिय राखही, रूप-दरस-रस-आस ॥२१॥

जब जब वह ससि देत है, अपनी कला गँवाइ।
तब तब तुव मुख-चंद पै, कला माँगि लै जाइ ॥२२॥

सुमन सहित आँसू-उदक, पल-अँजुरिन भरि लेत।
नैन-व्रती तुव चंद-मुख, देखि अरघ कौं देत ॥२३॥

१४–हित=प्रेम। छीर-नीर=दूध-पानी। १५–समुद=समुद्र। घट=घड़ा।
१६–गौर=बिचार। ठौर=स्थान। १७–अनुराग=प्रेम। रसाल=रसीला।
१८–बिधि=ब्रह्मा। लला=कृष्ण। १९–सवादन=स्वादों। रसना=जीभ।
२०–सुब्रन=अच्छे रंग का, सोना। २१–पल-पीजंरन=पलक पीजड़ा।
२२–कला=प्रकाश। गँवाइ=खो।
२३–सुमन=अच्छा मन, पुष्प। उदक=जल। पल-अँजुरिन=पलक रूपी अँजुली।

जब लग हिय-दरपन रहै, कपट-मोरचा छाइ।
तब लग सुन्दर मीत-मुख, कैसे दृगन दिखाइ ॥२४॥
कानन लग कै तैं हमैं, कानन दियौ बसाइ।
सुचिती ह्वै तैं बाँसुरी, बस अब ब्रज मैं आइ ॥२५॥
मोहन बसुरी सौं कछू, मेरौ बस न बसाइ।
सुर-रसरी सौं सुवन-मगु, बाँधि मनै लै जाइ ॥२६॥
बिछुरत सुन्दर अधर तैं, रहत न जिहि घट साँस।
मुरली सम पाई न हम, प्रेम-प्रीत को आँस ॥२७॥
प्रेम-नगर दृग-जोगिया, निस दिन फेरी देत।
दरस-भीख नन्दलाल पै, पल-झोरिन भरि लेत ॥२८॥
रूप ठगौरी डारि कै, मोहन गौ चितचोरि।
अंजन मिस जनु नैन ये, पियत हलाहल घोरि ॥२९॥
साधत इक छूटत सहस, लगत अमिन दृग गात।
अरजुन सम बानावली, तेरे दृग करिजात ॥३०॥
बिदित न सनमुख ह्वै सकैं, अँखियाँ बड़ी लजोर।
बरुनी सिरकिन ओट ह्वै, हेरत मोहन ओर ॥३१॥
प्रथमहि नैन-मलाह जे, लेत सुनेह लगाइ।
तब मझयावत जाय कै, गहिर रूप दरियाइ ॥३२॥
रसनिधि मोहन रूप तौ, जिहिं मैं तिहिं सरसाइ।
तिनकौ राखौ नेहियन, नैन माँझ ठहराइ ॥३३॥

२४—मीत-मुख=प्रेमी मुख। २५—कानन=कानों में, जंगल। सुचिती=सुचित।
२६=रसरी=रस्सी। स्रवन मगु=कान के रास्ते। मनै=मन।
२७—आंस=अंश। नोट—मुरली प्रेन की सराहना और स्पर्द्धा।
२८—पले-झोरिन=पलक रूपी झोली। २९—अंजन=आंजन। हलाहल=वेष।
३०—अरजुन=अर्जुन। ३१—लजोर=लजीली।
३२—सुनेह=स्नेह। मझयावत=वँसते हैं। मल्लाही कहते है।
३३—नेहियन=प्रेमी।

मन सुबरन घरिया हियो, लाल सुहाग मिलाइ।
दृग-सुनार हित आँच दै, कुन्दन कियौ तपाइ ॥३४॥
एक नजरिआ कै लखै, जो कोइ होइ निहाल।
तौ यामैं तुव गाँठ कौ, कहा जात है लाल ॥३५॥
नैना मोहन रूप सौं, मन कौं देत मिलाइ।
प्रीत लगै मन की बिथा, सकै न ये फिर पाइ ॥३६॥
दृग माली ये डीठ कर, निरखि रूप की बेल।
लेत सु चुन छवि की कली, पल झोरिन सौं झेल ॥३७॥
तीन पैर जाकै लखौ, त्रिभुवन मैं न समाहिं।
धन राधे राखत तिन्हैं, लोइन कोइन माहिं ॥३८॥
मेरे नैननि ह्वै लखौ, लाल आपुनौ रूप।
भावत ह्वै गौ भावतो, कैसी भाति अनूप ॥३९॥
सुहृद जगत मैं दृगन से, रसनिधि दूजे नाहिं।
बड़े दृगन लखि आप तौ, तन मन हियौ सिहाहिं ॥४०॥
रिस रस दधि सक्कर जहाँ, मधु मधुरी मुसकान।
घृत सनेह छवि पय करै, दृग पंचामृत पान ॥४१॥
क्यौं न रसीले होहिं दृग, जे पोखे हित लाल।
खाटे आम मिठात हैं, भुस मैं दीनै पाल ॥४२॥
यातैं पल-पलना लगत, हेरत आनन्द कंद।
पियत मधुर छवि दृगन कै, जात ओठ ह्वै बन्द ॥४३॥

३४—सुबरन=सोना, अच्छा रंग। घरिया=सोना गलाने का पात्र। सुहाग=सुहागा। कुंदन=लाल।

३५—निहाल=खुश। तुव गाँठ को=तुम्हारे पास, या व्यय।

३६—विथा=व्यथा। ३७—बेल=लता।

३८—पैड=पैर। अधिन=आधीन। ३९—नैननि=नैनों से।

४०—सुहर=मित्र। सिहहि=इर्ष्या करते हैं। ४१—रिस=क्रोध। मधु=शहद। पय=दूध।

४२—पोखे=पाले, सेये। भुस=भूसा। ४३—पल-पलना=पलक पल भर भी नहीं।

यह छोटे बित नैन ये, करत बड़ से काम।
तिल तारन बिच लै धरे, मोहन मूरति स्याम ॥४४॥

भौंह कुटिल वरुनी कुटिल, नैना कुटिल दिखात।
वेधन कौं नेही हियौ, क्यौं सूधे ह्वै जात ॥४५॥

नैन-बान जिहि उर छिदै, कसकत लेत न साँस।
मीतहि उनकी है दवा, मिलै न बैदन पास ॥४६॥

जौ कछु उपजत आइ उर, सो वै आँखैं देत।
रसनिधि आँखैं नाम इन, पायौ अरथ समेत ॥४७॥
उपजत जीवन-मूर जहँ, मीत दृगन मैं आइ।
तिनके हेरे तुरत ही, अतन सतन ह्वै जाइ ॥४८॥
श्रवत रहत मन कौ सदा, मोहन गुन अभिराम।
तातैं पायौ रसिक निधि, श्रवन सुहायौ नाम ॥४९॥
जो कहियै तौ साँच कर, को मानै यह बात।
मन के पग छाले परे, पिय पै आवत जात ॥५०॥
मन मैला मन निरमला, मन दाता मन सूम।
मन ज्ञानी अज्ञान मन, मनहि मचाई धूम ॥५१॥
उड़ौ फिरत जो तूल सम, जहाँ तहाँ बेकाम।
ऐसे हरुये कौ धरयो, कहा जान मन नाम ॥५२॥
को अवराधे जोग तुव, रहु रे मधुकर मौन।
पीताम्बर के छोर तैं, छौर सकै मन कौन ॥५३॥

४४–बित्त=धन। तिल तारन=आँखो के काले तारे।
४५–कुटिल=टेढ़ा। नेही=प्रेमी। ४६=कसकत=सालता हैं।
४७–आँखै देत=दिखाई देता है। ४८–अतन=कामदेव। सतन=शरीर धारी।
४९–श्रवन=कान। ५०–पग=पैर।
५१–निरमला=निर्मल। ५२–तूल=रुई। हरुवे=हलके। मन=४० सेर वजन।
५३–अवराधे=अराधना करे। मधुकर=भ्रमर या उद्धव।

निरख छबीले लाल कौ, मन न रहौ मो हाथ।
बँधौ गयौ ता बसि भयौ, छवी-दान के साथ ॥५४॥
मटकी मटकी सीस धर, चल कछु बकि मुसकाइ।
लखि वह घट की सुध गई, छवि अँटकी दृग आइ ॥५५॥
इही मतौ ठहराइये, अली हमारे जान।
जान न दोजै कान्ह कौं, जान दीजिए जान ॥५६॥
सब दरदन की ज्यौं दवा, जग मैं बिधि कर हीन।
बेदरदी महबूब की, काहे खोइ न दीन ॥५७॥
जसुमति या ब्रज मैं कहौ, अब निबाह क्यौं होइ।
तब दधि चोरी होत ही, अब चित चोरी होइ ॥५८॥
सुध त रही देखतु रहै, कल न लखै बिन तोहिं।
देखै अनदेखै तुहै, कठिन दुहूँ बिधि मोहिं ॥५९॥
नींद दुहुन के दृगन मैं, सकै न पल ठहराइ।
जो चोरी कौ फिरत है, जिहि चित चोरो जाइ ॥६०॥
उदौ करत जब प्रेम-रवि, पूरब दिसि तैं आइ।
कहू नैम तम जात है, देखौ जात बिलाइ ॥६१॥
चसमन चसमा प्रेम कौ, पहिले लेहु लगाइ।
सुंदर मुख वह मीत कौं, तब अवलोकौ आइ ॥६२॥
अद्भुत गत यह प्रेम की, बैनन कही न जाइ।
दरस भूख लागै दगन, भूखइ देत भगाइ ॥६३॥
प्रेम-पियाला पी छके, तेई हैं हुसियार।
जे माया मद सौं भरे, ते बूड़े मँझधार ॥६४॥

५४—छवी=शोभा। ५५—मटकी=गगरी, चंचल हुई।
५६—अलि=सखी। जान=प्राण। ५७—खोइ=खोज।
५८—दधि=दही। होत ही=होता था। ५९—कल=चैन।
६०—दुहुन=दोनों। ६१—उदौ=निकलना। नैनतम=नियमरूपी अँधेरा।
६२—चसमन=आँखों में। ६३—बैनन=वाणी से। ६४—छके=मस्त।

हरि बिछुरत बीती जु हिय, सो कछु कहत बनैन।
अकथ कथा यह प्रेम की, जिय जानै कै नैन ॥६५॥
उरझत दग बँधि जात मन, कहौ कौन यह रीति।
प्रेम नगर मैं आई कैं, देखी बड़ी अनीति ॥६६॥
नेम न ढूँढ़े पाइयै, जेहि थल बाढ़ै प्रेम।
रहत आइ हरि दरस के, प्रेम आसरै नेम ॥६७॥
मन मैं बस कर भावते, कहौ कवन यह हेत।
प्रकट दृगन कौं आइ कै, क्यों न दिखाई देत ॥६८॥
तौ तुम मेरै पलन तैं, पलक न होते ओट।
व्यापी होती जो तुमैं, ओट भये की चोट ॥६९॥
वह पीताम्बर की पवन, जब तक लगै न आइ।
सुमन कली अनुराग की, तब तक क्यौं विगसाइ ॥७०॥
अद्भुत गत यह प्रेम की, लखौ सनेही आइ।
जुरैं कहूँ, टूटै कहूँ, कहूँ गाँठ परि जाइ ॥७१॥
और लतन सों हित-लता, अद्भुत गति सरसाइ।
सुमन लगैं पहिलै इहै, पाछे कै हरियाइ ॥७२॥
बार बार ब्रज बाल कौं, यह बिध हियौ डराइ।
नेह लगैं मोहन दसा, मत हम सी होइ जाइ ॥७३॥
कहनावत यह मैं सुनी, पोषत तन कौं नेह।
नेह लगायै अब लगी, सूखन सगरी देह ॥७४॥
तुम गिरि लै नख पै धर्यो, इन तुम कौं दृग कोर।
दो मैं तै तुमही कहौ, अधिक कियौ केहि जोर ॥७५॥

६५–अकथ=अकथनीय। ६६–अनीति=अन्याय।
६७–नेम=नियम। ६८–भावते=प्रेमी, प्रभु।
६९–पलन=पलक। पलक=एक पल। ७०–सुमन=फूल, अच्छा मन।
७१–सनेही=प्रेमी। ७२–सुमन=पुष्प, अच्छामन। पाछे=पीछे।
७३–हियौ=हृदय। ७४–कहनावत=लोकोक्ति। नेह=प्रेम, तेल। ७५–नख=नाखून।

बारक तुम गिर कर धर्यो, गिरधर पायौ नाम।
सदा रहै तुम उर धरै, उनकौं अबला नाम ॥७६॥

अँधियारी निस कौ जनम, कारै कान्ह गुवाल।
चित-चोरी जो करत हौ, कहा अचम्भौ लाल ॥७७॥

गोपी जो तुहि प्रेम करि, करती नहीं सनाथ।
को कहतौ तुहिं नन्द-सुत, जग मैं गोपीनाथ ॥७८॥

जौ न मिलेंगे स्याम-घन, वाहि तुरतही आइ।
बिरह अगिन सौं राधिका, दैहै व्रजहि जराइ ॥७९॥

बिरह-अगिन सुन सुन लगै, जब जब उर मैं आन।
तब तब नैन बुझावहीं, बरस सरस अँसुवान ॥८०॥

जब लग काँचे घट पके, बिरह अगिन मैं नाहिं।
नेह नीर उनमैं अरे, भरे कौन बिधि जाहिं ॥८१॥

बेग आइ कै मीत अब, कर हिसाव यह साफ।
मेहर नजर कै बिरह की, बाकी कर दै माफ ॥८२॥

कहियौ पथिक सँदेस यह, मन मोंहन सौं टेर।
बिरह-बिथा जो तुम हरी, हरी भई ब्रज फेर ॥८३॥

जीवै लैवा जोत कौ, दोऊ देहु मिलाइ।
ऊधौ जोग बियोग मैं, अंतर कह ठहराइ ॥८४॥

मन हरिबे की ज्यों पढ़े, पाटी स्याम सुजान।
तौ यहऊ पढ़ते कहूँ, दीबौ दरसन-दान ॥८५॥

७६—बारक=एक बार। ७७—निस=रात्रि। अचम्भौ=आश्चर्य।
७८—सनाथ=धन्य। ७९—स्याम-घन=कृष्णरूपी बादल।
८०—सरस=रसीले। ८१—काँचे=कच्चे। घट=घड़ा। नेह नीर=प्रेम जल।
८२—बेग=शीघ्र। मेहर नजर=कृपा दृष्टि। बाकी=लगान। माफ=क्षमा।
८३—टेर=पुकारकर। हरी=हरण किया, हरिया गई।
८४—जीवै=जीव। अंतर=फर्क, दुराव। ८५—हरिवे=हरने।

जिते नखत बिधि दृग तिते, जो रच देतौ मोहि।
तृपित न होते वे तऊ, निरख भावते तोहि ॥८६॥
नेही दृग जोगी भए, बरुनी जटा बढ़ाइ।
अरे मीत तैं दै इन्हैं, दरसन भिच्छा आइ ॥८७॥
मोहन लखि जो बढ़त सुख, सो कछु कहत वनै न।
नैनन कै रसना नहीं, रसना कै नहिं नैन ॥८८॥
लगत कमल-दल नैन जल, झपट लपट हिय आइ।
बिरह लपट अकुलाइ जब, भाज हिए तैं जाइ ॥८९॥
अमरैया कूकत फिरै, कोइल सबै जताइ।
अमल भयौ ऋतुराज कौ, रुजू हौहु सब आइ ॥९०॥
अरी मधुर अधरान तैं, कटुक बचन मत बोल।
तनक खुटाई तैं घटै, लखि सुबरन को मोल ॥९१॥
अलगरजी धन सौं नहीं, सुनियौ संत सुजान।
अरजी चात्रिक दीन की, गरजी सुनै न कान ॥९२॥
क्योला हू आगी लगै, उज्वल होत अँगार।
विरह जरत जो काहु के, गोरे होत मुरार ॥९३॥
खोल न घूँघट ससि मुखी, होइ न कहूँ अकाज।
बाढ़ न आवे उदधि में, लौट न जाँइ जहाज ॥९४॥
नेह भरे दृग दीप में, बाती लाज जराइ।
जो पिय की आरति करै, आरत कौन न जाइ ॥९५॥

८६—तृपित=तृप्ति। भावते=प्रियतम। ८७—बरुनी=बरौनी। मीत=मित्र।
८८—रसना=जीभ। ८९—भाज=भाग।
९०—अमरैया=आम्रबन। अमल=अधिकार।
९१—अधरान=अधरों। सुबरन=सोना, सुन्दरता।
९२—अलगरजी=कृतघ्नी। चात्रिक=चातक। गरजी=स्वार्थी।
९३—काहु=किसी। मुरार=कृष्ण। ९४—लौट=उलट।
९५—आहत=दुख।

को न बहानो जानि है, वृथा छुड़ावत बाँह।
बैनन में नाहीं बसी, नैनन में वहि नाँह ॥९६॥

सन्ध्या माँहिं सँयोग की, दृग-दिहरी के बीच।
विरह तोहि पिय मारिहै, हिरना कुस सौ नीच ॥९७॥

मिल्यो न उन ब्रज तरुन हूँ, भये जु जरिकैं राख।
राख चढ़ाये हरि मिलत, देओ ऊधो साख ॥९८॥

लाखन सौहैं मात के, आँखन सौहैं जात।
माँखन सौहैं खात है, माखन सौहैं खात ॥९९॥

राधा सब बाधा हरैं, श्याम सकल सुख देंय।
जिन उर जा जोरी बसैं, निरबाधा मुख लेंय ॥१००॥

९६—बैनन=ज्ञातों। वहि=वही। नाँह=नाथ, प्रेमी। ९७—संयोग=मेल।
९८—तरुन=वृक्षों। साख=प्रमाण। ९९—सौहैं=सामने, सोगन्ध।
१००—जोटी=जोड़ी। निरबाधा=बिना वाधा के।

श्री मतिराम त्रिपाठी

[मतिराम]

ब्रजभाषा के मधुर कवि मतिराम का स्थान प्राचीन कवियों में अदरणीय है। जैसी सरस ब्रज भाषा मतिराम ने लिखि हैं; वैसी किसी भी ब्रजभाषी कवि से नहीं बन पड़ी।

मतिराम का जन्म संवत् १६७४ के आसपास ग्राम त्रिविक्रमपुर जिला कानपुर में हुआ था। इसके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था जिनके चार पुत्र चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर थे।

यह बूंदी राज्याधिपति महाराज राव भाऊसिंह के आश्रित थे! इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ ललित ललाम, रसराज और मतिराम सतसई हैं।

मतिराम सतसई हिन्दी साहित्य में अपना एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखती है। बिहारी सतसई के पश्चात् हिन्दी संसार से मतिराम सतसई का प्रादुर्भाव हुआ है तथापि कवि को इसमें जो सफलता और ख्याति मिली है वह अनुपम है। ब्रजभाषा की मधुरता का जो प्राञ्जल, शुद्ध और मधुर रूप इनकी सतसई में दृष्टिगोचर होता है वह किसी भी ब्रजभाषा सतसई में नहीं है। भाषा की मधुरता की सफलता बिहारी सतसई से भी आगे बढ़ी हुई है।

कलापक्ष में मतिराम सतसई को बिहारी सतसई से अधिक सफलता नहीं मिली। किन्तु भाषा और प्रसाद गुण में मतिराम सतईकार बिहारी सतसई कार से कई पग आगे बढ़े हुए प्रतीत होते हैं।

दोहाकार के अतिरिक्त मतिराम उच्चकोटि के कवित्त और सवैया लेखक भी हैं। वीर रस की कविता करने में आप सिद्ध हस्त हैं। वे वीररस में भूषण, शृंगार रस में देव और बिहारी के टक्कर के कवि हैं।

हिन्दी साहित्य को मतिराम सतसई और विशेषकर उनकी व्रज भाषा के साहित्यिक रूप पर गर्व है।

❀

[दोहा [

मो मन तम-तोमहि हरौ, राधा को मुखचंद।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं, नँद-नंदन आनन्द ॥ १ ॥

राधा मोहन लाल कौ, जाहि न भावन नेत।
परियौ मुठी हजार दस, ताकी आँखिनि खेह ॥ २ ॥

कत सजनी है अनमनी, अँसुवा भरति ससंक।
बड़े भाग नँदलाल सों, झूँठहु लगत क़लंक ॥ ३ ॥

औगुन बरनि उराहनो, ज्यों ज्यों ग्वालिनि देहि।
त्यों-त्यों हरि तन हेरि हँसि, हरषति महरिहि येहि ॥ ४ ॥

पानिप मैं घर मीन को, कहत सकल संसार।
दृग-मीननि को देखियत, पानिप पारावार ॥ ५ ॥

१—तम-तोम=घोर अन्धकार।

नोट—राधा-मुख चन्द्र कवि के मन में व्याप्त अंधकार को दूर करे। वह चन्द्र-मुख जो कृष्ण के हृदय रूपी समुद्र में आनन्द की लहरें उठाता है। चन्द्रमा की चाँदनी से समुद्र में ज्वार भाटा आता है।

२—परियौ=पड़ेगी। मुठी=मुट्ठी। खेट=धूल।

३—कत=क्यों। सजनी=सखी। अँसुवा भरति=रोती है।

४—बरनि=वर्णन करके। उराहनो=उलाहना। हरितन=कृष्ण के मुख। हेरि=देख। महरिहि=यशोदा।

५—दृग-मीननि=नेत्र रूपी मछलियाँ। पारावार=समुद्र।

नींद भूख अरु प्यास तजि, करती हो तन राख।
जलसाई बिन पूजिहैं, क्यों मन के अभिलाख ॥ ६ ॥

तेरी मुख समता करी, साहस करि निरसंक।
धूरि परी अरविंद मुख, चंदहि लग्यो कलंक ॥ ७ ॥

कहा भयो मतिराम हियँ, जो पहिरी नंदलाल।
लाल मोल पावै नहीं, लाल गुंज की माल ॥ ८ ॥

गुन औगुन को तनकऊ, प्रभु नहि करत विचार।
केतक कुसुमन आदरत, हर सिर धरत कपार ॥ ९ ॥

निज बल के परिमान तुम, तारे पतित बिसाल।
कहा भयो जु न हौं तरतु, तुम न खिस्याहु गुपाल ॥१०॥

झूठे ही ब्रज में लग्यो, मोहिं कलंक गुपाल।
सांचे हूँ कबहूँ हिये, लगे न तुम नंदलाल ॥११॥

लाल तिहारे संग में, खेले खेल बलाइ।
मूँदत मेरे नैन हो, करनि कपूर लगाइ ॥१२॥

अद्‌भुत या धन को तिमिर, मो पै कह्यो न जाइ।
ज्यों-ज्यों मनिगन जगमगत, त्यों-त्यों अति अधिकाइ ॥१३॥

कोटी-कोटी मतिराम कहि, जतन करो सब आय।
फाटे मन अरु दूघ मैं, नेह नहीं ठहराय ॥१४॥

६—जलसाई=विष्णुभगवान। ७—धूरि परी=धूल (पराग) पड़ी।

नोट—तेरी मुख की समता करने पर कमल में धूल और चन्द्रमा में कलंक हुआ।

८—लाल=मणि विशेष, कृष्ण। ९—तनकऊ=जरा भी। हर=महादेव

१०—पतित=पापी, गिरालुपा। खिस्याहु=खिसियाना।

११—हिये=हृदय। १२—करनी=हाथों।

नोट—आँख मूंदने पर प्रेमाश्रु निकलते हैं, उससे कपूर का आभास है।

१३—अति=अत्याचार। १४—फाटे फटने से। नेह=प्रेम, स्नेह, चिकना।

दिपै देह दीपति गयौ, दीप बयारि बुझाइ।
अंचल ओट किये तऊ, चली नवेली जाइ ॥१५॥
मोमन सुक लौं उडिगयौ, अब क्यों हूँ न पत्याइ।
बसि मोहन बनमाल में, रह्यो बनाउ बनाइ ॥१६॥
सुबरन बेलि तमाल सों, धन सो दामिनि देह।
तूँ राजति घनस्याम सों, राधे सरस सनेह ॥१७॥
नर नारी सब जपत हैं, घर-घर हरिको नाउँ।
मेरे मुँह धोखें कढ़त, परत गाज ब्रज गाउँ ॥१८॥
निसि-दिन निंदति नंद है, छिन-छिन सासु रिसाति।
प्रथम भए सुत को बहू, अंकहि लेति लजाति ॥१९॥
अब तेरो बसिबो इहाँ, नाहिन उचित मराल।
सकल सूखि पानिप गयो, भयो पंकमय ताल ॥२०॥
मन दैसुनिए लाल यह, तनक तरुनि की बात।
अंसुवा उड़गन गिरत हैं, होन चहत उतपात ॥२१॥
जगै जोन्ह की जोति यों, छपै जलद की छाँह।
मनौ छीरनिधि की उठै, लहरि छहरि छिति माँह ॥२२॥
श्रम-जल-कन झलकन लगे, अलकनि कलित कपोल।
पलकनि रस छलकन लगे, ललकन लोचन लोन ॥२३॥
रात्यौ दिन जागति रहै, अगिनि लगनि की मोहिं।
मो हिय मैं तू बसतु है, आँच न पहुँचति तोहिं ॥२४॥

१५—नोट—दीपक अंचल के ओट में बुझ गया है, किन्तु सौन्दर्य के कारण वह स्वयं नहीं जानते।

१६—सुक=तोता।
१७—सुवरन=सोक। राजति=शोभायमान।
१८—धोखें=भूल से। गाज=बज्र।
१९—अंकहि=गोद।
२०—पानिप=जल। पंकमय=कीचड़युक्त।
२१—उड़गन=तारे।
२२—छीरनिधि=छीर सागर।
२३—श्रम-जल-कन=पसीने की बूंदे।
२४—लगनि=प्रेम।

बिन देखें दुख के चलें, देखें सुख के जाहिं।
कहो लाल उन दृगनि के, अँसुवा क्यों ठहराहिं ॥२५॥
बाँधी दृग डोरानि सों, घेरी बरुनि समाज।
गई तऊ नैनानि तैं, निकसि नटी-सी लाज ॥२६॥
तुम सों कीजै मान क्यों, ब्रज नायक मनरंज।
बात कहत यों बालके, भरि आए दृग कंज ॥२७॥
सजि सिंगार सेजहिं चली, बाल जहाँ पति-प्रान।
चढ़त अँटारी की सिढ़ी, भई कोस परिमान ॥२८॥
सपनेहूँ मन भाँवतो, करत नहीं अपराध।
मेरे मनहू में सखी, रही मान की साध ॥२९॥
चित्रहु में सखि जाहि लखि, होत अनंत अनंद।
सपने हूँ कबहूँ सखी, मोहिं मिलिहै ब्रजचंद ॥३०॥
सखी सलोनी देह में, सजे सिंगार अनेक!
कजरारी अँखियानि में, भूल्यो काजर एक ॥३१॥
पिय समीप को सुख सखी, कहैं देत ये बैन।
अबल अंग निरबल बचन, नवल सुनींदे नैन ॥३२॥
ध्यान करत नँदलाल कौ, नये नेह में बाम।
तनु बूढ़त रँग पीत मैं, मन बूड़त रँग श्याम ॥३३॥
कहा भयो मेरी हित्, हो तुम सखी अनेक।
सपने मिलवत नाथ कैं, नींद आपनी एक ॥३४॥

२५—चलें=गिर रहे हैं। जाहिं=निकल रहे हैं। २६—तऊ=तिस पर भी।
२७—मनरंजन=मन को प्रसन्न करने वाले। बाल=सुन्दरी।
२८—सिढ़ी=सीढ़ी, नसेनी। परिमान=अन्दाज। २९—मनहूँ=मनमें। साध=इच्छा।
३०—चित्रहु=चित्र में। मिलिहैं=मिलेंगे। ३१—कजरारी=काली।
३२—अबल अंग=शिथिल अंग। निरवल वचन=अटपट वैन। सुनींदे=नींद भरे।
३३—बाम=सुन्दरी। रंगपीत=पीला रंग अर्थात् दुर्बलता।
३४—हित्=भलाई चाहने वाली।

मन भाँवन को भाँवती, भेंटनि रस उतकंठ।
बाँही छुटै न कंठतें, नाहीं छुटै न कंठ ॥३५॥
सकुचि न रहियै साँवरे, सुनि गरबीले बोल।
चढ़ति भौंह विकसत नयन, बिहसत गोल कपोल ॥३६॥
कहा काज कल कानि सों, लोक-लाज किन जाइ।
कुंज-बिहारी कुंज मैं, कहूँ मिलैं मुसकाइ ॥३७॥
पिसुन बचन सज्जन चितै, सकै न फोरि न फारि।
कहा करै लगि तोय मैं, तुपक तीर तरवारि ॥३८॥
भौंह कमान कटाक्ष सर, समर भूमि बिच लैन।
लाज सजेहूँ दुहुँनि के, सजल सुभट से नैन ॥३९॥
निज पग सेवक समुझि करि, करि उर ते रस दूरि।
तेरी मृदु मुसकानि है, मेरी जीवन मूरि ॥४०॥
तरु ह्वै रह्यो करार कौ, अब करि कहा करार।
उर धरि नंदकुमार कौ, चरन कमल सुकुमार ॥४१॥
दिन-दिन दुगुन बढ़ै न क्यों, लगनि-अगिनि की झार।
उनै-उनै दृग दुहुँनि कै, बरसत नेह अपार ॥४२॥
बढ़त-बढ़त बढ़ि जाइ पुनि, घटत-घटत घटि जाइ।
नाह रावरे नेह-बिधु, मंडल जितौ बनाइ ॥४३॥
प्रतिबिंबित तो बिंब में, भूतल भयो कलंक।
निज निरमलता दोष यह, मन में मानि मयंक ॥४४॥

३५—रस उतकंठ=रस से उत्कंठिता होकर। कंठ=गला और बोल।

३६—चढ़ति=चढ़ी हुई, क्रोधित। ३७—कलकानि=चुगली। लोक-लाज=लोक-लज्जा।

३८—पिसुन=छली। तोय=जल। तुपक=तोप।

३९—सर=बाण। सजल=प्रेमाश्रु भरे। सुभट=वीर।

४०—जीवन मूरी=जीवन मूल। ४१—करार=कगार।

४२—लगनि=अगिनि=प्रेमाग्नि। उनै-उनै=उठ-उठ कर। नेह=स्नेह, स्निग्धपदार्थ।

४३—रावरे=तुम्हारे। नेह-बिधु=प्रेम चंद। ४४—निरमलता=निष्कलंकता।

तिहिं पुरान नव द्वै पढ़े, जिहिं जानी यह बात।
जो पुरान सो नव सदा, नव पुरान ह्वै जात ॥४५॥
उमगी उर आनंद की, लहरि छहरि दृग राह।
बूड़ी लाज-जहाज हों, नेह-नीर-निधि माह ॥४६॥
मानत लाज लगाम नहिं, नेक न गहत मरोर।
होत तोहिं लख बाल के, दृग तुरंग मुँह जोर ॥४७॥
हियें बसत मुख हसत हौ, हमकों करत निहान।
घट-घट व्यापी ब्रह्म तुम, प्रगट भए नँदलाल ॥४८॥
मेरे दृग बारिद वृथा, बरसत बारि प्रबाह।
उठत न अंकुर नेह कौ, तो उर ऊसर माँह ॥४९॥
राधा चरन सरोज नख, इन्द्र किए ब्रज चन्द्र।
मोर मुकुट चन्द्र कनि तूँ, चख चकोर अनंद ॥५०॥
सुखद साधुजन को सदा, गजमुख दानि उदार।
सेवनीय सब जगत कौ, जग मा बाप कुमार ॥५१॥
मदरस मत्त मिलिन्द गन, गात मुदित गन-नाथ।
सुमिरत कवि भतिराम के, सिद्धि-रिद्धि-निधि हाथ ॥५२॥
अंग ललित सित रंग पट, अंगराग अवतंस।
हंस बाहिनी कीजियै, बाहन मेरो हंस ॥५३॥
नृपतिनैन कमलनि वृथा, चितवत बासर चाहि।
हृदय कमल मैं हेरि लै, कमल मुखी कमलाहि ॥५४॥
ब्रज ठकुराइनि राधिका, ठाकुर किए प्रकास।
ते मन मोहन हरि भए, अब दासी के दास ॥५५॥

४५—नवद्वै=अठारह। नव=नया। ४६—नेह-नीर-निधि=प्रेम समुद्र।
४७—दृग-तुरंग=नेत्ररूपी घोड़े। ४८—हियें=हृदय में।
४९—दृग वारिद=नेत्ररूपी बादल। ५०—चख=नेत्र।
५१—गजमुख=श्रीगणेश। ५२—गणेश वन्दना।
५३—सरस्वती प्रार्थना। ५४—कमलमुखी=कमल से मुखवाली।
५५—दासी के दास=कुबजा के दास।

जो निसि दिन सेवन करै, अरु जो करै विरोध।
तिन्है परमपद देत प्रभु, कहौ कौन यह बोध ॥५६॥
पगी प्रेम नंदलाल के, हमें न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइ कै,, भीख न माँगत लोग ॥५७॥
मधुप त्रिभंगी हम तजी, प्रकट परम करि प्रीति।
प्रकट करी सम जगत में, कटु कुटिलनु की रीति ॥५८॥
विषयनि तें निरवेद बर, ज्ञान जोग व्रत नेम।
विफल जानियों ए बिना, प्रभु पग पंकज प्रेम ॥५९॥
देखत दीपति दीप की, देत प्रान अरु देह।
राजत एक पतंग में, बिन कपट को नेह ॥६०॥
प्रगट कुटिलता जो करी, हम पर स्याम सरोस।
मधुप जोग बिख उगिलियै, कछु न तिहारो रोस ॥६१॥
हँसत बाल के बदन में, यों छवि कछू अतूल।
फूली चंपक बेलि तें, झरत चमेली फूल ॥६२॥
उदै भयो है जलद तू, जग कौ जीवन-दान।
मेरो जीवन हरतु है, कौन बैर मन मान ॥६३॥
मो मन मेरी बृद्धि लै, करि हरि को अनुकूल।
लै त्रिलोक की साहिबी, दै धतूर को फूल ॥६४॥
मधुप मोह मोहन तज्यों, यह स्यामनि की रीति।
करौ आपने काज कौं, तुम्हैं जाति सी प्रीति ॥६५॥
मन्त्रिनि के बस जो नृपति, सो न लहत सुखसाज।
मनहिं बाँधि दृग देत दृग, मन कुमार कौ राज ॥६६॥

५६—परमपद=मोक्ष। ५७—मधुप=उद्धव, जो गोपियों को ज्ञान सिखाने आए थे।
५८—कटु=कड़वे। ५९—भक्ति विषयक।
६०—दीपति=प्रकाश। ६१—मधुप=भ्रमर या उद्धव, गोपियों का उपालम्भ।
६२—अतूल=अतुलित। ६३—मन मान=मन में समझ कर।
६४—शंकर स्तुति। ६५—उद्धव से कृष्ण के प्रति गोपियों का उपालम्भ।
६६—मंत्रिनि=मंत्रियों। मनकुमार=मनरूपी राजकुमार।

लाल चित्र अनुराग सों, रँगति नित्त सब अंग।
तऊ न छाड़त साँवरो, रूप साँवरो रंग ॥६७॥
सरद चंद की चाँदनी, को कहिए प्रतिकूल।
सरद चंद की चाँदनी, कोक हिए प्रतिकूल ॥६८॥
लखत लाल मुख पाइहौ, बरनि सकै नहिं बैन।
लसत बदन सत पत्र सौ, सहसपत्र से नैन ॥६९॥
सित अम्बर जुन तियनि में, उड़ि उड़ि परत गुलाल।
पुंडरीक पटलनि मनो, बिलसत आतप बाल ॥७०॥
स्यामरूप अभिराम अति, सकल बिमल गुनधाम।
तुम निसिदिन मतिराम की, मतिबिसरौ मतिराम ॥७१॥
प्रति पालत सेवक सकल, पलन दलमलत डाँटि।
संकर तुम सब साँकरे, सबल साँकरैं काटि ॥७२॥
सेवक सेवा के सुनें, सेवा देव अनेक।
दीन बन्धु हरि जगत है, दीन वन्धु हर एक ॥७३॥
सुनि सुनि गुन सब गोपिकनु, समुझ्यो सरस सवाद।
कढ़ी अधर की माधुरी, मुरली ह्वै करि नाद ॥७४॥
अधम अजामिल आदि जे, हाँ तिनको हौं राउ।
मोहूँ पर कीजै मया, कान्ह दया-दरियाउ ॥७५॥

६७—साँवरो=कृष्ण या साँवरापन। ६८—कोक=चकवा।

६९—सतपत्र (शतपत्र)=कमल। सहसपत्र (सहस्त्रपत्र)=कमल। मुख और नेत्र कमल-पुष्पों के सदृश हैं। भाव यह है कि मुख देखने से यदि सौ मनोभाव लक्षित होते हैं तो नेत्रों से सहस्त्र।

७०—सित-अंबर-जुत-तियनि=श्वेत वस्त्र पहिने हुए स्त्रियाँ। पुण्डरीक=श्वेतकमल। आतप-बाल=प्रातःकाल की किरणें।

७१—'मति' शब्द तीन बार प्रयोग में आया है। पहिली बार 'मतिराम' कवि का नाम, दूसरी बार निषेधात्मक 'मत' और तीसरी बार 'मति' के अर्थ बुद्धि के हैं।

७२—साँकरे=संकट में और जंजीर या बंधन। ७३—दीनबन्धु=दीनों के भाई।

७४—कढ़ी=निकली। ७५—राउँ=राजा। मया=प्रेम। दयादरियाउ=दया के नद।

अनमिख नैन कहे न कछु, समुझै सुनै न कान।
निरखे मोर पखानि के, भई पखान समान ॥७६॥
भौंर भाँवरे भरत हैं, कोकिल कुल मँडरात।
या रसाल की मन्जरी, सौरभ सुभ सरसात ॥७७॥
मन्डित मृदु मुसक्यानि दुति, देखन हरत कलेस।
ललित लाल तेरो बदन, तिय लोचन तारेस ॥७८॥
आनन्द आँसुन सौं रहैं, लोचन पूरि रसाल।
दीनी मानहु लाज कों, जल अंजुलि बर बाल ॥७९॥
उड़त भौंर ऊपर लसै, पल्लव लाल रसाल।
मनो सधूम मनोज को, ओज अनल की ज्वाल ॥८०॥
देखि परे नहिं दूबरी, सुनियें स्याम सुजान।
जानि परे परजंक में, अंग आँच अनुमान ॥८१॥
जे अंगनि पिय संग में, बरखत हुते पियूष।
ते बीछू के डंक-से, भये मयंक मयूष ॥८२॥
लाल तिहारे चलन की, सुनी बाल यह बात।
सरद नदी के स्रोत लौं, प्रतिदित सूखति गात ॥८३॥
भोग नाथ नर नाथ के, गुन गन बिमल बिसाल।
भिच्छुक सेवत पानि हैं, पग सेवत महिपाल ॥८४॥
ज्यों-ज्यों विषम वियोग की, अनल ज्वाल अधिकाइ।
त्यों-त्यों तिय की देह में, नेह उठत उफनाइ ॥८५॥

७६—मोर पखानि=मोर पक्ष। परवान=पत्थर।
७७—झँवरे=मउँलाना। ७८—बदन=मुख। तारेस=चन्द्र।
७९—जल अंजुलि=जलाञ्जलि ८०—सधूम=धुएँ सहित।
८१—परजंक=पलँग। ८२—बरखत=बरसते। पियूष=अमृत।
८३—चलन=चलना।
८४—भोगनाथ=मतिराम जिसके आश्रित थे। यह दोहा कवि ने राजा भोगनाथ की कीर्ति में बनाया है। ८५—नेह=प्रेम। उफनाइ=उबल।

एक भये मन दुहुनि के, छुटै न किएँ उपाउ।
कहौं सिंधु संभेद कौ, कोऊ न सकत छुड़ाइ ॥८६॥
सरल बान जाने कहा, प्रान हरन की बात।
बंक भयंकर धनुष कौ, गुन सिखवत उतपात ॥८७॥
कढ़त पियूषहु ते मधुर, मुख सरसुति के सोत।
भोगनाथ नर नाथ के, साथ बसें कवि होत ॥८८॥
होत जगत में सुजन कौं, दुरजन रोकनहार।
केतक, कमल, गुलाब के, कंटकमय परिहार ॥८९॥
कछु न गनति दुरजननि लखि, तोहि दृगनि सुख देति।
निवरि कंटकनि मधुकरी, रस गुलाब कौ लेति ॥९०॥
फूलति कली गुलाब की, सखि यह रूप लखैन।
मनों बुलावति मधुप कों, दै चुटकी की सैन ॥९१॥
करौ कोटि अपराध तुम, वाके हिए न रोष।
नाह सनेह समुद्र में, बूड़ि जात सब दोष ॥९२॥
कौन भाँति कै बरनियै, सुन्दरता नँद-नंद।
वाके मुख की भीख लै, भयो ज्योतिमय चंद ॥९३॥
सरनागत पालक महा, दान जुद्ध अति धीर।
भोगनाथ नरनाथ यह, पग्यो रहत रस बीर ॥९४॥
जब लौं सजनी बोलियै, ये गरबीले बैन।
जब लगि तुम निरखे नहीं, भोगनाथ के नैन ॥९५॥

८६—उपाउ=उपाय। ८७—बंक=टेढ़ा। गुन=रस्सी, गुण।
८८—सरसुती=सरस्वती। ८९—परिहार=प्रहार।
९०—निवरि=निवारण करके, वचाकर के।
९१—चुटकी=दो उँगलियों से बजाया हुआ शब्द या कलियों के चटकने का शब्द।
९२—दोष=बुराइयाँ।
९३—कौन भाँति=किस प्रकार। ज्योतिमय=प्रकाशमय।
९४—रस बीर=बीर रस। ९५—निरखे=देखे।

तुरग अरब ऐराक के, मनि आभरन अनूप।
भोगनाथ सों भीख लै, भए भिखारी भूप ॥९६॥
मुरलीधर गिरिधरन प्रभु, पीताम्बर घनश्याम।
बकी बिदारन कंस अरि, चीर हरन अभिराम ॥९७॥
पीत झँगुलिया पहिरि कै, लाल लकुटिया हाथ।
धूरि भरे खेलत रहे, ब्रजबासिन ब्रजनाथ ॥९८॥
तिरछी चितवनि स्याम की, लसति राधिका ओर।
भोगनाथ को दीजियै, यह मन सुख बरजोर ॥९९॥
मेरी मति में राम हैं, कवि मेरे मतिराम।
चित मरो आराम में, चित मेरे आराम ॥१००॥

९६–तुरग=घोड़ा। ९७–बकी=बकासुर राक्षस।
९८–पीत=पीला। झँगुलिया=बालकों के पहिनने का कुरते के ढंग का कपड़ा।
९९–बरजोर=जबरन।
१००–मेरी मति (बुद्धि) में राम की बास है। मैं मतिराम नाम कवि हूँ। चित्त में आराम है अतएव चित्त में (आ + राम) हे राम आओ।

श्री वृन्दावन जी

[वृन्द]

हिन्दी साहित्य में 'वृन्दविनोद सतसई' की अच्छी ख्याति है। इसके रचयिता का नाम वृन्दावन है। किन्तु यह अपना उपनाम 'वृन्द' रखते थे। इसी से इस सतसई का नाम वृन्द सतसई और कवि का नाम 'वृन्द' ही विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इनकी गणना सूक्तिकारों में है।

इनके पूर्वज बीकानेर के निवासी थे। इनके पिता का नाम रूप जी था। कहते हैं रूप जी के ५० वर्ष की अवस्था तक कोई सन्तान नहीं हुई, तब इन्होंने गायत्री मंत्र और गोपाल सहस्त्र नाम के पाठ का अनुष्ठान करके श्री जगन्नाथपुरी की पैदल यात्रा की। वहीं इन्हें स्वप्न में सन्तान होने और स्थान बदलने की आज्ञा मिली। यात्रा से लौटकर यह अपनी पत्नी के साथ बीकानेर से मेड़ता चले आये। यहीं वृन्दावन जी का जन्म सम्वत् १७०० आश्विन शुक्ल १ गुरुवार को हुआ। दस वर्ष की अवस्था में 'वृन्द' जी काशी अध्ययन के लिए गए। ३० वर्ष को अवस्था में यह देहली लौट आए। वहाँ उस समय औरंगजेब सिंहासनासीन थे। देहली में बादशाह के मंत्री नवाब मुहम्मद खाँ से इनकी बड़ी घनिष्ठता बढ़ी। इन्हीं की कृपा से यह शाही दरबार में दस रुपये दैनिक वृत्ति पाने लगे, और बादशाह के ज्येष्ठ पुत्र शाहजादा मुअज्ज़म (बहादुर शाह) के अध्यापक नियुक्त हुए।

६४ वर्ष की अवस्था में किशनगढ़ नरेश महाराजा राजसिंह ने शाहमुअज्जम से इन्हें माँग लिया और इन्हें किशनगढ़ में अच्छी जागीर दी। तब से यह यहीं रहने लगे। इनके वंशज अब तक यहाँ निवास करते हैं।

किशनगढ़ राज में अब भी श्री वृन्दावन जी (वृन्द) का वृहत् पुस्तकालय मौजूद है, जिसमें लगभग दस हजार पुस्तकें लिखित और मुद्रित हैं। जिनमें

काव्य, वैद्यक ज्योतिष तथा संस्कृत के ग्रन्थ सम्मिलित हैं। यह पुस्तकालय उनके वंशज कवीश्वर धनश्याम जी के अधिकार में है।

सं० १७४३ वि० में वृन्द जी ने 'भावपञ्चाशिका' नामक काव्यग्रन्थ की रचना की। सं० १७४८ वि० में 'शृङ्गार शिक्षा' नामक स्त्रियोपयोगी ग्रन्थ का निर्माण किया। सं० १७५९ वि० में आपने ढाके की यात्रा की और वहीं 'वृन्द-विनोद सतसई' जो 'दृष्टान्त सतसई' भी कहलाती हैं उसकी रचना प्रारम्भ की और उसे सं० १७६१ वि० कार्तिक शुक्ल १ को ढाके में ही समाप्त किया। यह इनका ७१३ दोहों का सूक्तिमय उत्कृष्ट ग्रन्थ है। सं० १७६२ वि० में किशनगढ़ के राजा रूप सिंह के युद्ध वर्णन सम्बन्धी 'बचनिका' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। सम्वत् १७६४ वि० में इन्होंने 'सत्यस्वरूप' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। जिसमें औरंगजेब के मरने पर शाहजादा मुअज्जम, आज़म, कामबख्श आदि में सिंहासन के लिए जो युद्ध हुआ था, उसका वर्णन है। इसके पश्चात् ही यह किशनगढ़ चले आए।

'वृन्द विनोद सतसई' (दृष्टान्त सतसई) हिन्दी साहित्य के श्रेष्ठ सूक्ति ग्रन्थों में है। यह कवि के पूर्ण अनुभव के पश्चात् लिखा हुआ ग्रन्थ है। यद्यपि इसकी अनेक सूक्तियाँ लचर और अर्थहीनता की द्योतक हैं, किन्तु फिर भी सम्पूर्ण ग्रन्थ बड़ा ही उपादेय और कवि के जीवन काल की अनुभूतियों से ओतप्रोत प्रतीत होता है। कवि का संस्कृत अध्ययन, तत्कालिक राजसभा का वातावरण और उस समय की राजनैतिक परिस्थिति का यह ग्रन्थ अच्छा परिचायक है।

कवि ने यह ग्रन्थ सं० १७६१ कार्तिक शुक्ल सप्तमी चन्द्रवार सन् १७०५ ई० में ढाका नगर में लिखना प्रारम्भ किया है। यह औरंगजेब का अन्तिम समय था। यद्यपि कवि का जन्म रीतिकाल के अन्तर्गत हुआ है, जिस समय कि शृङ्गारात्मक काव्य का दौर था, किन्तु कवि को आप इसका अपवाद पावेंगे। हाँ कहीं-कहीं शृङ्गार रस के दोहे जो इन्होंने लिखे हैं, वह अश्लील से प्रतीत होते है, किन्तु उनमें कवि का चमत्कार प्रत्यक्ष प्रकट होता है।

भाषा भावों के अनुकूल और प्रसादगुण पूर्ण है, किन्तु कहीं-कही भाषा का लचरपन और उसके बेढंगे प्रयोग बेतरह खटकते हैं।

यद्यपि कवि के दोहे जो हिन्दी पाठकों की दृष्टि में अभी तक आए हैं, कवि को एक अच्छे सूक्तिकार के रूप में उनका मान्य कराने पर प्रेरित करते हैं, किन्तु फिर भी सतसई के कुछ दोहे और उनके भावों का उथलापन यह सन्देह उत्पन्न करता है कि क्या यह उसी कवि की रचना है जिसके इतने उत्कृष्ट सूक्तिमय दोहे का हम पठन-पाठन करते थे। फिर भी सतसई पठनीय और मनन योग्य है।

❀

[दोहा]

श्री गुरुनाथ-प्रभाव तें, होत मनोरथ-सिद्धि।
घन तें ज्यों तरु बेलि दल, फूल फलन की वृद्धि ॥१॥
रागी अवगुन ना गिनै, यहै जगत की चाल।
देखौ सब ही श्याम कौ, कहत ग्वालगन लाल ॥२॥
कहा होय उद्यम किए, जौ प्रभुही प्रतिकूल।
जैसे उपजे खेत को, सलभ करत निरमूल ॥३॥
रस अनरस समझै नहीं, पढ़ै प्रेम की गाथ।
बीछू-मन्त्र न जानई, साँप पिटारे हाथ ॥४॥
विद्या-धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाये ना मिलै, ज्यों पंखा को पौन ॥५॥
बनती देख बनाइये, परन न दीजे खोट।
जैसी चलै बयार तब, तैसी दीजै ओट ॥६॥

१—घन=बादल। २—रागी=प्रेमी! ३—सलभ=टीड़ी।
४—रस अनरस=रसिकता और अरसिकता। बीछू-मंत्र=बिच्छू का मंत्र।
५—पौन=हवा। ६—खोट=बिगाड़। बयार=हवा। ओट=आड़।

ओछे नर की प्रीति को, दीनी रीति बताय।
जैसे छीछल ताल जल, घटत घटत घटि जाय ।।७।।
बुरे लगत सिख के बचन, हिये बिचारो आप।
करुई भेषज बिन पिये, मिटै न तन की ताप ।।८।।
उपकारी उपकार जग, सब सों करत प्रकास।
ज्यों कटु मधुरे तरु मलय, मलयज करत सुबास ।।९।।
सो ताके अवगुन कहै, जो जेहि चाहै नाहिं।
तपत, कलंकी विष भरयो, बिरहिन ससिहिं कहाहिं ।।१०।।
रोस मिटै कैसे कहत, रिसं उपजावन बात।
ईधन डारे आग मो, कैसे आग बुझात ।।११।।
जो जेहि भावै सो भलो, गुन को कछु न विचार।
तजि गजमुकता भीलनी, पहिरति गुंजाहार ।।१२।।
अहित किये हू हित करें, सज्जन परम सधीर।
सोखेंहू सीतल करै, जैसे नीर समीर ।।१३।।
प्रेम निबाहन कठिन है, समुझि कीजियो कोय।
भाँग भखन है सुगम पै, लहर कठिन ही होय ।।१४।।
जैसे बन्धन प्रेम को, तैसो बन्ध न और।
काठहिं भेदै कमल को, छेद न निकरै भौंर ।।१५।।
जो समझे जा बात को, सो तिहिं कहै बिचार।
रोग न जानै जोतिषी, बैद ग्रहन कौ चार ।।१६।।

७–ओछे=तुच्छ। छीछल=छिछला। ८–सिख=शिक्षा। भेषज=दवा।
९–मलय=मलयागिरि। मलयज=चन्दन।
१०–तपत=जलता हुआ। कलंकी=कलंकित। विषभर्यो=विष से भरा।
११–रोस=क्रोध। इंधन=लकड़ी।
१२–गजमुक्ता=हाथी के मस्तक से उत्पन्न मोती। गुंजा=घुंघची।
१३–अहित=बुराई।
१४–निबाहन=निभाना। १५–काठहिं=काठ को। भौंर=भ्रमर।
१६–ग्रहन=ग्रहों। चार=चाल, गति।

नवल-नेह आनँद-उमँग, दुरै न मुख चख और।
तैसो जान्यौ जात है, ज्यों सुगन्ध कौ चोर ॥१७॥
बात कहन की रीति में, है अन्तर अधिकाय।
एक बचन ते रिस बढ़ैं, एक बचन तें जाय ॥१८॥
जो लायक जिहिं बात को, तासों तैसी होय।
सज्जन सो न बुरी करैं, दुरजन भली न कोय ॥१९॥
सुख बीते दुख होत है, दुख बीते सुख होत।
दिवस गये ज्यों निस उदित, निसगत दिवस उदोत ॥२०॥
जो भाखैं सोई सही, बड़े पुरुष मुख बानि।
है अनंग ताको कहैं, महा रूप की खानि ॥२१॥
सज्जन अंगीकृत कियो, ताको लेंहिं निबाहि।
छई कलंकी कुटिल ससि, तउ सिव तजत न ताहि ॥२२॥
एक दसा निबहै नहीं, जनि पछितावहु कोय।
रबि हू को इक दिवस में, तीन अवस्था होय ॥२३॥
खलजन सों कहिये नहीं, गूढ़ कबहुँ करि मेल।
यों फैले जग माँहि ज्यों, जल पर बुन्दकि तेल ॥२४॥
अतिही सरल न हूजियौ, देखौ जो बनराय।
सीधे सीधे छेदिये, बाँकौ तरु बच जाय ॥२५॥
सदा समय बलवान पै, नाहिं पुरुष बलवान।
काबिर लरि गोपी लई, विरथ भये रथवान ॥२६॥

१७—नवल=नया। चख=नेत्र। १८—रिस=क्रोध। १९—लायक=योग्य।
२०—निस=रात्रि। उदित=उदय। निसगत=रात्रि व्यतीत होते।
२१—अनंग=विना अंग के (कामदेव)। रूप की खान=अत्यन्त सुन्दर।
२२—अंगीकृत=स्वीकार। छई=क्षयरोगयुत अर्थात् घटता-बढ़ता। ससि=चन्द्र।
२३—रवि=सूर्य। अवस्था=दशा। २४—गूढ़=भेद भरी।
२५—सरल=सीधे। बाँको=टेढ़ा। तरु=पेड़।
२६—कावरि=भील। लरि=लड़कर। विरथ=विनारथ। रथवान=अर्जुन।

बात प्रेम की राखिए, अपने ही मन माँहि।
जैसे छाया कूप को, बाहर निकसै नाँहि ॥२७॥
विद्या गुरु की भक्ति सों, कै कीने अभ्यास।
भील द्रोन के बिन कहे, सीख्यो बान बिलास ॥२८॥
अपनी अपनी ठौर पर, सब कौ लागै दाव।
जल में गाड़ी नाव पर, थल गाड़ी पर नाव ॥२९॥
सब सुख है सन्तोष में, धरिये मन सन्तोष।
नैक न दुरबल होत है, सर्प पवन के पोष ॥३०॥
कुल सपूत जान्यौ परै, लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥३१॥
नियमित जननी उदर मैं, कुल को लेत सभाव।
उछरत सिंहिनि कौ गरभ, सुनि गरजत घनराव ॥३२॥
प्रेम पगन जासों भई, सुख दुख ताके संग।
बसत कमल अलि वास बस, स कमल भखत मतंग ॥३३॥
का रस मैं का रोस मैं, अरि सौं जिनि पतियाय।
जैसे सीतल तप्त जल, डारत आग बुझाय ॥३४॥
बिछुरे गए विदेस हूँ, सज्जन बिछुरैं नाँहि।
दूर भये ज्यौं कुरज की, सुरति सुतन के माँहि ॥३५॥

२७–कूप=कुआँ।
२८–भील=भिल्ल (एकलव्य)। द्रोन=द्रोणाचार्य (कौरवों और पाँडवों के गुरू)।
२९–ठौर=स्थान। दाँव=अवसर।
३०–नैक=बिलकुल। पवन=वायु। पोष=पालन।
३१–होनहार=सुयोग्य। बिरवान=छोटे पौधे। पात=पत्ते।
३२–माता के पेट में ही वंश का स्वभाव नियमित हो जाता है, जैसे मेघ गर्जना सुनकर सिंहनी के पेट का बच्चा हाथी के गरजने की भ्रान्ति से उछलता है।
३३–पगन=लगन। आलि=भ्रमर। मतंग=हाथी। ३४–रस=प्रेम। तप्त=गरम।
३५–कुरज=पक्षी विशेष (कुंज), यह पक्षी अपने अंडों को छोड़कर हजारों मील चला जाता है। किन्तु आने पर ढूंढ़ लेता है।

नवल-नेह आनँद-उमँग, दुरै न मुख चख और।
तैसो जान्यौ जात है, ज्यों सुगन्ध कौ चोर ॥१७॥
बात कहन की रीति में, है अन्तर अधिकाय।
एक बचन ते रिस बढ़ै, एक बचन तें जाय ॥१८॥
जो लायक जिहि बात को, तासों तैंसी होय।
सज्जन सो न बुरी करैं, दुरजन भली न कोय ॥१९॥
सुख बीते दुख होत है, दुख बीते सुख होत।
दिवस गये ज्यों निस उदित, निसगत दिवस उदोत ॥२०॥
जो भाखैं सोई सही, बड़े पुरुष मुख बानि।
है अनंग ताको कहैं, महा रूप की खानि ॥२१॥
सज्जन अंगीकृत कियो, ताको लेंहि निबाहि।
छई कलंकी कुटिल ससि, तउ सिव तजत न ताहि ॥२२॥
एक दसा निबहै नहीं, जनि पछितावहु कोय।
रबि हू को इक दिवस में, तीन अवस्था होय ॥२३॥
खलजन सों कहिये नहीं, गूढ़ कबहुँ करि मेल।
यों फैले जग माँहि ज्यों, जल पर बुन्दकि तेल ॥२४॥
अतिही सरल न हूजियौ, देखौ जो बनराय।
सीधे सीधे छेदिये, बाँकौ तरु बच जाय ॥२५॥
सदा समय बलवान पै, नाहिं पुरुष बलवान।
काबिर लरि गोपी लई, विरथ भये रथवान ॥२६॥

१७—नवल=नया। चख=नेत्र। १८—रिस=क्रोध। १९—लायक=योग्य।
२०—निस=रात्रि। उदित=उदय। निसगत=रात्रि व्यतीत होते।
२१—अनंग=बिना अंग के (कामदेव)। रूप की खान=अत्यन्त सुन्दर।
२२—अंगीकृत=स्वीकार। छई=क्षयरोगयुत अर्थात् घटता-बढ़ता। ससि=चन्द्र।
२३—रवि=सूर्य। अवस्था=दशा। २४—गूढ़=भेद भरी।
२५—सरल=सीधे। बाँको=टेढ़ा। तरु=पेड़।
२६—काबरि=भील। लरि=लड़कर। विरथ=बिनारथ। रथवान=अर्जुन।

बात प्रेम की राखिए, अपने ही मन माँहि।
जैसे छाया कूप को, बाहर निकसै नाहिं ॥२७॥
विद्या गुरु की भक्ति सों, कै कीने अभ्यास।
भील द्रोन के बिन कहे, सीख्यो बान बिलास ॥२८॥
अपनी अपनी ठौर पर, सब कौ लागै दाव।
जल में गाड़ी नाव पर, थल गाड़ी पर नाव ॥२९॥
सब सुख है सन्तोष में, धरिये मन सन्तोष।
नैक न दुरबल होत है, सर्प पवन के पोष ॥३०॥
कुल सपूत जान्यौ परै, लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥३१॥
नियमित जननी उदर मैं, कुल को लेत सभाव।
उछरत सिंहिनि कौ गरभ, सुनि गरजत घनराव ॥३२॥
प्रेम पगन जासों भई, सुख दुख ताके संग।
बसत कमल अलि वास बस, स कमल भखत मतंग ॥३३॥
का रस मैं का रोस मैं, अरि सौं जिनि पतियाय।
जैसे सीतल तप्त जल, डारत आग बुझाय ॥३४॥
बिछुरे गए विदेस हूँ, सज्जन बिछुरैं नाहिं।
दूर भये ज्यौं कुरज की, सुरति सुतन के माँहि ॥३५॥

२७—कूप=कुआँ।
२८—भील=भिल्ल (एकलव्य)। द्रोन=द्रोणाचार्य (कौरवों और पाँडवों के गुरू)।
२९—ठौर=स्थान। दाँव=अवसर।
३०—नैक=बिलकुल। पवन=वायु। पोष=पालन।
३१—होनहार=सुयोग्य। बिरवान=छोटे पौधे। पात=पत्ते।
३२—माता के पेट में ही वंश का स्वभाव नियमित हो जाता है, जैसे मेघ गर्जना सुनकर सिंहनी के पेट का बच्चा हाथी के गरजने की भ्रान्ति से उछलता है।
३३—पगन=लगन। आलि=भ्रमर। मतंग=हाथी। ३४—रस=प्रेम। तप्त=गरम।
३५—कुरज=पक्षी विशेष (कुंज), यह पक्षी अपने अंडों को छोड़कर हजारों मील चला जाता है। किन्तु आने पर ढूंढ़ लेता है।

कहूँ अनादर पाय के, गुनी न करहु अँदेस।
विद्या है तो करहिं गे, सब कोऊ आदेस ॥३६॥
प्रीति टुटेहू सजन के, मन तें हेत छुटै न।
कमलनाल कौ तोरिये, तदपि सूत टूटै न ॥३७॥
धन अरु गेंद जु खेल कौ, दोऊ एक सुभाय।
कर में आवत छिनक में, छिन मैं करतें जाय ॥३८॥
प्रभु कौं चिन्ता सबन की, आपु न करिए नाहिं।
जनम अगाऊ भरत हैं, दूध मातुथन माहिं ॥३९॥
जिहिं जेतौ उनमान तिहिं, तेतो रिजक मिलाय।
कन कीड़ी कूकर टुकर, मन भर हाथी खाय ॥४०॥
विद्या बिन न विराजही, जदपि सरूप कुलीन।
ज्यौं सोभा पावै नहीं, टेसू बास विहीन ॥४१॥
गूढ़ मन्त्र जौलौं रहै, करै मिलि जन दोय।
भई छकानी बात तव, जानि जात सब कोय ॥४२॥
औछे नर के चित्त में, प्रेम न पूर्‌यो जाय।
जैसे सागर को सलिल, गागरि में न समाय ॥४३॥
मनभावन के मिलन के, सुख की नाहिं न छोर।
बोलि उठै नचि नचि उठै, मोर सुनत धन घोर ॥४४॥
जहाँ सजन तहँ प्रीति है, प्रीति तहाँ सुख ठौर।
जहाँ पुष्प तहँ बास है, जहाँ बास तहँ भौंर ॥४५॥

३६—गुनी=गुणी। ३७—कमल नाल=कमल का डंठल। सूत=रेशा।

३८—छिनक=क्षण। ३९—अगाऊ=पहिले से। मातुथन=माता का स्तन।

४०—उनमान=परिणाम। रिजक=रोजी, भोजन। कीड़ी=चींटी आदि।

४१—सरूप=रूपवान। कुलीन=श्रेष्ठ कुलवाला। बास विहीन=सुगंध रहित।

४२—गूढ़ मंत्र=गुप्त विचार। छकानी=छः कान में पहुँचना अर्थात् तीसरे को मालूम होना।

४३—ओछे=तुच्छ। सलिल=जल। ४४—छोर=अन्त। ४५—बास=सुगन्ध।

जो प्रानी परबस पर्‌यो, सो दुःख सहत अपार।
जूथ बिछोही गज सहैं, बन्धन अंकुस मार ॥४६॥
मन प्रसन्न तन चैन जहँ, स्वेच्छाचार बिहार।
संग मृगी मृग सुख सबै, बन बसि तृन आहार ॥४७॥
अगम पंथ है प्रेम को, जहँ ठकुराई नाहिं।
गोपिन के पाछे फिरे, त्रिभुवन पति बन माहिं ॥४८॥
मति फिरि जाय विपत्ति में, राव रंक इक रीत।
हेम हिरन पाछैं गये, राम गँवाई सीत ॥४९॥
गहत तत्व ज्ञानी पुरुष, बात बिचारि बिचारि।
मथनिहार तजि छाछ को, माखन लेत निकारि ॥५०॥
जो जाही को ह्वै रहै, सो तिहिं पूरै आस।
स्वाति-बुन्द बिन सघन में, चातक मरत पियास ॥५१॥
गुन हीं तें ते मानिए, जो जीवन-सुख-भौन।
आग जरावत नगर तउ, आग न आनत कौन ॥५२॥
दीबो अवसर को भलो, जासों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो, घन को कौने काम ॥५३॥
अपनी पहुँच बिचारि कै, करतब करिये दौर।
तेतो पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर ॥५४॥

४६—जूथ विछोही=झुंड से विछुड़ा हुआ।

४७—स्वेच्छाचार विहार=स्वतन्त्र विचरण।

४८—अगम=अगाध। त्रिभुवनपति=कृष्ण।

४९—मति=बुद्धि। हेम हिरन=सोने का मृग।

५०—मथनिहार=मथने वाला। छाछ=मट्ठा।

५१—सघन=बादलों के होते हुए।

५२—जीवन-सुख-भौन=जीवन के सुख का भण्डार। आनत=लाना।

५३—दीबो=देना। अवसर=समय, मौका। बरसिबो=बरसना।

५४—पहुँच=शक्ति। करतब=कार्य। तेतो=जितना। सौर=चादर।

पिसुन छल्यो नर सुजन सों, करत बिसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को, पीवत छार्छाहि फूंकि ॥५५॥

आप बुरे जग है बुरो, भलो भले जग जानि।
तजत बहेरा छाँह सब, गहत आम की आनि ॥५६॥

निष्फल स्रोता मूड़ पै, वक्ता - बचन - बिलास।
ह्राव भाव ज्यों तीय के, पति अन्धे के पास ॥५७॥

समय समझ कै कीजिए, काम वहै अभिराम।
सैंधव माँग्यौ जीमते, घोरा को कह काम ॥५८॥

असुभ करत सोइ होत सुभ, सज्जन बचन अनूप।
स्रवन-पिता दिय दसरथहिं, साप भयो वर-रूप ॥५९॥

अपनी अपनी गरज सब, बोलत करत निहोर।
बिन गरजे बोलै नहीं, गिरवर हू को मोर ॥६०॥

प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिल ते न मिलाय।
दूध दही तें जमत है, काँजी तें फंट जाय ॥६१॥

सुख में होत सरीक जो, दुख सरीक सो होय।
जाकौ मीठो खाइयै, कटुक खाइयै सोय ॥६२॥

५५—पिसुन=छली। बिसास=विश्वास। दाध्यो=जला हुआ। छाछहिं=मट्ठा।

५६—बहेरा=एक वृक्ष विशेष, लोगों का अनुमान है कि इस वृक्ष में कलि और भूतों का निवास है।

५७—वक्ता-बचन-बिलास=अच्छा भाषण। हाव-भाव=स्त्रियों की भाव भंगी।

५८—अभिराम=सुन्दर। सैंधव=नमक, घोड़ा। जीमते=खाते समय। घोरा=घोड़ा।

५९—दिय=दिया हुआ। साप=श्राप। वर=वरदान, राम के स्नेह में दशरथ ने प्राण छोड़े।

६०—गरज=जरूरत, मतलब। गरजे=बादलों के गरजने से।

६१—प्रकृति=स्वभाव। अनमिल=अनमेल। काँजी=खटाई।

६२—सरीक=मिलना, साथ देना। कटुक=कड़ुवा।

या जग की विपरीत गति, समझो देखि सुभाव।
कहैं जनार्दन कृष्ण को, हर को शंकर नाव ॥६३॥
जो जाको हित की कहै, सो ताको अभिराम।
प्रिय-आगम-भाखी भली, बायस पिक किहि काम ॥६४॥
मन भावन के मिलन बिन, यों जिय होत उदास।
ज्यों चकोर को दिन-दसा, चकवा चन्द्र-प्रकास ॥६५॥
धन संच्यो किहि काम को, खाउ खरच हरि प्रीति।
बँध्यो गँधीलो कूप जल, कढ़ै बढ़ै यहि रीति ॥६६॥
निहचै भावी को कहै, प्रतीकार जौ होइ।
तौ नल से हरिचन्द से, विपत न भरते कोइ ॥६७॥
बहुत निबल मिलि बल करैं, करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी, करी निबन्धन होय ॥६८॥
कष्ट परेहूँ साधुजन, नैकु न होत मलान।
ज्यों ज्यों कञ्चन ताइये, त्यों त्यों निर्मल जान ॥६९॥
दुख पाये बिनहूँ कहूँ, गुन पावत है कोइ।
सहै बेध बन्धन सुमन, तब गुन-संयुत होइ ॥७०॥
उद्यम कबहुँ न छाँड़िये, पर आसा के मोद।
गागर कैसे फोरिये, उनयो देखि पयोद ॥७१॥

६३—जनार्दन=जन को पीड़ा देने वाले। शंकर=कल्याणकारी।

६४—प्रिय-आगम-भाखी=प्यारे के आने की सूचना देने वाला। वायस=कौआ। पिक=कोयल।

६५—मनभावन=मन को प्रिय। चकोर=पक्षी विशेष। चकवा=पक्षी विशेष। चन्द्र प्रकास=चन्द्रनी।

६६—संच्यो=एकत्रित। गँधीलो=गँदला। कढ़ै=निकले।

६७—भावी=भविष्य। प्रतीकार=नष्ट करना।

६८—तिनकन=तिनको। करी=हाथी। ६९—मलान=दुःखी। ताइये=तपाइये।

७०—गुन=गुण। बेध=छेदना। गुन-संयुत=गुन सहित अर्थात् माला।

७१—उद्यम=कार्य। पयोद=बादल।

कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फरै, केतिक सींचो नीर ॥७२॥
सहज रसीले होंय सो, करैं अहित पर हेत।
जैसे पीड़ित कीजिए, ऊख तऊ रस देत ॥७३॥
कर बिगरी सुधरै बचहिं, जैसे वनिक विशेष।
हींग मिरिच जीरो कहै, हग मर जर लिख लेख ॥७४॥
बड़े न लोपैं लाजकुल, लोपैं नीच अधीर।
उदधि रहै मरजाद में, बहै उलट नद-नीर ॥७५॥
दोष धरैं निरदोष कौं, जो नर होंय सदोष।
घटि उदार दाता कहैं, जिहि न जीय सन्तोष ॥७६॥
क्यों करिये प्रापति अलप, जामें स्रम अति होय।
कौन जु गिरिवर खोदि कै, चूहो काढ़ैं जोय ॥७७॥
जहाँ चतुर नाहिन तहाँ, मूढ़न को व्यवहार।
बर पीपर बिन ह्वै रहै, ज्यौ एरँड अधिकार ॥७८॥
होय न कारज मो बिना, यह जु कहै सु अयान।
जहाँ न कुक्कुट सब्द तहँ, होत न कहा बिहान ॥७९॥
कहा भयौ जो धन भयो, आदर गुन ते होइ।
कोटि दोय धारी धनुष, गुन बिन गहत न कोइ ॥८०॥

७२—केतिक=कितना ही।

७३—रसीले=प्रेमी, सज्जन। पीड़ित कीजिए=कष्ट दीजिए।

७४—कर=हाथ। बचहिं=बचन से। हग, मर, जर=हींग, मिरच, जीरा।

नोट—पुड़िया में बनिया बिना मात्रा के लिखता किन्तु मात्रा लगाकर पढ़ता है।

७५—लोपैं=खोवें। मरजाद=सीमा। ७६—सदोष=दोषी। घटि=छोटा, बुरा।

७७—प्रापति=प्राप्ति। अलप=अल्प। स्रम=श्रम।

७८—मूढ़न=मूर्खों। बर=बरगद। एरंड=रेंड़। ७९—अयान=मूर्ख। कुक्कुट=मुर्गा।

८०—गुन=गुण, डोर। कोटि=किनारा, करोड़। दोय=दो।

नोट—यहाँ 'कोटि' और 'गुन' शब्द क्लिष्ट हैं।

फल बिचारि कारज करौ, करहु न व्यर्थ अमेल।
तिल ज्यों बारू पेरिये, नाहीं निकसै तेल ॥८१॥
बीर पराक्रम तें करें, भुव-मण्डल कौ राज।
जोरावर या तें करत, बन अपनौ मृगराज ॥८२॥
जोरावर अरि मारिये, बुध बल किये उपाय।
कालयमन को ज्यों किसन, पट मुचकुन्द उढ़ाय ॥८३॥
सब देखै पै आपनो, दोष न देखै कोइ।
करै उजेरो दीप पै, तरे अँधेरो होय ॥८४॥
बिन बूझे ही जानिए, बुध मूरख मन माँहि।
छलकै ओछे नीर घट, पूरे छलकन नाँहि ॥८५॥
सुन्दर थान न छोड़िए, जौ लौं मिलै न और।
पिछलो पाय उठाइये, देखि धरन को ठौर ॥८६॥
भली करत लागत बिलम, बिलम न बुरे बिचार।
भवन बनावत दिन लगै, ढ़ाहत लगति न बार ॥८७॥
बिनसत बार न लागई, ओछे नर की प्रीति।
अम्बर डम्बर साँझ के, ज्यों बारूकी भीति ॥८८॥

८१–बारू=बालू। ८२–पराक्रम=बहादुरी। मृगराज=सिंह।

८३–कालयमन=कृष्ण का शत्रु। किसन=कृष्ण। पट=वस्त्र। मुचकुन्द=एक राजा जिसे यह वरदान था कि जो सोने से उठे जगायेगा, वह भस्म हो जायेगा। कृष्ण ने अपना वस्त्र उसे ओढ़ा दिया और कालयमन क्रोध के वश में आकर मुचकुन्द को कृष्ण समझ उठाया और भस्म हुआ।

८४–पै=पर। तरे=नीचे। ८५–बुध=बुद्धिमान। घट=घड़ा।

नोट—मूर्ख चञ्चल और ज्ञानी गम्भीर होता है।

८६–थान=स्थान। धरन=रखने। ठौर=स्थान। ८७–बिलम=देर। ढाहत=गिराते।

८८–बिनसत=नाश। अम्बर-डम्बर=सायंकाल के रंग-बिरंगी बादल। भीति=दीवाल।

अधिक दुखी लखि आप तें, दीजै दुख बिसराय।
धरम-सुवन बन दुख हर्‌यो, मुनि नल विपति सुनाय ॥८९॥

बड़े विपतहूँ में करैं, भले बिराने काम।
किय विराटपति की विजय, अर्जुन करि संग्राम ॥९०॥

तन को देत न तनत जो, मन मिलयी तजि लाज।
ज्यों आँकुस कौ नटत कोउ, दै गिरि सों गजराज ॥९१॥

पण्डित बनिता अरु लता, सोभित आस्त्रय पाय।
है मानिक बहु मोल कौ, हेम-जटित छवि छाय ॥९२॥

हीन जानि न विरोधिये, वह तौ तन दुख-दाय।
रजहू ठोकर मारिये, चढ़ैं सीस पर आय ॥९३॥

वृद्धि न ह्वैहै पाप तें, वृद्धि धरम तें धार।
सुन्यो न देख्यो सिंह के, मृग को सो परिवार ॥९४॥

ऊपर दरसै सुमिल सी, अन्तर अनमिल आँक।
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फाँक ॥९५॥

सील-करम-कुल-श्रुत-चतुर, पुरुष-परीच्छा जान।
ताड़न-छेदन-कस-तपन, इनतें कनक पिछान ॥९६॥

८९—धरम सुवन=युधिष्ठिर। मुनि=व्यास मुनि।

९०—बिराने=दूसरे। विराट पति=राज विराट।

नोट—अर्जुन ने अज्ञातवास के समय विराट राज की ओर से लड़े थे।

९१—तनत=तनना, रुष्ट होना। नटत=नहीं करना। गिरि सों=पर्वत के समान॥

९२—बनिता=स्त्री। मानिक=मणि। हेम-जटित=सोने में जड़ा।

९३—विरोधिए=विरोध न कीजिए। रजहू=धूल।

९४—वृद्धि=बढ़ती। धार=निश्चित।

९५—सुमिल=भलीभाँति मिला हुआ। अनमिल=अनमेल।

९६—सील=शील। करम=कर्म। कुल=वंश। श्रुत=प्रसिद्धि। ताड़न=पीटना। छेदन=काटना। कस=कसौटी पर कसना। तपन=आग में तपाना। पिछान=पहचान।

कबहूँ प्रीति न जोरिये, जोरि तोरिये नाहिं।
ज्यों तोरे जोरे बहुरि, गाँठ परत गुन माहिं ॥९७॥

पूजनीय गुन तें पुरुष, बयस न पूजित होय।
यज्ञ तिलक किय कृष्ण को, छाड़ि बड़े सव कोय ॥९८॥

जो समरथ सब बात में, तिहिं भजिए तजि सङ्क।
करै रङ्क ते राव हरि, अवर राव ते रङ्क ॥९९॥

कहा बड़े छोटे कहा, जहँ हित तहँ चित लागि।
हरि भोजन किय बिदुर घर, दुर्योधन को त्यागि ॥१००॥

९७—गाँठ परत=गाँठ पड़ना, भेद होना। गुन=रस्सी।

९८—बयस=उम्र। ९९—समरथ=शक्तिशाली। अवर=और।

१००—यथा—दुर्योधन घर मेवा त्यागी, शाक विदुर घर खायो ॥ ॥ सूर ॥

श्री सैयद गुलाम नबी

[रसलीन]

रहीम के पश्चात प्रसिद्ध मुस्लिम दोहाकार सैयद गुलाम नबी पर हमें गर्व है।

इनका जन्म संवत् १७७१ माना जाता है। यह जिला हरदोई के प्रसिद्ध कस्बे बिलग्राम के रहने वाले थे। प्रसिद्ध कस्बा अच्छे विद्वान् मुस्लिमों के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के कवि अपने नाम के आगे 'बिलग्रामी' लगाने में अपना गौरव समझते हैं। सैयद साहब भी 'बिलग्रामी' के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके पिता का नाम सैयद बाकर था।

इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'अंगदर्पन' सूक्तियों का चमत्कार-पूर्ण और 'नखशिख' वर्णन की अच्छा ग्रन्थ है। जिसमें अलंकारों का सुन्दर समावेश है। विशेषकर उपमा और उत्पेक्षाएँ तो इसकी बड़ी ही प्रसिद्ध हैं।

'रस बोध' नामक इस निरुपरण का ग्रन्थ जिसमें एक हजार से अधिक दोहे हैं इनकी दूसरी प्रसिद्ध रचना है।

'रसलीन' की भाषा टकसाली हिन्दी का मिश्रित रुप है। किन्तु ब्रज भाषा की ही इसमें प्रधानता है।

भावों की दृष्टि से रसलीन के दोहों में बड़ी ही उत्कृष्ठता है। राधा के वर्णन में कवि ने अपनी जिस रचना चातुरी का परिचय दिया है, यदि कवि का नाम प्रकट न किया जाय तो यही प्रतीत होगा मानो किसी शुद्ध पुष्ट मार्गीय सम्प्रदाय के कवि की रचना है।

अंगों का जितना श्लाघ्य वर्णन इस कवि ने किया है। कहीं अन्यत्र दोहों में देखने को नहीं मिला। उक्ति वैचित्र्य और चमत्कारिता इन दोहों की जान है।

कहीं कहीं इन दोहों के पढ़ने से बिहारी के दोहों का भ्रम हो जाता है। रसलीन जी के दोहे हिन्दी भाषा के शृङ्गार है।

❀

[दोहा]

राधा पद बाधा हरन, साधा करि रसलीन।
अंग अगाधा लखन को, कीनो मुकुर नवीन ॥ १ ॥
सो पावै या जगत में, सरस नेह को भाय।
जो तन मन में तिलन लो, बालन हाथ बिकाय ॥ २ ॥
मोर पच्छ जो सिर चढ़े, बालन तें अधिकाय।
सहस चखन लखि धनि कचन, परे मान छिन पाय ॥ ३ ॥
बेनी बँधि इक ठौर ह्वै, अहि सम राखत ठौर।
बिथुरि चँवर से कच करत, मन बिथोरि घर चौंर ॥ ४ ॥
जे हरि रहे त्रिलोक में, कालीनाथ कहाय।
ते तुव बेनी के डँसे, सव जग हँसे बनाय ॥ ५ ॥
भनत न कैसे हूँ बनै, या बेनी की दाय।
तुव पीछे जे जगत के, पीछे परे बनाय ॥ ६ ॥
मैमद झबियन मुकुत लखि, यह आयो जिय जागि।
ससिहित पीछे राहु के, नखत रहे हैं लागि ॥ ७ ॥
चन्द मुखी जूरौ चितै, चित लीनो पहिचानि।
सीस उठायो है तिमिर, ससि को पीछे जानि ॥ ८ ॥
यों बाँधति जूरो तिया, पटियन को चिकनाय।
पाग चिकनिया सीस की, या तें रही लजाय ॥ ९ ॥

१—लखन=देखना। मुकुर=शीशा। २—तिलन लो=तिलों तक।
३—चखन=नेत्रों। कचन=बालों। ४—अहि=सर्प। बिथुरि=छिटक कर।

पाटी दुति जुत भाल पर, राज रही यहि साज।
असित छत्र तमराजमनु, धरयो सीस द्विजराज ॥१०॥
वा रसाल को लाल किन, देखत होहिं निहाल।
जाहि भालतकि बाल सब, कूटति हैं निज भाऊ ॥११॥
जोरि सकत रसलीन तिहिं, भाल साथ को हाथ।
चंद कलंकी करि दियो, बिधि सोहाग जिहिं माथ ॥१२॥
ढुरै माँग तें भाल लों, लर के मुकुत निहारि।
सुधा वुन्द मनु बाल ससि, पूरत तम हिय फारि ॥१३॥
बारन निकट ललाट यों, सोहत टीका साथ।
राह गहत मनु चन्द पै, राख्यो सुरपति हाथ ॥१४॥
लाल सु बिदुली भाल तकि, जग जानी यह रीति।
तेरे सीस प्रतीति कै, बसी मीत की प्रीति ॥१५॥
सोहत बेदी पीत यों, तिय लिलार अभिराम।
मनु सुर-गुरु को जानि के, ससि दीनो सिर ठाम ॥१६॥
यहि बिधि गोरे भाल पै, बेंदी स्वेत लखाय।
मनो अदेवन हित अमी, लेत सुक्र ससि आय ॥१७॥
दई न बाल लिलार पर, बेंदी स्याम सुधार।
माँग स्यामता उरग लों, बैठ्यो कुण्डल मार ॥१८॥
तुव लिलार इन आड़ किय, निज गुन विदित निदान।
अड़ि राखत है आड़ ह्वै, आड़ आड़ जग प्रान ॥१९॥
सूधी पटिया माँग बिनु, माथे केसर खौर।
नेह कियो मनु मेघ तजि, तड़ित चन्द सों दौर ॥२०॥
सीप श्रवन या रमनि की, कैसे होंय समान।
जा प्रसंग तजि मुकुतगन, या में बसे निदान ॥२१॥
मुकुत भये घर खोइ के, बैठे कानन आय।
अव घर खोवत और के, कीजे कौन उपाय ॥२२॥
जटित तरौना श्रवन में, यह बिधि करत बिलास।
पिता तरणि कीनो मनो, पुत्र करन घर बास ॥२३॥

करन फूल दुति धरन बिबि, करन लसत इहि भाय।
मनो बदन ससि के उदै, नखत दुहूँ दिसि आय ॥२४॥
ऐंठे ही उतरत धनुष, यह अचरज की बान।
ज्यों ज्यों ऐंठति भौं धनुष, त्यों त्यों चढ़त निदान ॥२५॥
कारे अनियारे खरे, कटकारे के भाव।
झपकारे बरुनी करत, झप झप कारे घाव ॥२६॥
अमी हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जिहि चितवत इकवार ॥२७॥
कारे कजरारे अमल, पानिप टारे पैन।
मतवारे प्यारे चपल, तुव ढुरवारे नैन ॥२८॥
तुरँग दीठि आगे धर्‌यो, बरुनी दल के साथ।
तेरे चख मख कै जगत, कियो चहत हैं हाथ ॥२९॥
तन सुवरन के कसत यों, लसत पूतरी स्याम।
मनो नगीना फटिक मे, जरी कसोटी काम ॥३०॥
जो रसलीन तियान में, रहे बिचित्र कहाय।
ते पाहन पुतरी भये, लखि तब पुतरी भाय ॥३१॥
कोयन सर जिनके करे, सीय न राखे ठौर।
को-इन लोयन ना हन्यो, कोयन लोयन जोर ॥३२॥
रे मन रीति बिचित्र यह, तिय नैनन के चेत।
विष काजर निज खाय के, जिय औरन के लेत ॥३३॥
तिय काजर कोरें बढ़ी, पूरन किय कवि पच्छ।
लखियत खंजन पच्छ की, पुच्छ अलच्छ प्रतच्छ ॥३४॥
अजन गुन दौरत नहीं, लोयन लाल तरंग।
कोरन पगि डोरन लगत, तुव पोरन को रंग ॥३५॥
राते डोरन तें लसत, चख चंचल इहि भाय।
मनु बिधि पूनो अरुन में, खंजन बाँध्यो आय ॥३६॥
गहि दृग मीन प्रवीन की, चितवन वंसी चारु।
भव-सागर में करत हैं, नागर नरन सिकारु ॥३७॥

औचकही मोतन चितै, दीठ खींच जब लीन।
बिधन निसारन बान लौं, दोऊ बिध दुख दीन ॥३८॥
बान बेधि सब बधे को, खोज करत हैं जाय।
अद्भुत बान कटाक्ष जिहिं, बध्यो लग्यो सँग जाय ॥३९॥
मुकुर बिमलता चन्द दुति, कंज मृदलता पाय।
जनम लेइ जो कंबुतें, लहे कपोल सुभाय ॥४०॥
आयो समता बोल कहि, लहि कपोल सुकुमार।
मुकुर परयो तातें परयो, मुकुर बदन में छार ॥४१॥
दाग शीतला को नहीं, मृदुल कपोलन चारु।
चिन्ह देखियत ईठ की, परी दीठ के भारु ॥४२॥
जाल घुंघट अस दंड भ्रू, नैनन मु-लह बनाय।
खैंचति खग जग दृग तिया, तिल दानो दिखराय ॥४३॥
सब जग पेरत तिलन को, को न थके इहि हेरि।
तुव कपोल के एक तिल, डारयो सब जग पेरि ॥४४॥
बाँध्यो अलकन प्रान तुव, बाँधन कचन बनाय।
छोटन के अपराध यह, परयो बड़न पहँ जाय ॥४५॥
विधि कपोल के लटक तिय, अद्भुत गति यह कीन।
ऐंचा खैंची डार के, दोऊ बिधिजिय लीन ॥४६॥
नासा कंचन तरु भए, मरकत पत्र पुनीत।
पलक फूल दग फल भए, सुरतरु कामद मीत ॥४७॥
छाक छाक तुव नाक सों, यों पूछत सब गाँव।
किते निवासिन नासिके, लह्यो नासिका नाँव ॥४८॥
नत्थ मुकतन में लालरी, तकि जग लह्यो प्रकास।
मुकुतन के संग नाक में, रागी हिय को बास ॥४९॥
नथ मुकुत अरु लालरी, सत गुन रज गुन रंग।
प्रकट कहाँ ते करत यह, सकल तमोगुन ढंग ॥५०॥
लिखन चहत रसलीन जब, तव अधरन की बात।
लेखनि की विधि जीभ बँधि, मधुराईतें जात ॥५१॥

लाल बाल के अधर ढ़िग, लाल बात जनि चाल।
लाल बात सुनि श्रुति सुकुत, करत बात में लाल ॥५२॥
लाल चलत जिहि ठौर वा, बाल दसन की बात।
श्रवन सुनत ही सीप लों, मुकुतन तें भरि जात ॥५३॥
मोल लेन को जगत जिय, विधि जौहरी प्रवीन।
राखे बिद्रुम के डबा, लै द्विज मुकुत नवीन ॥५४॥
दसन झलक में अतुनता, लखि आवत मन मांह।
परी रदन पर आय के, अधर रंग की छांह ॥५५॥
अरुन दसन तब बदन लहि, को नहिं करै प्रकास।
मंगल सुत आए पढ़न, विद्या बानी पास ॥५६॥
स्याम दसन अधरान मधि, सोहत हैं इहि भाँति।
कमल बीच बैठी मनो, अलि छवनन की पाँति ॥५७॥
अधरन बसि मुसकान तुव, ताजे पर कीति निदान।
ज्यों कृपान अमृत धरे, तऊ मारिहै प्रान ॥५८॥
बिजुरि बीज रदनन जये, अभी बदन में आनि।
या ही तें दामिनि भई, कामिनि की मुसकानि ॥५९॥
दन्त कथा वा दसन की, अवर कही नहिं जात।
फूलझरी सी छुटति जब, हँसि हँसि बोलति बात ॥६०॥
नाम सप्त सुर सिंधु की, बचत मुक्ति की सीव।
कै रसना सब रसन की, पोथी गिरा समीप ॥६१॥
अद्भुत रानी परत तुव, मधुबानी श्रुति माहिं।
सब ज्ञानी ठहरे रहें, पानी माँगत नाहिं ॥६२॥
मन पारा दृग कूप तें, उफन बाल मुख छाँह।
पर्‍यो चिवुक के गाड़ में, कबहूँ निकरत नाँह ॥६३॥
नैंन छके अति ही लखे, तिय तुव बदन उदोत।
याके दीपत दीपहीं, फूक मुकुर मुख होत ॥६४॥
कवन जोति नयनन लगे, वा सुन्दरि मुख तूल।
या दीपत में होत है, चंद चाँदनी फूल ॥६५॥

औचकहो मोतन चितै, दीठ खींच जब लीन।
बिधन निसारन बान लौं, दोऊ बिध दुख दीन ॥३८॥
बान बेधि सब बधे को, खोज करत हैं जाय।
अद्भुत बान कटाक्ष जिहिं, बध्यो लग्यो सँग जाय ॥३९॥
मुकुर बिमलता चन्द दुति, कंज मृदलता पाय।
जनम लेइ जो कंबुतें, लहे कपोल सुभाय ॥४०॥
आयो समता बोल कहि, लहि कपोल सुकुमार।
मुकुर पर्‌यो तातें पर्‌यो, मुकुर बदन में छार ॥४१॥
दाग शीतला को नहीं, मृदुल कपोलन चारु।
चिन्ह देखियत ईठ की, परी दीठ के भारु ॥४२॥
जाल घुंघट अस दंड भ्रू, नैनन मु-लह बनाय।
खैंचति खग जग दृग तिया, तिल दानो दिखराय ॥४३॥
सब जग पेरत तिलन को, को न थके इहि हेरि।
तुव कपोल के एक तिल, डार्‌यो सब जग पेरि ॥४४॥
बाँध्यो अलकन प्रान तुव, बाँधन कचन बनाय।
छोटन के अपराध यह, पर्‌यो बड़न पहँ जाय ॥४५॥
विधि कपोल के लटक तिय, अद्भुत गति यह कीन।
ऐंचा खैंची डार के, दोऊ बिधिजिय लीन ॥४६॥
नासा कंचन तरु भए, मरकत पत्र पुनीत।
पलक फूल दग फल भए, सुरतरु कामद मीत ॥४७॥
छाक छाक तुव नाक सों, यों पूछत सब गाँव।
किते निवासिन नासिके, लह्यो नासिका नाँव ॥४८॥
नत्थ मुकतन में लालरी, तकि जग लह्यो प्रकास।
मुकुतन के संग नाक में, रागी हिय को बास ॥४९॥
नथ मुकुत अरु लालरी, सत गुन रज गुन रंग।
प्रकट कहाँ ते करत यह, सकल तमोगुन ढंग ॥५०॥
लिखन चहत रसलीन जब, तव अधरन की बात।
लेखनि की विधि जीभ बँधि, मधुराईतें जात ॥५१॥

लाल बाल के अधर ढ़िग, लाल बात जनि चाल।
लाल बात सुनि श्रुति सुकुत, करत बात में लाल ॥५२॥
लाल चलत जिहि ठौर वा, बाल दसन की बात।
श्रवन सुनत ही सीप लों, मुकुतन तें भरि जात ॥५३॥
मोल लेन को जगत जिय, विधि जौहरी प्रवीन।
राखे बिद्रुम के डबा, लै द्विज मुकुत नवीन ॥५४॥
दसन झलक में अतुनता, लखि आवत मन मांह।
परी रदन पर आय के, अधर रंग की छांह ॥५५॥
अरुन दसन तब बदन लहि, को नहिं करै प्रकास।
मंगल सुत आए पढ़न, विद्या बानी पास ॥५६॥
स्याम दसन अधरान मधि, सोहत हैं इहि भाँति।
कमल बीच बैठी मनो, अलि छवनन की पाँति ॥५७॥
अधरन बसि मुसकान तुव, ताजे पर कीति निदान।
ज्यों कृपान अमृत धरे, तऊ मारिहै प्रान ॥५८॥
बिजुरि बीज रदनन जये, अभी बदन में आनि।
या ही तें दामिनि भई, कामिनि की मुसकानि ॥५९॥
दन्त कथा वा दसन की, अवर कही नहिं जात।
फूलझरी सी छुटति जब, हँसि हँसि बोलति बात ॥६०॥
नाम सप्त सुर सिंधु की, बचत मुक्ति की सीव।
कै रसना सब रसन की, पोथी गिरा समीप ॥६१॥
अद्‌भुत रानी परत तुव, मधुवानी श्रुति माहिं।
सब ज्ञानी ठहरे रहें, पानी माँगत नाहिं ॥६२॥
मन पारा दृग कूप तें, उफन बाल मुख छाँह।
पर्‌यो चिवुक के गाड़ में, कबहूँ निकरत नाँह ॥६३॥
नैंन छके अति ही लखे, तिय तुव बदन उदोत।
याके दीपत दीपहीं, फूक मुकुर मुख होत ॥६४॥
कवन जोति नयनन लगे, वा सुन्दरि मुख तूल।
या दीपत में होत है, चंद चाँदनी फूल ॥६५॥

नहिं मृगंक भू अंक यह, नहिं कलंक रजनीस।
तुव मुख लखि हारो कियो, घसि घसि कारो सीस ॥६६॥
चंद नहीं यह बालमुख, सोभा देखन काज।
बारी कारी रैन में, महताबी द्विजराज ॥६७॥
ईंहि बिधि गोरे बदन पै, लखत डोरिया सेत।
मनो लहरि लों सरद धन, ससि पर सोभा देत ॥६८॥
जब धरतीक कपोत सब, नटे देखि ग्रिव भेख।
तब उन पापिन कण्ठ बिधि, दियो पाप की रेख ॥६९॥
जब मौहे तिहु लोक सब, तिहु ग्राम लै ठीक।
तब दीने तुव कंठ बिधि, ये त्रय मोहन लीक ॥७०॥
अद्‌भुत मय सब जगत यह, अद्‌भुत जुगत निहार।
हार बाल गर परत हीं, पर्‌यो लाल गर हार ॥७१॥
चलत हलत नित बाँह तुव, देति कोटि जिय दान।
याही तें सब कहत हैं, सुधा लहुर परिमान ॥७२॥
सुधा लहर तुव बाँह के, कैसे होत समान।
वा चखि पैयत प्रान को, या लखि पैयत प्राण ॥७३॥
कित दिखाइ कामिनि दई, दामिनि को यह बाँह।
तरकरात सीतन फिरै, फरफरात घन माँह ॥७४॥
मोहन सीखन बसि करन, उनमादन उचटाय।
मदन सरन गुन तरुनि के, अँगुरिन लियो छिनाय ॥७५॥
तिय प्रति इँगुरिन फलन में, त्रय त्रय पोर सुहाय।
तीन लोक बस करन को, बीज बये हैं आय ॥७६॥
यों अँगुरी तिय करन की, लागत नखन समेत।
औषधीश गुन अमिय मनु, जीवन मूरिन देत ॥७७॥
रंग बिरंग चूरी नहीं, लखि रवि कंकन भेखु।
हरि सन बिनय बली मनो, कर परसन पर बेखु ॥६८॥
सकुचत कंपा गात लखि, संया नहिं ठहराय।
या को तन कंपा भयो, झंपा गगन बनाय ॥७९॥

देह दीप्ति छवि गेह की, किहिं बिधि वरनी जाय।
जा लखि चपला गगन तें, छिति पटकत निज आय ॥८०॥
क्यों वा तन सुकुमारतनि, देखन पैये नीठि।
दीठि परत यों तरफरति, मानो लागी दीठि ॥८१॥
लगत बात ताको कहा, जा को सूछम गात।
नेक स्वास के लगत ही, पास नहीं ठहरात ॥८२॥
उदर सुधा सर चंद पै, लसत कमल की पाँति।
ता पाछे किंकिनि परी, कनक भँवर की पाँति ॥८३॥
सुनियत कटि सूच्छम निपट, निकट न देखत नैन।
देह भये यों जानिए, ज्यों रसना में बैन ॥८४॥
सूछम कटि वा बाल की, कहौं कवन परकार।
जाके ओर चितौत ही, परत दृगन में बार ॥८५॥
तुव पद सम तन पदुम को, कह्यो कवन बिधि जाय।
जिन राख्यो निज सीस पर, तुव पद को पद लाय ॥८६॥
लिखन चहौं मसि बोरि जब, अरुनाई तुव पाय।
तब लेखनि के सीस के, ईङ्गुर रँग ह्वै जाय ॥८७॥
जो हरि जग मोहित करी, सो हरि परे बेहाल।
कोहर सी एडीन सों, को हरि लियो न बाल ॥८८॥
तुव पग तल मृदुता चितै, कवि बरनत सकुचाहिं।
मन तें आवत जीभ लौं, मति छाले परि जाहिं ॥८९॥
गुँजरी चूरा कनक तुव, ऐसी बनी सुहाय।
मनु ससि रवि निज रंग कर, ल्याए पूजन पाय ॥९०॥
अम्बुज पद भूपर धरत, नूपुर नहिं बाजन्त।
साधुन के मन भौंर ह्वै, बाँचत रच्छाजंत ॥९१॥
पायन पायल के परत, झन कायल धुनि कान।
मायल कर घायल करत, कुरछायल ज्यों तान ॥९२॥
सुबरन अनवट चरन को, बरन करत यह मूल।
नवल कमल पर बिमल मनु, सोहत गेंदा फूल ॥९३॥

नहिं मृगंक भू अंक यह, नहिं कलंक रजनीस।
तुव मुख लखि हारी कियो, घसि घसि कारो सीस ॥६६॥
चंद नहीं यह बालमुख, सोभा देखन काज।
बारी कारी रैन में, महताबी द्विजराज ॥६७॥
इहि बिधि गोरे बदन पै, लखत डोरिया सेत।
मनो लहरि लों सरद धन, ससि पर सोभा देत ॥६८॥
जब धरतीक कपोत सब, नटे देखि ग्रिव भेख।
तब उन पापिन कण्ठ बिधि, दियो पाप की रेख ॥६९॥
जब मौहे तिहु लोक सब, तिहु ग्राम लै ठीक।
तब दीने तुव कंठ बिधि, ये त्रय मोहन लीक ॥७०॥
अद्भुत मय सब जगत यह, अद्भुत जुगत निहार।
हार बाल गर परत हीं, पर्यो लाल गर हार ॥७१॥
चलत हलत नित बाँह तुव, देति कोटि जिय दान।
याही तें सब कहत हैं, सुधा लहुर परिमान ॥७२॥
सुधा लहर तुव बाँह के, कैसे होत समान।
वा चखि पैयत प्रान को, या लखि पैयत प्राण ॥७३॥
कित दिखाइ कामिनि दई, दामिनि को यह बाँह।
तरकरात सीतन फिरै, फरफरात घन माँह ॥७४॥
मोहन सीखन बसि करन, उनमादन उचटाय।
मदन सरन गुन तरुनि के, अँगुरिन लियो छिनाय ॥७५॥
तिय प्रति इँगुरिन फलन में, त्रय त्रय पोर सुहाय।
तीन लोक बस करन को, बीज बये हैं आय ॥७६॥
यों अँगुरी तिय करन की, लागत नखन समेत।
औषधीश गुन अमिय मनु, जीवन मूरिन देत ॥७७॥
रंग बिरंग चूरी नहीं, लखि रवि कंकन भेखु।
हरि सन बिनय बली मनो, कर परसन पर बेखु ॥७८॥
सकुचत कंपा गात लखि, संपा नहिं ठहराय।
या को तन कंपा भयो, झंपा गगन बनाय ॥७९॥

देह दीप्ति छवि गेह की, किहिं बिधि वरनी जाय।
जा लखि चपला गगन तें, छिति पटकत निज आय ॥८०॥
क्यों वा तन सुकुमारतनि, देखन पैये नीठि।
दीठि परत यों तरफरति, मानो लागी दीठि ॥८१॥
लगत बात ताको कहा, जा को सूछम गात।
नेक स्वास के लगत ही, पास नहीं ठहरात ॥८२॥
उदर सुधा सर चंद पै, लसत कमल की पाँति।
ता पाछे किंकिनि परी, कनक भँवर की पाँति ॥८३॥
सुनियत कटि सूच्छम निपट, निकट न देखत नैन।
देह भये यों जानिए, ज्यों रसना में बैन ॥८४॥
सूछम कटि वा बाल की, कहौं कवन परकार।
जाके ओर चितौत ही, परत दृगन में बार ॥८५॥
तुव पद सम तन पदुम को, कह्यो कवन बिधि जाय।
जिन राख्यो निज सीस पर, तुव पद को पद लाय ॥८६॥
लिखन चहौं मसि बोरि जब, अरुनाई तुव पाय।
तब लेखनि के सीस के, ईङ्गुर रँग ह्वै जाय ॥८७॥
जो हरि जग मोहित करी, सो हरि परे बेहाल।
कोहर सीं एडीन सों, को हरि लियो न बाल ॥८८॥
तुव पग तल मृदुता चितै, कवि बरनत सकुचाहिं।
मन तें आवत जीभ लौं, मति छाले परि जाहिं ॥८९॥
गुँजरी चूरा कनक तुव, ऐसी बनी सुहाय।
मनु ससि रवि निज रंग कर, ल्याए पूजन पाय ॥९०॥
अम्बुज पद भूपर धरत, नूपुर नहिं बाजन्त।
साधुन के मन भौंर ह्वै, बाँचत रच्छाजंत ॥९१॥
पायन पायल के परत, झन कायल धुनि कान।
मायल कर घायल करत, कुरछायल ज्यों तान ॥९२॥
सुबरन अनवट चरन को, बरन करत यह मूल।
नवल कमल पर विमल मनु, सोहत गेंदा फूल ॥९३॥

ओट करे नहिं जात हैं, केहूँ इनके चोट।
बिधि याही बिधि तें धर्‌यौ, इनके नाम अनोट ॥९४॥

नवला अमला कमल सी, चपला सी चलचारु।
चन्द्रकला सी सीतकर, कमलासी सुकुमारु ॥९५॥

मुख छवि निरखि चकोर, अरु तन पानिप लखि मीन।
पद पंकज देखत भँवर, होत नयन रसलीन ॥९६॥

लाल पीत सित स्याम पट, जो पहिरत दिन रात।
ललित गात छवि छाय के, नैनन में चुभि जात ॥९३॥

ब्रजबानी सीखन रची, यह रसलीन रसाल।
गुन सुबरन नग अरथ लहि, हिय धरि यों ज्यों माल ॥९८॥

अंग अंग को रूप सब, यामें परत लखाय।
नाम अंग दर्पन धर्‌यो, याही गुन तें ल्याय ॥९९॥

सोरह सै चौरानबे, सम्बत् में अभिराम।
इह सिख नख पूरन कियो, लै श्री प्रभु को नाम ॥१००॥

महाराज विक्रमादित्य सिंह जी

[विक्रम]

राज्यकाल संवत् १८३९–१८८६ वि०

हिन्दी साहित्यानुरागियों में क्षत्रिय जाति के अनेक राजा-महाराजा हो गए हैं। उनका काव्य और उनकी गुणग्राहकता ने हिन्दी साहित्य की वृद्धि में सदा सहयोग प्रदान किया है।

सतसईकारों में महाराज विक्रमादित्य सिंह (विक्रम) की भी गणना की जाती है। इनकी सतसई 'विक्रम सतसई' के नाम से हिन्दी भाषा का शृङ्गार है। इस सतसई का आधार भी यद्यपि विहारी सतसई है किन्तु इसमें कवि ने अपने व्यक्तित्व की एक ऐसी गहरी छाप छोड़ी है, जो बिहारी सतसई के आदर्शवादी अन्य सतसईकारों में नहीं मिलती।

हमें उस समय और भी गर्व की अनुभूति होती है जब हम इस ओर दृष्टिपात करते हैं कि राज-परिवारों में से विक्रमादित्य सिंह ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो हमारे समक्ष सतसईकारों की गणना में आते हैं।

महाराज विक्रमादित्य सिंह बुन्देलखण्डान्तर्गत प्रसिद्ध रियासत चरखारी के राजा थे। चरखारी का राज-परिवार सदा से ललित कला का प्रेमी रहा है, और अब भी है। इनके काव्य प्रेम की सराहना इससे ही की जा सकती है कि इस राज-घराने में सदा से आश्रित कवियों का जमघट रहता था। स्वयं महाराज विक्रमादित्य सिंह के आश्रित खुमान, भोज, प्रताप, प्रयागदास और विजय बहादुर आदि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रहे हैं।

महाराज की गुणग्राहकता और साहित्यानुरागिता इतनी बढ़ी हुई थी कि इनके यहाँ सदा कवियों का जमघट लगा रहता था। यह कवियों का आदर-

सत्कार करने में अपना गौरव समझते थे, इसी से इनके काव्य-प्रेम और कवि होने का परिचय मिलता है। महाराज ने अपनी काव्य-रचना 'विक्रम' उपनाम से की है।

विक्रम-सतसई का स्थान शृङ्गार सतसइयों में अच्छा है। बिहारी और मतिराम की सतसइयों के पश्चात् विक्रम सतसई का हिन्दी-प्रेमियों में अच्छा आदर है।

विक्रम सतसई में रस की इतनी मधुर व्यञ्जना का समावेश है कि पढ़ते-पढ़ते हृदय आनन्द-विभोर हो जाता है। कला के आदर्श से उतर कर कवि जब सीधे-सीधे शब्दों में अपने हृदय की अनुभूति का हृदय-ग्राही वर्णन करता है, उसकी सराहना आप इस सतसई के प्रणयन में पग-पग पर करेंगे।

शृङ्गार रस के दोहों के अतिरिक्त यत्र-तत्र शान्त रस के दोहे भी बड़े ही उत्कृष्ट और हृदय-ग्राही हैं। उनका सीधा-सादा कथन कवि के सरल हृदय का परिचायक है। कवि को प्रसाद गुणात्मक काव्य करने में जो सफलता प्राप्त हुई है वह अन्य कवियों को इतनी मात्रा में नहीं मिली।

विक्रम सतसई की भाषा ब्रज है और उसमें कवि को अपने कालानुसार पूर्ण सफलता मिली है। भावों के उड़ान में कवि ने जिस भाषा का आश्रय लिया है, वह उस काल की प्रचलित ब्रज भाषा का वह चलता रूप है जिसे साधारण जनता भली प्रकार समझ-गुन सकती थी। इसकी सतसई में अच्छी छाप है। भावों की उड़ान में जैसे कवि दूर न जाकर पास ही की वस्तु खोज कर पाठक के समक्ष रखता है, उसी प्रकार भाषा में भी कवि ने इसका पूरा ध्यान रखा है। इसमें कवि को पूर्ण सफलता भी मिली है।

भावों के सम्बन्ध में कवि की निरंकुशता साफ-साफ झलकती है। राज-परिवार के होते हुए जिस प्रकार राज-मनोवृत्ति के अनुसार राजा, प्रजा की सम्पत्ति का उपयोग कर सकता है, उसी मनोवृत्ति का परिचय कवि के काव्य में भी मिलता है। भावों के अपहरण का दोष यद्यपि कवि पर नहीं लगाया जा सकता, किन्तु पूर्ववर्ती कवियों के भावों का खुल्लम-खुल्ला अपने शब्दों द्वारा व्यक्त करना भी उचित नहीं प्रतीत होता। ऐसा कवि ने अनेक स्थलों पर निःसंकोच किया है।

विक्रम सतसई के अतिरिक्त कवि ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का पद्यानुवाद 'हरिभक्तिविलास' के नाम से किया है। इनका 'व्रजलीला' काव्य-ग्रन्थ भी उत्कृष्ट है, किन्तु हिन्दी साहित्य में विक्रम सतसईकार के ही रूप में यह यथेष्ट प्रसिद्ध हैं।

हमें हिन्दी माता की सदा राज-परिवारों से सहायता की आशा रही है और रहेगी। यह हर्ष की विषय है कि सदा से राज-परिवारों ने हिन्दी भाषा की वृद्धि और सेवा में सहयोग प्रदान किया है और इस समय भी कर रहे हैं।

❀

[दोहा]

कूल कलिंदी नीप पर, सोहत अति अभिराम।
यह छवि मेरे मन बसो, निसि दिन स्यामा-स्यामा ॥ १ ॥
राधापति हिय मैं धरौं, राधापति मुख बैन।
राधापति नैनन लहौं, राधापति सुखदैन ॥ २ ॥
वृन्दावन राजैं दुवौ, साजैं सुख के साज।
महरानी राधा उतै, महाराज ब्रजराज ॥ ३ ॥
फिरि फिरि राधा-कृष्ण कहि, फिर फिर ध्यान लगाइ।
फिरिहौं कुंजन वे-फिकिर, कब बृन्दाबन जाइ ॥ ४ ॥
मेरी करुना की अरज, दीनबन्धु सुनि कान।
ना तर करुनाकर तुम्हैं, कैहै कहा सुजान ॥ ५ ॥
करुना कोर किसोर की, होर-हरन बरजोर।
अष्टसिद्धि नव निद्धि जुत, करत समृद्धि करोर ॥ ६ ॥

१—कलिंदी=जमुना। स्यामा-स्याम=राधा कृष्ण। २—राधा पति=श्रीकृष्ण जी।
३—राजैं=शोभित। ४—फिरि-फिरि=बार-बार।
५—अरज=विनती। नातर=नहीं तो। ६—करुना कोर=कृपादृष्टि।

त्रन समान बज्रहि करत, त्रन कह बज्र समान।
नन्द-नन्द जगबंद प्रभु, औढ़र ढरन अमान ॥ ७ ॥
नदी नीर तीछन बहै, मेघवृष्टि अति घोर।
हरि बिन को पारहि करै, लै नैया बरजोर ॥ ८ ॥
प्रनतपाल बिरदावली, राखी आन जहान।
अब मम बार अबारकत, कीजत कृपा निधान ॥ ९ ॥
निज सुभाय छोड़त नहीं, कर देखौ हिय गौर।
अधम-उधारन नाम तुव, हौं अधमन सिरमौर ॥१०॥
तेरौ तेरौ हौं कहत, दूजो नहीं सहाइ।
कहिबी बिरद सम्हार अब, बिक्रम मेरो आहि ॥११॥
भूलि तजत हौं भलि नहिं, यहै भूलि कौ देस।
तुम जिन भूलौ नाथ मम, राखह सुरत हमेस ॥१२॥
तरल तरौना पर लसत, बिथुरे सुथरे केस।
मनौ सघन तम तोम नै, लीनो दाब दिनेस ॥१३॥
मृगनैनी बेनी निरख, छबि छहरत बरजोर।
कनक लता जनु पन्नगी, बिलसत कला करोर ॥१५॥
तरुनि तिहारो देखियतु, यह तिल ललित कपोल।
मनौ बदन-बिधु गोद मैं, रविसुत करत कलोल ॥१५॥
मृगनैनी को पीठ पर, वेनी लसत सुदेस।
कनकलता पर ज्यो चढ़ी, स्याम भुजंगिनि बेस ॥१६॥
कहँ मिसरी कहँ ऊख रस, नहीं पियूष समान।
कलाकंद कतरा कहा, तुव अधरा - रस पान ॥१७॥

७—त्रन=तिनका। जगबंद=संसार में वन्दनीय। ८—तीछन=तीक्ष्ण।
९—प्रनतपाल=प्रण के पालने वाले। जहान=संसार। अवार=देर।
१०—सुभाय=स्वभाव। गौर=विचार। ११—हौं=मैं। कहिबी=कहना।
१२—सुरत=याद। १३—तरौंना=कर्णफूल। बिछुरे=छुटे हुए। दिनेस=सूर्य।
१४—पन्नगी=सर्पिणी। १५—तरुनि=तरुणी, सुन्दरी।
१६—स्यामभुजंगिनि=काली सर्पिणी। १७—पियूष=अमृत।

रूप-सिन्धु तेरो भर्‌यो, अति घनि अधिक अथाह।
जे बूड़त हैं बिन कसर, ते पावन मन चाह ॥१८॥
गौने आई नवल तिय, बैठी तियन समाज।
आस पास प्रफुलित कमल, बीच कली छवि साज ॥१९॥
दुहुँ कर सौं तारी बजत, है प्यारी यह रीति।
प्रीति बढ़ावत बनत तब, जब लखियत उत प्रीति ॥२०॥
तनक नजर फेरै कहूँ, मिलत सु हेरे नाँहि।
सरद-मयंक मुखी दुरी, सरद जुन्हाई माँहि ॥२१॥
देखहु बलि चलि औचकनि, नवल बधू सुकुमार।
भौंह कसति हुलसति हँसति, रीझ भरी रिझवार ॥२२॥
जहँ जहँ सहज सुभाव ही, चलत अजिर सुखदानि।
तहँ तहँ लाली पगन की, चुई परत सी जानि ॥२३॥
मोर मुकुट कटि पीत पट, उर बनमाल रसाल।
आवत गावत सखिन मग, लखे आज नन्दलाल ॥२४॥
रूप-सिन्धु मुख रावरो, लसै अनूप अपार।
पैरवार दृग ललन के, पैर न पावत पार ॥२५॥
हार निहार उतार धर, विधि तन रचे सिंगार।
धरनि चलत लचकत, तरुन, बारभार सुकुमार ॥२६॥
चौज चबाइन के रचत, हँसत सबै व्रज लोग।
तैंही कहि सखि साँवरो, है नहिं देखन जोग ॥२७॥
मोहि सिखावत तू कहा, मैं हू जानत बात।
उर उरझ्यौ चितचोर सौं, सो फिर सुरझ्यो जात ॥२८॥

१८—बिनकसर=बिना भेद। १९—गौने=द्विरागमन। नवलतिय=नई बहू।
२०—तारी=ताली। लखियत=देखिए। २१—मयंक मुखी=चन्द्रमुखी।
२२—औचकनि=यकायक, धोखे से। २३—अजिर=आँगन।
२४—पीतपट=पीताम्बर। मग=राह। २५—पैरवार=तैराक।
२६—धरनि=पृथ्वी। बार=बाल। २७—चबाइन=चुगुलखोर।
२८—उरझ्यो=उलझा हुआ।

बिन बातन रचती खरी, बृथा सखी परिहास।
मिलतौ जो मनभावतौ, तौ नीको परिहास ॥२९॥
सखी साँवरो रूप वह, देखत दृग न अघात।
लोच भरे लालच लगे, नित उतही चल जात ॥३०॥
ब्रज बीथिनि नोखो रचत, नित ही नित यह ख्याल।
दोऊ चाहत फिरत है, गोरस मोरस लाल ॥३१॥
अनत दृगनि फेरत बहुत, टेरत हिए हिरात।
जान परत नहिं कौन सी, लला कला करि जात ॥३२॥
मिलत अगाऊ बिन कहे, यहै दोष इन माहिं।
उर उरझावत हठ नयन, सुरझावत फिर नाहिं ॥३३॥
जुरत नैन पर जरत हिय, अरी कौन यह रीति।
यह न कहूँ देखी नई, नेह नगर की रीति ॥३४॥
हित अनहित समुझत नहीं, इत उत करत अचेत।
रंग रचाइ लचाइ चित, फिर फँसाइ दृग देत ॥३५॥
इत चितयो नागर नयौ, उत चितई हँसि ईठि।
लगी अचानक मूठ सी, दुहुनि दुहुनि की दीठि ॥३६॥
नेह फौज दुहुँ दिसि बढ़ी, अपनी अपनी जोट।
दग हरील कटि कटि लरत, करत परसपर चोट ॥३७॥
चपल चलाकन सौं चलत, गनत न लाज लगाम।
रोके नहिं क्यों हू रुकत, दृग-तुरंग गति बाम ॥३८॥
तिय तड़ाग मज्जन करत, मकर सऊ मनमान।
सी सी यह जल सीत की, मीत सुधा सी जान ॥३९॥

२९—परिहास=हँसी।
३०—अघात=तृप्त होना।
३१—गोरस=इन्द्रिय रस, दूध।
३२—टेरत=बुलाते ही। हिरात=खो जाना।
३३—अगाऊ=आगे।
३४—नेह नगर=प्रेम नगर।
३५—हित अनहित=भलाई-बुराई।
३६—नागर=चतुर, नागरिक। मूठ=जादू।
३७—हरौल=आगे रहने वाली सेना।
३८—चपल=चंचल। गति=चाल।
३९—सी-सी=सीतकार। सुधा=अमृत।

बूड़ि कहूँ उछलत कहूँ, यौं सखि अति छवि देत।
अलक नाग खैंचत ससी, मनौ सुधा के हेत ॥४०॥
फौजदार कचनार किय, दिय पलास भट साज।
किय जुवराज रसाल कौ, इहि बसन्त महराज ॥४१॥
कुञ्ज कुञ्ज बिहरत बिपिन, गुञ्जत मधुप मदन्ध।
ललित लता लपटी तरुनि, प्रफुलित बलित सुगन्ध ॥४२॥
दिसि बिदिसनि सरितन सरनि, अवनि अकास अपार।
बन उपबन बेलिन बलित, ललित बसन्त बहार ॥४३॥
झिर पिचकारी की मची, आँधी उड़त गुलाल।
यह धूँधरि धँसि लीजिए, पकरि छबीले लाल ॥४४॥
मुख मीड़त अनखाति कति, करि करि टेढ़ी भौंह।
होरी मैं यों होत हैं, मेरी तेरी सौंह ॥४५॥
लै लै मूठ गुलाल की, घालत सबै समाज।
वह घालन औरै कछू, ज्यौं घालत ब्रजराज ॥४६॥
बर साइति है मिलन की, बरसाइत है लेखि।
पूजन बर साइत भली, बरसाइत चलि देखि ॥४७॥
पावस निसि कारी घटा, दामिनि दमकति जोर।
मोर सोर घन घोर सुनि, चित चाहत चितचोर ॥४८॥
झीने झर झुकि झुकि झमकि, झलनि झाँपि झकझोर।
झुमड़ घुमड़ बरसत सघन, उमड़ि घुमड़ि घन घोर ॥४९॥

४०–अलक=बाल लट।
४१–फौजदार=सिपाहियों का सरदार। भट=वीर। रसाल=आम।
४२–मधुप=भ्रमर। तरुनि=वृक्षों। ४३–सरनि=तालाबों।
४४–झिर=झर। ४५–मीड़त=मोड़ना। अनखाति=क्रोधित होना।
४६–मूठ=मूठी। घालत=डालता है।
४७–बर=बरगद, श्रेष्ठ। साइति=समय, सुअवसर। बरसाइत=भादों मास सावित्री वट पूजन समय। ४८–पावस=वर्षा। ४९–घन=बादल।

रङ्ग हिंडोरे नवल तिय, झूलत दुति दरसात।
जनु अकास तैं दामिनी, छिति ह्वै आवत जात ॥५०॥

पाइन लखि लाली ललित, नाइन अति सकुचात।
चितै चितै मृद आंगुरिन, फिरि फिरि मीड़त जात ॥५१॥

सुखद सरद ऋतु पाइ कर, कुञ्जित सरनि सरोज।
चलि चलि दृगनि बिलोकि यह, प्रमुदित उदित मनोज ॥५२॥

कुबजा मन टेढ़ौ कियौ, वह टेढ़ेई गात।
कौन चलावत बीर अब, ब्रज की सीधी बात ॥५३॥

धरषत हर हरषित जगत, पूरित अवनि अकास।
साँची प्रीति पपीहरै, स्वाति बुन्द की आस ॥५४॥

कहा भयौ जौ लखि परत, दिन दस कुसुमित नाहिं।
समुझि देखि मन मैं मधुप, ए गुलाब वेआहिं ॥५५॥

कत गुमान गुड़हल करत, समुझि देखि मतिमन्द।
छोड़ि नलिन पीवत कहूँ, अलिन मलिन मकरन्द ॥५६॥

पंकज के धौखै मधुप, कियौ केतकी संग।
अंघ भयौ कटंक बिधौ, भयो मनोरथ भंग ॥५७॥

बिटप तिहारे पुहुप हम, सोभा देत बढाइ।
और ठौर सीसन चढ़त, पै रावरे कहाई ॥५८॥

५०–रंग हिंडोरे=रंगीन हिंडोले। छिति=पृथ्वी।
५१–मीड़त=ऌगाना। ५२–सरोज=कमल। मनोज=काम देव।
५३–कुबजा=कृष्ण से स्नेह रखने वाली मथुरा की एक स्त्री।
५४–पपीहरे=पपीहा। आस=आशा।
५५–लखिपरत=देख पड़ते हैं। कुसुमति=फूले हुए। मधुप=भ्रमर।
५६–गुड़हल=लाल रंग का एक पुष्प। अलिन=भ्रमरवृन्द।
५७–पंकज=कमल। केतकी=एक पुष्प। मनोरथ=इच्छा।
५८–विटप=वृक्ष। पुहुप=पुष्प। रावरे=तुम्हारे।

मधुराई बैनन वसी, लसी पगन गति मन्द।
चपलाई चमकी चखनि, चखन लखौ नँद नंद ॥५९॥

सरस सलोनी सखिन सँग, लखि लालन सकुचात।
उझकि उझकि झाँकति झुकति, झिझकि झिझकि दुरि जात ॥६०॥

मुख छपाइ सकुचाइ कछु, अरु कँपाय भुजमूल।
इन्दीवर नैननि लखत, कान्ह कलिन्दी कूल ॥६१॥

कान्ह कान्ह आन मुख आन नहिं, कौन परी यह बान।
तू जानत ही जान हौं, सब जग जान-अजान ॥६२॥
नाम सु मोहनलाल कौ, सबै कहत चित-चोर।
चोरन की चोरी करत, री तेरे दृग-जोर ॥६३॥
लोकलाज खाईं खुदी, घूंघट पट की ओट।
हरदफ वेधत हेर हिय, ज्यौं हरदफ़ की चोट ॥६४॥
जोबन छाक छकी रहत, मद के मद उमहात।
कहति नटति रोझति खिझत, हँसति झकति झहरात ॥६५॥
आवत लखि ऋतुराज कौ, समुझि सुखन को मूल।
फूलि भई माँलिन हियै, लखि गुलाब कौ फूल ॥६६॥
अपत करी बन की लता, जपत करी द्रुम साज।
बुध वसन्त द्वौ कहत हैं, कहा जानि ऋतुराज ॥६७॥
बंशी धुन स्रवनन सुनत, अंग अनंग मरोर।
चित्र लिखी सी ह्वै रही, चकित चितै चहुँ ओर ॥६८॥
सहज पोस जरपोस करि, लीनो लाल लुभाइ।
भाइ भाइ फिर भाइ करि, करति घाइ पर घाइ ॥६९॥
अंग अंग आभा दृगनि, निरखति तजत न भौन।
निज पलकन दूषित रहत, पिय सुभाय यह कौन ॥७०॥

५९—चखनि=नेत्रों में। चखन=नेत्रों से।

६०—सरस=रसीली। दुरिजात=छिप जाती है।

गात गुराई हेम की, दुति सु दुराई देत।
कंज बदन छबि जान अलि, भूलि भाडरै लेत ॥७१॥
देखि घटा छन छबि छटा, छुटत मुनिन के ध्यान।
बैठी भौहैं तान सखि, क्यों रैहै मन मान ॥७२॥
अधरन पर बेसर सरस, लुरकत लुरत विसाल।
राखन हेतु मराल जनु, मुकति चुगावत वाल ॥७३॥
कहत आन की आन मुख, सुनत आन की आन।
पिय प्यारै चल चाहियै, तिय प्रानन की प्रान ॥७४॥
लाल लाल लोइन निरखि, लालन के नव वाम।
हाथ आरसी लै लखति, निज लोचन अभिराम ॥७५॥
कलह करत नेहै करत, तेरी बान सनाम।
कहा चूक है स्याम की, तू ही बाम सुबाम ॥७६॥
कल न परति हहरति हियै, नए बिरह्न व्रजनाथ।
खिन खिन छवि छीजति खरी, खिन खिन मींजति हाथ ॥७७॥
बिन गुनाह निजनाथ सौं, नाहक भई सरोस।
अनख हिए कत कीजियतु, काहि दीजियतु दोस ॥७८॥
साजि साज कुंजन गई, लख्यौ न नन्दकुमार।
रही ठौर ठाढ़ी ठगी, जुवा जुबा सौ हार ॥७९॥
नहिं डोलति खोलति दृगति, सकुच न बोलन बोल।
अमल कमल दल से दुवौ, पीरे परे कपोल ॥८०॥
सजि सिंगार आनन्द मढ़ी, बढ़ी सरसंऊछाह।
रंग महल फूली फिरति, चितनत मग चित चाह ॥८१॥
उदित उमँग अनङ्ग बर, उर उमग्यौ अनुराग।
सजत सेज भूषन बसन, अङ्ग अङ्ग अँगराग ॥८२॥
भौहैं तान कमान बर, नैन सरन कर साधि।
गहि राख्यौ मन लाल कौं, अलक जँजीरनि बाँधि ॥८३॥

चंदमुखी मुख चंद की, दई छटा छुटकाइ।
रहौ चाँदनी चौक मैं, चारु चाँदनी छाइ ॥८४॥

सटकारे कारे सरल, लसत सुहाए बार।
देखहु बलि चांछ औचका, नवल बधू सुकुमार ॥८५॥

तनदुति लखि लाजति तड़ित, भाजतघन छपि जात।
छवि छाजत राजत खरी, नये नेह सरसात ॥८६॥

कुञ्जन लौं नव नलिन की, कली रहो फबि फैल।
कीनी गरक गुलाब सौं तिन कुञ्जन की गैल ॥८७॥

पहिरि सेत सारी सरस, चन्दन चर्चित देह।
चन्द्र उदै लखि चन्द्रमुख, बिहँसि चली पिय-गेह ॥८८॥

ललन चलन सुनि पलन मैं, आइ गयो बहुनीर।
अधखंडित बीरी रहो, पीरी परी सरीर ॥८९॥

चितवत घूँघट ओट ह्वै, गुरुजन दीठि बचाइ।
स्रवन सुनत प्रीतम गमन, अगमन गई ससाइ ॥९०॥

मनभावन आवन सुनौ, सुख सरसावन बोल।
पुलकत तनु हुलसत हियौ, बिहँसत ललित कपोल ॥९१॥

स्रवन सुनत पिय आगमन, हरषि हरषि सुखदानि।
भुज फरकत हुलसत हियौ, दरसत मुख मुसक्यानि ॥९२॥

रस ही मैं रस पाइयतु, यह सुरीत जगजोइ।
वा मुख कौ बतियान सौं, अनरस मैं रस होइ ॥९३॥

बदन मौरि हँसि हेरि इत, नैन नैन सौं जोर।
गोरी थौरे बैस की, लै जु गई चित चोर ॥९४॥

रूप सरस पानिप भर्‌यो, पावत नेकु न थाह।
घूम घूम मन घिरतु है, झूम झूमकन माह ॥९५॥

बंसी धुनि स्रवनन सुनत, तन मन अति अकुलाइ।
दौरी जावक दै दृगनि, अंजन पगनि लगाइ ॥९६॥

मोर मुकुट कटि पीत पट, मुरली अधर बिराज।
पाइ दरस पायौ अली, नैनन को फल आज ॥९७॥

मन बच कर्म सुनाइ कर, रघुपति पद अनुराग।
सो जानत सिय राम हैं, धन्य भरथ कर भाग ॥९८॥

जो कबिता मैं आदरत, साहित रीति बिचार।
सो निहार लघु करिकह्यो, निजमति के अनुसार ॥९९॥

रस धुनि गुनि अरु लच्छना, बिंग्य शब्द अभिराम।
सप्त सही यामैं सही, धर्‌यो सतसई नाम ॥१००॥

———

श्री रामसहायदास अस्थाना

[राम]

रचना काल–सं० १८६०-१८८० वि०

सतसईकारों में जब हमें श्री रामसहायदास अस्थाना का स्मरण होता है तब हमें एक विशेष प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है। मतिराम बिहारी के लगभग समकालीन ही थे, किन्तु कई शताब्दियों बाद यदि बिहारी सतसई की आधारभूत और बिहारी को याद दिलाने वाली कोई रचना कही जा सकती है तो वह अस्थाना जी से ही बन पढ़ी है।

अस्थाना जी का जन्म चौबेपुर जिला बनारस में हुआ था। बड़े ही सहृदय व्यक्ति थे। इसी भक्ति भाव के कारण लोगों ने इन्हें भगत नाम से ही सम्बोधन करना प्रारम्भ कर दिया था! अपना उपनाम भी यह 'भगत' ही रखते थे।

काशी नरेश सदा से ही गुणियों के प्रेमी थे। उनके परिवार में कोई न कोई गुणज्ञ सदा से रहते आए हैं। काशी नरेश महाराज उदित नारायण सिंह जी भी सदा गुणज्ञों के प्रेमी रहे। अस्थाना जी इन्हीं महाराज के आश्रित कवि थे।

श्री रामसहायदास अस्थाना के पिता का नाम मुंशी भवानीदास था। यह बड़े ही सहृदय और प्रेमी व्यक्ति थे। अस्थाना जी पर इनके पिता का बड़ा प्रभाव पड़ा और उनके संसर्ग से इन्हें भक्ति और काव्य से विशेष प्रेम हो गया था।

'राम सतसई' हिन्दी भाषा की अमूल्य सम्पत्ति है। इनकी कलापूर्ण रचना अस्थाना जी को एक कलाकार और उत्तम कवि होने का प्रमाण देती है। दोहों की चमत्कारपूर्ण भावोन्मेषिणी शैली और उनका भाव वैदग्ध्य हमें बिहारी के दोहों का स्मरण करा देता है। किन्तु भाव गम्यता में यह के बिहारी दोहों के

पास तक जाने में अपना हलकापन सिद्ध करते हैं। इनका शब्द-चयन और पद-विन्यास बिहारी के दोहों के टक्कर का है।

'राम सतसई' के दोहे माधुर्य और प्रसाद गुणपूर्ण अवश्य हैं, किन्तु ओज का अभाव और सूक्ष्मता में हृदय पक्ष से गिरे हुए प्रतीत होते हैं।

हृदय की सरसता इनके शृङ्गारिक दोहों में वहीं तक लक्ष्य होती है, जहाँ तक एक भक्त कवि का हृदय शृंगार की थाह ले सकता है। इससे सीधे-साधे हृदय की उड़ान के अतिरिक्त हाव-भाव या नायक-नायिकाओं की कूटिमयी चालों से कवि अनजान सा प्रतीत होता है और उसमें बिहारी ऐसे शृंगारी कवि की भाँति नायक-नायिकाओं की प्रकृति पर्यवेक्षण-शक्ति का अभाव का होना ठीक ही है।

'राम सतसई' की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। इस मार्ग में कवि बड़ा सतर्क होकर चला है। ब्रजभाषा का माधुर्य और उसका निखरा रूप हमें मतिराम की रसीली भाषा की याद दिलाता है। इसमें कवि मतिराम से कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने का दावा करता है, और उसमें उसे सफलता भी प्राप्त हुई है।

शब्द-चयन सुगठित और भावानुकूल हैं। उनका प्रयोग स्थान-स्थान पर ऐसा उपयुक्त, कलापूर्ण और अर्थ-मैत्री लिए हुए हुआ है कि अनायास मुँह से वाह निकल जाती है।

'राम सतसई' के अतिरिक्त कवि ने 'बृत तरङ्गिणी' (छन्द), वाणी-भूषण (अलंकार) और ककहरा जो अखरावट के ढंग का है, लिखे हैं।

'रात सतसई' के कारण कवि का स्थान हिन्दी साहित्य में सदा अमर रहेगा।

❀

[दोहा]

श्री स्यामा कों करत हैं, राम सहाय प्रनाम।
जिन अहिपतधर कों कियौ, सरस निरन्तर धाम ॥ १ ॥
अरुन अयन संगीत तन, वृन्दावन हित जासु।
नगधर कमला सकत बर, बिपुङ्गबासन आसु ॥ २ ॥
मृदु धुनि करि मुरली पगी, लगी रसै हरिगात।
या मुरली की है अली, बनी भली बिधि बात ॥ ३ ॥
घन जोबन नय चातुरी, सुन्दरता मृदु बोल।
मनमोहन नेहै बिना, सब खैहै कै मोल ॥ ४ ॥
छाय रही सखि बिरह सों, बे आबी तन छाम।
पी आए लखि बरि उठी, महताबी सी बाम ॥ ५ ॥
प्रथमहि पारद मैं रही, फिरि सौदामिनि माह।
तरलाई भामिनि-दृगनि, अब आई ब्रज नाह ॥ ६ ॥
जमुनातट नटनागरै, निरखि रही ललचाइ।
बार-बार भरि गागरै, बारि ढारि मुसक्याइ ॥ ७ ॥
रुचिराई चितवनि निकनि, चलनि चातुरी चारु।
हित चित की रुचि चुनि दई, सुनि तोही करतारु ॥ ८ ॥
बढ़ि बढ़ि मुख समता लिए, चढ़ि आए निरसंक।
तातै रंक मयंक री, पायौ अङ्क कलंक ॥ ९ ॥

१—अहिपतिधर=शेषनाग को धारण करने वाला क्षीर सागर।
२—नगधर=गिरधारी, कृष्ण। बिपुङ्गबासन=गरुड़ है वाहन जिनका।
३—अली=सखी। भलीबिधि=भली प्रकार।
४—नय=नीति। नेहै=प्रेम के। खैहै=धूल के।
५—बे-आबी=अनमनी। महताबी=आतिशबाजी।
६—पारद=पारा। सौदामिनि=बिजली। तरलाई=चंचलतामय रसीलापन।
७—बारि=जल। ढारि=गिराकर।
८—चितवनि=देखना। निकनि=निकाई। करतारु=करतार।
९—निरसंक=निडर। रंक=गरीब। मयंक=चन्द्र।

कोटि जतन करि करि थकी, सुधिहि सकी न सम्भारि।
छाक छयल छवि की छकी, जकी रही यह नारि ॥१०॥
हो हरि गोरी खेल ते, होरी रह्यो न धीर।
संगहिं अँखियनि मैं धँसे, अलि बलबीर अबीर ॥११॥
मेरे दृग को दोस री, लाइ लगावै धाइ।
बिन चितए चितचोर के, भरि आवैं अकुलाइ ॥१२॥
लखि लखतहिं मन हरि गयौ, जग्यौ सुमन सर जोइ।
मूरति सौ निरखति खरी, सूरति नंद किसोर ॥१३॥
निधरक छवि छाकैं छकैं, चलहिं न अरु बिचलैं न।
ए लोचन अति लालची, बरजेहू मानैं न ॥१४॥
अरी होन दै अब हँसी, लहरि भरी हौं जोइ।
हौं वा कारे की दसी, तीतो मीठो होइ ॥१५॥
आधे नख कर आँगुरी, मेंहदी ललित बिराजि।
मनु गुलाब की पांखुरी, बीरबधू रहि छाजि ॥१६॥
सरद-जामिनी कुञ्ज को, लिए चले यदुराय।
मिली कामनी चाँदनी, केसनि दई बताय ॥१७॥
पुहपित पेखि पलासबन, तब पलास तन होंइ।
अब मधुमास पलास भी, सुचि जवास सम सोइ ॥१८॥

१०—छयल=छैल। छकी=मस्त। जकी=डरी।

११—धँसे=घुसे। बलबीर=कृष्ण।

१२—दोस=दोष। भरि आवे=भर आते हैं, प्रेमाश्रु आ जाता है।

१३—मूरति सी=एक टक।

१४—निधरक=बेधड़क। बरजेहू=मना करने पर भी।

१५—कारे=साँप, कृष्ण।

१६—मनु=भक्त। बीरबधू=बीर बहूटी।

१७—सरद=जामिनी=शरद ऋतु की चाँदनी रात। केसनि=बालों ने।

१८—पुहपित=फूले हुए। जवास=एक वृक्ष जो वर्षा में पत्तों से रहित हो जाता है।

धीर अभय सट भेदि कै, भूरि भरीहू भीर।
झमकि जुरहिं दृग दुहुनि के, नेकु मुरहिं नहिं बीर ॥१९॥
लाल गुलाब प्रसून कों, अब न चलावै फेरि।
परीं बाल के गात मैं, खरो खरोटैं हेरि ॥२०॥
धनि धनि है धन के चरन, सिंजित मनि मञ्जीर।
कल हँसन के चेटुवन, मन ललचावन बीर ॥२१॥
बानि तजैं नहिं बावरे, कानि कि हानि लजैन।
सौहैं दरसत साँवरे, होत हंसौहैं नैन ॥२२॥
आज अचानक गैल मैं, लखत गयौ हरि धीर।
काढ़े कढ़त न गड़ि रहे, अँखियनि मैं बलबीर ॥२३॥
जातरूप परिजंक कीं, पाटी रहि लपटाइ।
मीच बीच ही चहि चकी, तनु न पिछानी जाइ ॥२४॥
जौ वाके सिर पै परै, छाहँ सुमन की आय।
तौ बलि ताके सार सों, लंक बंक ह्वै जाय ॥२५॥
हौं न दुनी मैं यह सुनी, रीझत हो गुन पाय।
मो विगुनी हू पै कृपा, करत रहो यदुराय ॥२६॥
ठकुराइन पाइन चितै, नाइन चित चकवाइ।
फिरि फिरि जावक देति है, फिरि फिरि जाइ समाइ ॥२७॥
सेस छबीहि न कहि सकै, अगम कबीहि सुधीर।
स्याम सबीहि बिलोकि कै, बाम भई तसवीर ॥२८॥

१९—अभय=निडर। २०—खरोटैं=खरोच।
२१—धन=स्त्री, युवती। चेटुवन=बच्चे। बीर=सखी।
२२—कानि=इज्जत। हँसोहैं=हँसते हुए।
२३—गैल=गली। काढ़े=निकाले। बलबीर=कृष्ण।
२४—परिजंक=पलंग। मीच=मृत्यु। पिछानी=पहिचानी।
२५—छाँह=छाया। लंक=कमर। २६—दुनी=दुनिया। निगुनी=गुणहीन।
२७—चकवाइ=चकित हो रही है। जावक=महावर।
२८—सेस=शेषनाग। सबीहि=शोभा, सूरत। बाम=स्त्री।

आप भलो तौ जग भलो, यह मसलो जुअ गोइ।
जौ हरि-हित करि चित-गहो, कहो कहा दुख होइ ॥२९॥

अहे कहो कच सुमुखि के, बिधि बिरचे रुचि जोरि।
छूटे बाँधत है बंधे, लेत ललन मन छोरि ॥३०॥

वे नीके नीकी इहौ, क्यौं फीकी परै चाह।
दुहुँ दिसि नेह निवाह पैं, वाह वाह है वाह ॥३१॥

त्रिबिध प्रभंजन चलि सुरभि, करत प्रभंजन धीर।
तन मन् गंजन अलि प्रभृत, बिन मनरंजन बीर ॥३२॥

चितवै चित आनन्द भरि, चारु चन्द्र की ओर।
प्रीति करन की रीति कों, सिखवै चातुर चकोर ॥३३॥

मन-खेलार तन चंग नव, उड़त रंग रस डोर।
दूरहि डोर बटोर जब, जब पारै तव ठोर ॥३५॥

यह अहनिसि बिकसित रहै, वह निसि मैं कुँभिलाय।
यातै तो मुख कमल लौं, कहो कहो किमि जाय ॥३५॥

काहि छला पहिराव री, हों बरजी बहु बार।
जाय सही नहिं बावरी, मिहदी रंग को भार ॥३६॥

इक दृग पिचकारी दई, इकहि लई ही लाय।
सखी बिहारी दिसि लखो, रसनहिं दसन दबाय ॥३७॥

चलनि भली बोलनि भली, सुछवि कपोलनि आज।
तकि सौंहैं चितवनि भली, भले वने ब्रजराज ॥३८॥

२९—जुअ=दोनों। मसलो=मसला, कहावत। ३०—कच=बाल। छोरि=छुड़ा।
३१—फीकी=कम। ३२—प्रभंजन=आँधी।
३३—चारु=सुन्दर। सिखवै=सिखलावे। ३४—चंग=पतंग। डोर=डोरी।
३५—अहनिसि=रातदिन। यातै=इससे।
३६—छला=छल्ला। मिहदी=मेंहदी। भार=बोझ। ३७—लई=आग। रसनहिं=जीभ।
३८—चलनि=चलना। बोलनि=बोलना। सौंहैं=सामने।

का केकी की काकली, का काली निसि चैन।
बन माली आए अली, बनमाली आए न ॥३९॥
नैन उनींदे कच छुटे, मुखहिं छुटे अंगिराय।
भोर खरी सारस मुखी, आरस भरी जँभाय ॥४०॥
तेरी सरल चितौनि तें, मोहे नंद किसोर।
कैसी गति ह्वैहै तके, कुटिल तरल चख छोर ॥४१॥
पी-पाती पाते उठी, ती छाती सियराइ।
सुनि सँदेस रस भेद सों, गई स्वेद सोंन्हाइ ॥४२॥
उसरि बैठि कुकि काग रे, जो बलबीर मिलाय।
तौ कंचन के कागरे, पालूँ छीर पिलाय ॥४३॥
लाल उतार दई अली, मैं मेली उर बाल।
गई पसीने न्हाइ सो, भली चमेली माल ॥४४॥
निसि दिन पूरन जगमगै, आवै धोय कलंक।
जौ तौ बा मुख की प्रभा, पावै सरद मयंक ॥४५॥
स्याम बिन्दु नहिं चिबुक मैं, मो मन यौं ठहराइ।
अधमुख ठोड़ो गाड की, अँधियारी दरसाइ ॥४६॥
दीठि निसेनी चढ़ि चल्यो, ललचि सुचित मुख गोर।
चिबुक गड़ारे खेत मैं, निबुक गिर्‌यों चितचोर ॥४७॥
जुग जुग ये जोरी जियैं, यों दिल काहु दिया न।
ऐसी और तिया न हैं, ऐसी और पिया न ॥४८॥

३९—केकी=मोर। वन माली=वन के माली। बनमाली=कृष्ण।
४०—कच=बाल। अँगिराय=अँगड़ाई लेना। सारसमुखी=चन्द्रमुखी। आरस=आलस।
४१—गति=दशा। कुटिल=टेढ़े, तिरछे। तरल=रसीले। चखछोर=नेत्र को।
४२—पी=प्रियतम। ती=सुन्दरी। रसभेद=रस का भेद। स्वेद=पसीना।
४३—उसरि=ऊसर। कुकि=बोल। कागरे=पींजड़े। छीर=दूध। ४४—मेली=पिन्हाई।
४५—पूरन=पूर्ण। ४६—चिबुक=ठोड़ी। ठोड़ी गाड़=ठुड्डी का गड्ढा।
४७—निसेनी=सीढ़ी। निबुक=छुटकारा। ४८—जोरी=जोड़ी, राधा-कृष्ण।

आज रहे बलबीर री, बीर अबीर उड़ाय।
सोभा भाषि न जाय जो, आंखिन देखि न जाय ॥४९॥

रस बरसत है रावरो, तन पुलकित घनस्याम।
कहो अधर मैं कौन को, रहो अधकहो नाम ॥५०॥

चूकि समैं न बिचारि तू, बादि करे अपसोस।
अपने करम फलद चितै, हरि को देइ दोस ॥५१॥

लाल लाई ललितई, कलित नई न दरसाय।
दरसो सारस रस भरे, दृग आदरस मँगाय ॥५२॥

अरुन स्याम बेंदी दिए, मुकुर दरसि मुसक्याइ।
मनहु बिमल सर ससि गयौ, कुज सनि संग लिवाइ ॥५३॥

लाल चलत लखि वाल के, भरि आए दृग लोल।
आनन बात कढ़ी नहीं, पीरी चढ़ी कपोल ॥५४॥

टरत न चौबारे खड़ी, अरी भरी रस-वाम।
अरो खरो तहँ साँवरो, प्रेमभरो बस-काम ॥५५॥

लसत पीत पट हरि कटी, ऊँचे कर दृग नीच।
मनु चपला छबि सों, पटी है लपटी घनबीच ॥५६॥

भरन गई जमुना जलै, जोहि ललै ललचाइ।
ईछन भरि छबि छैल की, आई चेत गँवाइ ॥५७॥

४९—वलबीर=कृष्ण। ५०—अधकहो=आधा कहा हुआ।

५१—बादि=व्यर्थ। फलद=फल देने वाला। ५२—सारस=कमल।

५३—अरुनस्याम=लाल और काली। कुज=मंगल (लालबिंदी)। सनि=शनि (काली बिन्दी)।

५४—लोल=चंचल। आनन=मुख से। कढ़ी=निकली। पीरी=पिलाई।

५५—अरो=अड़े हुए। बस-काम=काम के वशीभूत होकर।

५६—कटी=कमर। पीत पट=पीताम्बर। घन=बादल।

५७—ललै=लाल, कृष्ण। ईछन=आँख।

सुबरन पाय लगे लगौ, दुरित उदित जग माँहि।
परत रजत पायल अरी, सुबरन की ह्वै जाँहि ॥५८॥
मैं मोही मोहे नयन, खेह भई यह देह।
होत दुखै परिनाम करि, निरमोहीं सो नेह ॥५९॥
जिहि पहिरे छगुनी अरी, छिगुनी छवि छहराँहि।
सोने के लोने भले, छले छले किहि नाँहि ॥६०॥
आगे चलि पाछे चलै, फिरि आगे समुहाइ।
तरुनी तरल तुरंगिनी, चली अली सँग जाइ ॥६१॥
सुप्रसंसा या बात की, करि जा ती गन पास।
धनि जगती मैं चातकी, हक स्वाती-घन आस ॥६२॥
झीनी सारी सजि लगी, न्हाय निरखि जदुराय।
खरी सकोचन सों भरी, लोचन रही नवाय ॥६३॥
घर हाइन चरचैं चलैं, चातुर चाइन सैन।
तदपि सनेह सने लगैं, ललकि दुहूँ के नैन ॥६४॥
जाति सखी काहु न लखी, रहे अथाइन गोप।
लोप भई ती जोन्ह मैं, निज अंगनि की ओप ॥६५॥
नई चाह मैं डुबि रही, दही बिरह वर नारि।
छला लला को लै लई, मुदरी दई उतारि ॥६६॥
हरितन हरितन कत तकै, हरि-तन हरित निहारि।
चरित न तो तन लखि परै, कित चितहितन बिसारि ॥६७॥

५८—रजत=चाँदी। सुबरन=सोना अच्छा रंग।
५९—खेह=मिट्टी। परिनाम=अन्त।
६०—छगुनी=छः गुनी। छिगुनी=छिगुनिया। छले=छल्ले, छलना।
६१—समुहाइ=चलती है। ६२—ती=स्त्री।
६३—खरी=खड़ी, बहुत। ६४—चाइन=चुगुल खोर।
६५—अथाइन=झुण्ड। ओप=शोभा, प्रकाश। ६६—डुबिरही=डूबी रही। दही=जली।
६७—हरितन=प्रभु के भेद।

ललित नीलकन चिबुक मैं, लसत प्रभा लहि दून।
मनु अरसी की पांखुरी, लगी गुलाब प्रसून ॥६८॥

हौं तो हौं गोरी खरी, तुम कारे जदुराय।
नहिं हिरके आवो कहूँ, या अँग रँग लगि जाय ॥६९॥

सगरब गरब खिचैं सदा, चतुर चितेरे आय।
पर वाकी बाँकी अदा, नेकु न खींची जाय ॥७०॥

कलरव करि झुकि श्रुति लगै, रसगाहक चितचोर।
स्यामु बरन सुन्दर सुखद, कुञ्ज बिहारी भोंर ॥७१॥

चन्द्रहार चम्पाकली, काहि अली पहिराय।
फूलनि हूँ के हार कों, भार सहौ नहिं जाय ॥७२॥

अँखियाँ अनमिष लेहु लखि, चलन चहत घनस्याम।
निति रहिहो घनस्याम हीं, रस बस आठो जाम ॥७३॥

लखि हरि रुचि गुरुजन सकुचि, भई पिछोंड़ी नीठि।
दई निरदई नहिं दई, ईठि पीठि मैं दीठि ॥७४॥

बरसाइत कौ वार है, बर पूजन मिसु लाल।
सुख बर बरसाने चहैं, वरसाने की बाल ॥७५॥

पाय लगों छोरों न अब, हायल नन्दकुमार।
छूटत हीं घायल करै, छरकायल यै बार ॥७६॥

६८—चिवुक=ठुड्डी। पाँखुरी=पंखड़ी।

६९—खरी=खूब। हिरके=नजदीक, पास।

७०—सगरब=गर्व सहित। चितेरे=चित्रकार।

७१—श्रुति=कान। भोर=भ्रमर। ७२—काहि=किसे। सहो=सहा।

७३—जाम=दिन। ७४—गुरुजन=बड़े लोग। दई=ईश्वर, देना।

७५—बरसाइत=जेठ की अमावस, जिस दिन स्त्रियाँ। व्रट=सावित्री की पूजा करती हैं। बर=बरगद का वृक्ष। बरसाना=व्रज के निकट एक गाँव।

७६—हायल=मूछित। छरकायल=छिटके हुए। बार=बाथ।

यौं बाजूबँद मैं भली, छबियनि झुमका झोंरि।
कनकलता मानहु फली, मरकत मनि की घोंरि ॥७७॥

बन्धुजीव लागैं मलिन, भागैं बिम्ब प्रबाल।
बाल अधर को लाल लखि, नलिन कुसित कुस लाल ॥७८॥

चंदकला कै चञ्चला, कै चंपे की माल।
कै चामीकर की छरी, सुछबि भरी कै बाल ॥७९॥

रोम तनै तन मैं घने, स्वेदकने घन माथ।
नोके नारी देखिए, थरथरात हैं हाथ ॥८०॥

बिसद बसन मेहीन मैं, ती - तन - नूर - जहूर।
मनू बिलूर फानूस मैं, दीपै दीप कपूर ॥८१॥

किहि बिधि जाउँ बसन्त मैं, विकसित बेलि निकुंज।
मो मुख लखि चहुँ ओर तें, झुकत झपत अलि पुञ्ज ॥८२॥

चुगि चितवनि चारा परचि, गहे ढिठाई आय।
हाँसी फाँसी परि सकै, मन कुलंग न उड़ाय ॥८३॥

जब वाके रद की चिलक, चमचमाति जिहि कोति।
मंद होति दुति चन्द की, चपति चञ्चला-जोति ॥८४॥

त्रिभुवन सुखमा सार लै, सोम सलिल सों सानि।
रवि ससि साँचे ढार बिधि, रचे कपोल सुजानि ॥८५॥

७७—छबियनि=चाँदी या सोने की छोटी-छोटी कटोरियाँ जो बाजूबंद, जोशन, हुमेल आदि में गूँथी जाती हैं। घोंरि=गुच्छा।

७८—बंधुजीव=बीर बहूरी। प्रवल=मूँगा। ७९—चांमीकर=सोना।

८०—स्वेदकने=पसीने=पसीनें की बूंदे। नारी=नाड़ी।

८१—मेहीन=महीन। ती-तन-नूर=स्त्री के शरीर का सौन्दर्य। जहूर=प्रकट।

८२—किहि बिधि=किस प्रकार। झपत=ढक। अलिपुंज=भ्रमर समूह।

८३—कुलंग=बाज। ८४—रद=दाँत। ८५—सोम=चन्द्रमा।

ललित नीलकन चिबुक मैं, लसत प्रभा लहि दून।
मनु अरसी की पांखुरी, लगी गुलाब प्रसून ॥६८॥

हौं तो हौं गोरी खरी, तुम कारे जदुराय।
नहिं हिरके आवो कहूँ, या अँग रँग लगि जाय ॥६९॥

सगरब गरब खिचैं सदा, चतुर चितेरे आय।
पर वाकी बाँकी अदा, नेकु न खींची जाय ॥७०॥

कलरव करि झुकि श्रुति लगै, रसगाहक चितचोर।
स्यामु बरन सुन्दर सुखद, कुञ्ज बिहारी भोंर ॥७१॥

चन्द्रहार चम्पाकली, काहि अली पहिराय।
फूलनि हूँ के हार कों, भार सहौ नहिं जाय ॥७२॥

अँखियाँ अनमिष लेहु लखि, चलन चहत घनस्याम।
निति रहिहो घनस्याम हीं, रस बस आठो जाम ॥७३॥

लखि हरि रुचि गुरुजन सकुचि, भई पिछोंड़ी नीठि।
दई निरदई नहिं दई, ईठि पीठि मैं दीठि ॥७४॥

बरसाइत कौ बार है, बर पूजन मिसु लाल।
सुख बर बरसाने चहैं, वरसाने की बाल ॥७५॥

पाय लगों छोरों न अब, हायल नन्दकुमार।
छूटत हीं घायल करै, छरकायल यै बार ॥७६॥

६८—चिवुक=ठुड्डी। पाँखुरी=पंखड़ी।

६९—खरी=खूब। हिरके=नजदीक, पास।

७०—सगरब=गर्व सहित। चितेरे=चित्रकार।

७१—श्रुति=कान। भोर=भ्रमर। ७२—काहि=किसे। सहो=सहा।

७३—जाम=दिन। ७४—गुरुजन=बड़े लोग। दई=ईश्वर, देना।

७५—बरसाइत=जेठ की अमावस, जिस दिन स्त्रियाँ। व्रट=सावित्री की पूजा करती हैं। बर=बरगद का वृक्ष। बरसाना=व्रज के निकट एक गाँव।

७६—हायल=मूछित। छरकायल=छिटके हुए। बार=बाथ।

यौं बाजूबँद मैं भली, छवियनि झुमका झोंरि।
कनकलता मानहु फली, मरकत मनि की घोंरि ॥७७॥

बन्धुजीव लागैं मलिन, भागैं बिम्ब प्रबाल।
बाल अधर को लाल लखि, नलिन कृसित कृस लाल ॥७८॥

चंदकला कै चञ्चला, कै चंपे की माल।
कै चामीकर की छरी, सुछवि भरी कै बाल ॥७९॥

रोम तनै तन मैं घने, स्वेदकने घन माथ।
नोके नारी देखिए, थरथरात हैं हाथ ॥८०॥

बिसद बसन मेहीन मैं, ती - तन - नूर - जहूर।
मनू बिलूर फानूस मैं, दीपै दीप कपूर ॥८१॥

किहि बिधि जाउँ बसन्त मैं, विकसित बेलि निकुंज।
मो मुख लखि चहुँ ओर तें, झुकत झपत अलि पुञ्ज ॥८२॥

चुगि चितवनि चारा परचि, गहे ढिठाई आय।
हाँसी फाँसी परि सकै, मन कुलंग न उड़ाय ॥८३॥

जब वाके रद की चिलक, चमचमाति जिहि कोति।
मंद होति दुति चन्द की, चपति चञ्चला-जोति ॥८४॥

त्रिभुवन सुखमा सार लै, सोम सलिल सों सानि।
रवि ससि साँचे ढार बिधि, रचे कपोल सुजानि ॥८५॥

७७—छवियनि=चाँदी या सोने की छोटी-छोटी कटोरियाँ जो बाजूबंद, जोशन, हुमेल आदि में गूंथी जाती हैं। घोंरि=गुच्छा।

७८—बंधुजीव=बीर बहूरी। प्रवल=मूंगा। ७९—चांमीकर=सोना।

८०—स्वेदकने=पसीते=पसीनें की बूंदे। नारी=नाड़ी।

८१—मेहीन=महीन। ती-तन-नूर=स्त्री के शरीर का सौन्दर्य। जहूर=प्रकट।

८२—किहि बिधि=किस प्रकार। झपत=ढक। अलिपुंज=भ्रमर समूह।

८३—कुलंग=बाज। ८४—रद=दाँत। ८५—सोम=चन्द्रमा।

सी सी करि मुरि मुरि गई, जिन पहिरत तूँ बाल।
चूर-चूर चित ह्वै गयौ, तिन चुरियनु मैं लाल ॥८६॥

अलि बेचन चलिहैं चलो, सफल करहिं रसनाहिं।
जो रस गोरस मों भलो, सो रस गोरस नाहिं ॥८७॥

बलि कुंजत हैं कोकिले, गुञ्जत हैं अलिपुंज।
तने बितान लतान के, घने बने बन-कुंज ॥८८॥

कच चिकने मेचक चटक, चारु चिलक चित चोर।
छहरि रहे छवि छाय छुट, छुए छवा के छोर ॥८९॥

मुखहि अलक को छूटिवो, अबसि करै दुतिमान।
बिन बिभावरी के नहीं, जगमगात सितभान ॥९०॥

भोरहि चखनि चकोर कों, धनि धनि दियो अनंद।
चाहि कियो नँननंदमुख, चंद अहो सुखकंद ॥९१॥

चतुराई लिक चपलई, धिकधिक कारे काग।
तोहि अछत निघरक रहैं, कूकत पिंक कुल बाग ॥९२॥

हौं बुझ्यो कबरीन सों, क्यों कारी दरसाइ।
कही जु रवि सममुख रहै, सो कारो ह्वै जाइ ॥९३॥

मेरे और कपोल नहि, अरु मैं हूँ नहि और।
ईठि आज पी दीठि कों, दीठि और यहि ठौर ॥९४॥

मुख देखन कों पुरबधू, जुरि आई नँद नंद।
सब की अँखियाँ ह्वै गईं, घूंघट खोलत बन्द ॥९५॥

८६—सी सी=सीत्कार। चुरियनु=चूड़ियाँ।

८७—गोरस=दूध। गोरस=इन्द्रिय रस। ८८—वितान=तम्बू।

८९—कच=बाल। ९०—अलक=लट। विभावरी=रात।

९१—चखनि=नेत्रों। ९२—अछत=रहते हुए।

९४—ईठि=सखी, मित्र। ९५—पुरवधू=नगर की स्त्रियाँ।

हेरि हरी अचरज भरी, कहत खरी करि सोर।
दिनहिं तरनिजा तीर री, कूजित मुदित चकोर ॥९६॥
सखि हरि राधा सँग दिन, चले बिपिन की ओर।
लखि अनंद सों सोर करि, दौरै मोर चकोर ॥९७॥
तारे तरनि दुरे भए, मुकुलित सरसिजु दोइ।
सखि प्रभात तम-तोम मैं, सोस सुहावन जोइ ॥९८॥
श्री राधा माधव हमैं, निति राखो निज छाँह।
मेरो मन तुम मैं बसो, तुम मेरे गन माँह ॥९९॥
कलित ललितई सतसई, रामसहाय बनाय।
हरि राधाहि नजर दई, अजर लई रति पाय ॥१००॥

९६–हेरि=देख। खरी=खड़ी। ९७–बिपिन=जंगल।
९८–तरनि=सूर्य। ९९–निज छाह=अपनी छाया।
१००–नजर दई=नजर दिया।

अधर सुधा की माधुरी से, बसुधा तल सींच।
मोहन मुरली सरस रस, देती रहे उलीच ॥ १० ॥
क्यों नहि होती स्वरित, हो ब्रज मण्डल मे व्याप्त।
मन मोहन की मुरलिका, दिव्य अधर कर प्राप्त ॥११॥
सारी बाधाये हरे, राधा नयना नंद।
बृन्दारक बंदित चरण, श्री बन्दावन चंद ॥१२॥
विवुध वृंद अराधिता, वुध सेविता निकाल।
जय वीणा पुस्तकवती, हंस विलसती बाल ॥१३॥
विना बीज क्यो बेल हो, विना तिलों क्यों तेल।
किसी खेलाड़ी के बिना, है न जगत का खेल ॥१४॥
हर सारा अज्ञान तम, बनभव सागर पोत।
गुरू तज उर मे ज्ञान की, कौन जगावे जोत ॥१५॥
पाता जो न पथा समय, गुरु वर तप का ताब।
होते होते आब के आब, हीन पंजाब ॥१६॥
लाल लाल आखें करें, गुरु को संमझें काल।
तदीप लालसा है बने, हम माई के लाल ॥१७॥
जो महि मे होती नही, माता ममता भौन।
ललक बिठाता पुत्र को, नयन पलक पर कौन ॥१८॥
छाती मे कढ़ता न क्यों, तब बन पय की धार।
जब माता उर मे उभंग, नही समाता प्यार ॥१९॥
यदि माता महि मध्य है, ररसा सुघा समान।
कामधेनु पय तो पिता, का होगा उपमान ॥२०॥
कौन बरसता खेह पर, निशि दिन मेह समेत।
बिना पिता पालन किये, पलती किसकी देह ॥२१॥
जो होते भू पर नही, पिता प्यार के भौन।
ललक विठाता पूत को, नयन पलक पर कौन ॥२२॥
माता है यदि सुत के, लिये गौरव आगार।
तो होता सुत से पिता का, भी है सत्कार ॥२३॥

है तन छवि के सिर घरे, बदन लसित बर वेश।
किसी छबीले अंक मे, छुटे छरहरे केश ।।२४।।
सुंदर भाल विशाल पर, है मंजुल शृंगार।
है चंदन का तिलक जग, अभिनंदन आधार ।।२५।।
चन्दन भाल विशाल का, है बहुभाव उपेत।
रजो गुणी है लाल, और सतोगुणी है स्वेत ।।२६।।
युगुल विलोचन मंजुता, मोहकता का अंक।
कुंठित करता है सदा, भृकुटी कुटिल कलंक ।।२७।।
चैन आयतन चित्त को, बना बना बेचैन।
है अनीति करते कभी, नीति निकेतन नैन ।।२८।।
बन बन करके सर्वदा, विपुल बिलोचन चोर।
किस चित्त मे चुभती, नही है आखों को कोर ।।२९।।
चाल बुरी चल बुरा है, कहलाता चालाक।
ताक झाँक अनुचित महा, कट जायेगी नाक ।।३०।।
मान मिले अपमान को, कभी न हो संयोग।
हम ऐसा क्यों करे, जो नाक सिकोड़े लोग ।।३१।।
सरज सरलता सलिल की, वह है मंजुल मीन।
रसना क्यों रस बरसती, जो होतो रसहीन ।।३२।।
दाँत सताते हैं उसे, पर वह है निरुपाय।
जीभ काट सकते नही, क्यों न स्वयं कट जाय ।।३३।।
जीभ हिलाये कब हिली, कान हुआ कब तात।
होंठ चाट कर रह गये, कढ़ी न मुख से बात ।।३४।।
वह कुचलन है और है, नही सुरुचि अनूकूल।
वात बात में दाँत का, है निकालना भूल ।।३५।।
कब तक हम चुप रहेगे, खल को दें क्यो छोड़।
खड़े बखेड़े क्यो सहें, क्यों न दाँत दे तोड़ ।।३६।।
रोब दाब का अंग है, गौरव का उपमान।
कब दाढ़ी के बाल का, हुआ बोलबाला न ।।३७।।

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय

[हरिऔध]

महाकवि 'हरिऔध' जी की सर्वतोमुखी प्रतिभा ने हिन्दी भाषा के किसी भी विषय को नहीं छोड़ा। दोहा साहित्य के भण्डार को पूर्ति 'हरिऔध' जी के करकमलों द्वारा हुई है।

'हरिऔध' जी का जन्म बैसाख कृष्ण तृतीया संवत् १९२२ विक्रमीय में निजामाबाद (आजमगढ़) में हुआ था। आपके पिता का नाम पं० भोला सिंह उपाध्याय और माता का श्रीमती रुक्मिणी देवी था।

'हरिऔध' जी हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, बँगला तथा पंजाबी भाषा के पण्डित थे। अंग्रेजी का भी आपको ज्ञान था।

'हरिऔध सतसई' उपाध्याय जी की अमूल्य रचना है। 'हरिऔध' जी हिन्दी साहित्य के आचार्य थे। अतएव उसीके अनुसार आपकी सतसई भी है।

आपकी भाषा शुद्ध साहित्यिक है। अवधी, खड़ी और व्रजभाषा तीनों पर आपका एकाधिपत्य था। हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रिय प्रवास' लिखकर आपने नवीन भाषा साहित्य में एक युगान्तर स्थापित करके नवीन साहित्यिकों के लिये मार्ग प्रदर्शन का कार्य किया है। यही कार्य आपने गद्य में भी किया है।

'हरिऔध सतसई' की भाषा प्राञ्जल और शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है। अलंकारों की छटा देखते ही बनती है। भाषा भाव के अनुकूल है। ओज, माधुर्य और प्रसाद गुण आपको स्थान-स्थान पर मिलेंगे।

'हरिऔध सतसई' हिन्दी भाषा की एक अनोखी देन है। जिसे प्रस्तुत करके हरिऔध जी ने हिन्दी सतसईकारों और दोहाकारों की श्रेणी में उच्च स्थान प्राप्त करने के साथ-साथ सतसई परम्परा में आमल परिवर्तन करने की प्रवृत्ति दी है।

हरिऔध जी के प्रसिद्ध ग्रन्थों में प्रिय 'प्रय-प्रवास', दोहों में चौखे चौपदे, आदि हैं। आपने उपन्यास भी लिखे हैं जिनमें ठेठ हिन्दी का ठाठ और अधखिला फूल प्रसिद्ध हैं।

हिन्दी साहित्य को अपने इस आचार्य पर सदा गर्व रहेगा।

❀

[दोहा]

जो कुछ है वह है नहीं, मर्यादा अनुकूल।
अर्पण सादर है प्रभो!, साग पात फल मूल ॥ १ ॥
हो मन भावुक भूति में, भक्ति भाव भर पूर।
बन तमारि करुणा निधे, करो हृदय तम दूर ॥ २ ॥
जो बरसाता है सुधा, बसुधा पर सब ओर।
उसके बदन मयंक का, मन बन चुका चकोर ॥ ३ ॥
आँसू जब है बरसता, लोचन बन बेहाल।
करुणा सागर उमड़ता, मिलता है उस काल ॥ ४ ॥
अधम पतित भी हूँ प्रभो, मुझको करो समाथ।
बड़ी बात मैं क्यों कहूँ, छोटे मुख से नाथ ॥ ५ ॥
तब क्यों प्रभु मैं दुख सहूँ, जब तुम हो सुख कन्द।
हो आनन्द निधान दो, मुझको भी आनन्द ॥ ६ ॥
उसकी सकल विभूति को, देखें आँख पंसार।
भूले भी संसार को, कहें न हम निस्सार ॥ ७ ॥
गणपति गौरीपति गिरा, गोपाल गुरु गोविन्द।
गुण गाओ बन्दन करो, पावन पद अरविन्द ॥ ८ ॥
आराधन करते करें, बाधायें सब दूर।
दयासिंधु सिंधुर बदन, आरंजित सिंदूर ॥ ९ ॥

अधर सुधा की माधुरी से, बसुधा तल सींच।
मोहन मुरली सरस रस, देती रहे उलीच ॥ १० ॥
क्यों नहि होती स्वरित, हो ब्रज मण्डल मे व्याप्त।
मन मोहन की मुरलिका, दिव्य अधर कर प्राप्त ॥११॥
सारी बाधाये हरे, राधा नयना नंद।
बृन्दारक बंदित चरण, श्री बन्दावन चंद ॥१२॥
विवुध वृंद अराधिता, वुध सेविता निकाल।
जय वीणा पुस्तकवती, हंस विलसती बाल ॥१३॥
विना बीज क्यो बेल हो, विना तिलों क्यों तेल।
किसी खेलाड़ी के बिना, है न जगत का खेल ॥१४॥
हर सारा अज्ञान तम, बनभव सागर पोत।
गुरू तज उर मे ज्ञान की, कौन जगावे जोत ॥१५॥
पाता जो न पथा समय, गुरु वर तप का ताब।
होते होते आब के आब, हीन पंजाब ॥१६॥
लाल लाल आखें करें, गुरु को समझें काल।
तदीप लालसा है बने, हम माई के लाल ॥१७॥
जो महि मे होती नही, माता ममता भौन।
ललक बिठाता पुत्र को, नयन पलक पर कौन ॥१८॥
छाती मे कढ़ता न क्यों, तब बन पय की धार।
जब माता उर मे उभंग, नही समाता प्यार ॥१९॥
यदि माता महि मध्य है, ररसा सुधा समान।
कामधेनु पय तो पिता, का होगा उपमान ॥२०॥
कौन बरसता खेह पर, निशि दिन मेह समेत।
बिना पिता पालन किये, पलती किसकी देह ॥२१॥
जो होते भू पर नही, पिता प्यार के भौन।
ललक विठाता पूत को, नयन पलक पर कौन ॥२२॥
माता है यदि सुत के, लिये गौरव आगार।
तो होता सुत से पिता का, भी है सत्कार ॥२३॥

है तन छवि के सिर धरे, बदन लसित बर वेश।
किसी छबीले अंक मे, छुटे छरहरे केश ॥२४॥
सुंदर भाल विशाल पर, है मंजुल श्रृंगार।
है चंदन का तिलक जग, अभिनंदन आधार ॥२५॥
चन्दन भाल विशाल का, है बहुभाव उपेत।
रजो गुणी है लाल, और सतोगुणी है स्वेत ॥२६॥
युगुल विलोचन मंजुता, मोहकता का अंक।
कुंठित करता है सदा, भृकुटी कुटिल कलंक ॥२७॥
चैन आयतन चित्त को, बना बना बेचैन।
है अनीति करते कभी, नीति निकेतन नैन ॥२८॥
बन बन करके सर्वदा, विपुल विलोचन चोर।
किस चित्त मे चुभती, नही है आखों की कोर ॥२९॥
चाल बुरी चल बुरा है, कहलाता चालाक।
ताक झाँक अनुचित महा, कट जायेगी नाक ॥३०॥
मान मिले अपमान को, कभी न हो संयोग।
हम ऐसा क्यों करे, जो नाक सिकोड़े लोग ॥३१॥
सरज सरलता सलिल की, वह है मंजुल मीन।
रसना क्यों रस बरसती, जो होतो रसहीन ॥३२॥
दाँत सताते हैं उसे, पर वह है निरुपाय।
जीभ काट सकते नही, क्यों न स्वयं कट जाय ॥३३॥
जीभ हिलाये कब हिली, कान हुआ कब तात।
होंठ चाट कर रह गये, कढ़ी न मुख से बात ॥३४॥
वह कुचलन है और है, नही सुरुचि अनूकूल।
बात बात में दाँत का, है निकालना भूल ॥३५॥
कब तक हम चुप रहेगे, खल को दें क्यो छोड़।
खड़े बखेड़े क्यो सहें, क्यों न दाँत दे तोड़ ॥३६॥
रोब दाब का अंग है, गौरव का उपमान।
कब दाढ़ी के बाल का, हुआ बोलबाला न ॥३७॥

ऐसे लोगों से संभल, मिलो हुये संयोग।
है लायक होते नही, मुँह लटकाये लोग ।।३८।।
कुछ न कभी कर सकेगा, जो भोगे है भोग।
परके मुख को ताकते, रहते है क्यों लोग ।।३९।।
वने किसी के भी लियें, पेट न बुरी बलाय।
हाय हाय करता फिरे, कोई क्यों मुँह बाय ।।४०।।
सदाचार का पाठ तो, नही हो सका कंठ।
कंठी पहने क्या हुआ, रहा लंठ का लंठ ।।४१।।
सदा मंजुतम कार्य से, करता रहे प्रसन्न।
हसँना मानव मात्र का, वन बन सुख सम्पन्न ।।४२।।
है आखों को मोहता, बुझा मंजुता प्यास।
किसी मनोरम बदन का, परम मनोरम हास ।।४३।।
मुझे दयानिधि चाहिये, दिव्य बाँह की छाँह।
है निबाह होता नहीं, प्रभु तुम करो निबाह ।।४४।।
उन लोगो के वास्ते, जो हैं दीन अनाथ।
ऊँचा हाथ रहे सदा, हो नहि नीचा हाथ ।।४५।।
सावधान उससे रहे, पर न करे बक वाद।
जो करते हैं पीठ के, पीछे निंदा बाद ।।४६।।
कभी किसी से वे नही, जोड़ सकेगें गाँठ।
पीठ दिखाने का पढ़ा, करते है जो पाठ ।।४७।।
साधन बल से ही मनुज, पाता है अपवर्ग।
करता शांति प्रदान है, सिद्ध पीठ संसर्ग ।।४८।।
साहस करते बेतरह, तो तुम गिर पड़ते न।
दिल पहिले ही हिला तो, जाघें हिलती क्यों न ।।४९।।
निज मर्यादा क्यों तजे, होवे विघ्न अनेक।
पद प्रति पत्ति विनाशकर, क्यो घुटने दे टेक ।।५०।।
यदि तलवे की लालिमा, है जन लोचन चोर।
तो एड़ी मोरनी की, है मानव मन चोर ।।५१।।

उसका जीवन धन्य है, बहू मूल्य मिलाप।
छोड़ सका जो लोक में, अपनी कीर्ति कलाप ॥५२॥
चित्त संभल कर चलो, जो चाहो निर्वाह।
साधारण होता नहीं, लोभ प्रकाण्ड प्रवाह ॥५३॥
संकट से कर के समर, सुख पाता है सूर।
कल मिलता है चित्त को, हुये विकलता दूर ॥५४॥
विपुल कला से आफलित, पुलकित भरित उमंग।
मन है गात सरोज का, प्रभा निकेत पतंग ॥५५॥
अपने पग पर हो खड़े, तजे पराई पौर।
रख वल अपनी बाह का, बने सबल सिरमौर ॥५६॥
चाकर है सब चित्त के, क्या चकोर क्या कोक।
खिले कमल अवलोक रवि, कुमुद मयंक विलोक ॥५७॥
अपने अपने भाव हैं, अपने अपने साथ।
भूले आक प्रसून पर, भोले भोला नाथ ॥५८॥
विकसित करते नहिं किसे, विकच बदन वुध बृंद।
हिले मिले अलि से रहे, कब न खिले अरबिंद ॥५९॥
है सुकास सुकुमारता, सुन्दरता में लीन।
वेलि चमेली की बने, कैसे अलवेली न ॥६०॥
वैसे ही विकसे रहे, रही दिव्य ही आब।
काँटों मे रह कर हुये, नहिं कंटकित गुलाब ॥६१॥
ललना अधरों पर लगी, जिसकी सुललित छाप।
जपा लालिमा वह मिली, कौन मंत्र कर जाप ॥६२॥
तेरे काँटो से रहे जो, छिपते अलिगात।
तो तू कैसे केतकी बनी, कनक अवदात ॥६३॥
पहुँची को प्रिय पास है, पहुँचाती पहिचान।
चचरीक चित्त में चुभी, चम्पक चम्पकता न ॥६४॥
कैसे तन को बेधते, केतकि कंटक पुंज।
मिलती मत्त मलिन्द को, जो मालती निकुंज ॥६५॥

है रस प्रिय को रसिकता, है मधु प्रिय मधुप्यास।
परम विलासी मधुप का, विलसित कुसुस विलास ॥६६॥
बोटी बोटी में उगम, रोम रोम में त्याग।
रग रग में होवे भरित, भारत का अनुराग ॥६७॥
हार न माने हार हम, सिर पर गिरे पहार।
आरन हों पर हो भरा, उर में भारत प्यार ॥६८॥
मन माना है बुरा है, किसे सकोंगे मूस।
उससे क्यों हों मागते, जो है मक्खी चूस ॥६९॥
कर दिखलायेगे किसी को, राजा हो या रंक।
अकित जो है हो गये, जन कपाल में अंक ॥७०॥
निर्जीवों में भी करे, जो जीवन संचार।
वे है सुकृती विबुध वर, वे है परम उदार ॥७१॥
अत्याचारो की कहाँ तक, बतलाऊँ वात।
दाँत निकाले हस दिये, गये तोड़ सव दाँत ॥७२॥
कान सुन पाये नहीं, लान तान की तान।
मन को करना चाहिये, मानवता का मान ॥७३॥
बहु बाधावो के हुये, विध जाता है मर्म!
हो जाता है धर्मच्युत, प्राणी किये कुकर्म ॥७४॥
करती रहती है सदा, उसके हित की पूर्ति।
जन मानस को मोहती, है मनसिज की मूर्ति ॥७५॥
रमणी की रमणीयता, हाव भाव मुस्कान।
उसका कलित कटाक्ष है, कामदेव की बान ॥७६॥
सत्य बात यह है मनुज, सुख दुःख का है पात्र।
है उसके ही हाथ में, उसका सारा गात्र ॥७७॥
होता है नर का सृजन, देश काल अनुसार।
विद्या शिक्षा जाति कुल, तथा मिले अधिकार ॥७८॥
यदि मान तन मध्य है, दयालुता का बास।
तो होगा किस धर्म मे, उसका नहीं विकाश ॥७९॥

क्यों धनमान सदा फूले, फूले पा प्रिय ओक।
क्यों कलपे कंगाल ही, नित कपाल को ठोंक ॥८०॥
भोजन ही है लोक में, जीवन का आधार।
इसलिये है जगत में, उसका समधिक प्यार ॥८१॥
जाति पतन अवलोक क्यों, उसकी होगी माँख।
जाग गये भी खुल न ही, पाई जिसकी आँख ॥८२॥
हो जाती हैं चित्त की, कामुकता की पूर्ति।
अवलोकन कर राम सी, लोक मोहिनी मूर्ति ॥८३॥
बहे विवाहित हृदय मे, पावन प्रेम प्रवाह।
चित्त में संचित नित रहे, हित उपचित उत्साह ॥८४॥
क्यों न बनायेगी उसे वह, स्वकण्ठ का हार।
जिस पत्नी को है अधिक, पातिव्रत का प्यार ॥८५॥
जीवन धन पर जो सती, सकी स्वजीवन वार।
है असार संसार में, उसका जीवन सार ॥८६॥
विघ्न रहित वसुधा बने, घर घर बढ़े उछाह।
रहे बहु सुखित वर वधू, हो विनोदमय व्याह ॥८७॥
जो प्यारे है क्यों कहे, उनको बचन कठोर।
कोई भी चितचोर की, नहीं समझता चोर ॥८८॥
लोक पूजिता बन्दिता, लसिता कीर्ति कलाप।
सीता का अपहरण था, रावण मन का पाप ॥८९॥
भली नहीं है नीचता, भला न हैं पाखण्ड।
पापी पाता है सदा, निज पापों का दण्ड ॥९०॥
जो दुर्योधन मन नहीं, बनता पातक धाम।
तो न महाभारत सदृश, हो पाता संग्राम ॥९१॥
काम क्रोध के साथ लो, लोभ मोह हंकार।
इन पाँचो से अधिक, मानव मन का प्यार ॥९२॥
अर्जुन जैसे शांति प्रिय, धीर वीर गंभीर।
किन्तु नष्ट नहि हो सकी, उठी ध्वंस की पोर ॥९३॥

सुरसरि सी सरि है कहाँ, मेरु सुमेरु समान।
जन्म भूमि सी भू नहीं, भूमण्डल में आन ॥९४॥

आजीवन उसको गिने, सकल अवनि सिरमौर।
जन्मभूमि जलजात के, बने रहे जन भौंर ॥९५॥

योगी बन उसके लिये, हम साधे सब योग।
सब भोगों से है बड़े, जन्मभूमि के भोग ॥९६॥

भावुक जन के भाल पर, हो भावुकता खौर।
अरसिक पा कर रसिकता, बने रसिक सिर मौर ॥९७॥

रचती है कविता सुधा, सुधा सिक्त अवलेह।
लहता है रस सिद्ध कवि, अजर अमर यशदेह ॥९८॥

मानस अभिनन्दन अमर, नन्दन वन बर कुंज।
है पावन प्रति पक्ति मय, कबि पुंगव यश पुंज ॥९९॥

सुरसरि धारा सी सरस, पूत परम रमणीय।
है कवियों की कल्पना, कल्पलता कमनीय ॥१००॥

श्री रामचरित उपाध्याय

[ब्रज सतसई]

हिन्दी साहित्य में उपाध्याय जी की 'ब्रज सतसई' एक दूसरे ही रूप में अवतरित होती है। भर्तृहरि शतक के समान इसमें शृङ्गार, नीति तथा वैराग्य सम्बन्धी तीन खंडों में ७०० से अधिक दोहे हैं।

उपाध्याय जी हिन्दी के आधुनिक युग के पुराने कवियों में से हैं आपने हजारों दोहे लिखे थे। उन्ही दोहों को रसिक मण्डल प्रयाग ने श्री रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' से सम्पादित करा कर प्रकाशित कराया है। सतसई का रूप देना श्री 'सरस' जी का ही कार्य है।

स्वर्गीय पं० रामचरित उपाध्याय का जन्म सं० १९२९ वि० में गाज़ीपुर से हुआ था।

श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन से उपाध्याय जी ने हिन्दी की बड़ी सेवाएँ की हैं।

'ब्रज सतसई' काव्य-कला से विभूषित ग्रन्थ है। किन्तु कवि ने कलापक्ष का उतना ही ध्यान रक्खा है जहाँ तक उचित है। काव्य के सभी प्रमुख गुण तथा अन्य विशेषताएँ इस ग्रन्थ में वर्तमान हैं।

नवीन भावों की खोज में भी कवि ने अपना सफल प्रयास किया है और उसमें उसे सफलता मिली है।

भाषा यद्यपि ब्रज भाषा है किन्तु कहीं-कहीं अवधी से बुरी तरह प्रभावित प्रतीत होती है। फिर भी भाषा नियंत्रित और सुबोध है।

इनका 'राम चरित चिन्तामणि' नामक एक प्रबन्धकाव्य भी है।

उपाध्याय जी संस्कृत के भी विद्वान थे यही कारण है कि भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों की भरमार है।

उपाध्याय जी ने हिन्दी की बड़ी सेवाएँ की हैं। उनकी 'ब्रज सतसई' हिन्दी साहित्य के लिये उपादेय है और आशा है उसका अच्छा आदर होगा।

[दोहा]

[शृङ्गार सुषमा]

छत्र लगाये धनरिधर, बिहँसि बजावत वेनु।
बसौ हिये हरि हित-सहित, ग्वाल - ग्वालिनि - धेनु ॥१॥
उर लगियत, परियत पगन, हौं ही करियत कान।
मौन गहौ मानौ कही, मैं न गही पिय मान ॥२॥
कीजत इतौ न आतुरी, तजौ चातुरी चाल।
भावत घर रहनो न जौ, क्यौं आवत घर लाल ॥३॥
दुरत न करत दुराव कत, अनत वसे जेहि हेत।
नयन नकारे देत हैं, आप नकारे देत ॥४॥
केतिकहू सिख दीजियत, मन गहि मान सकैन।
होत पराये आपने, वा नैनन मिलि नैन ॥५॥
तजहु सकुच उर निठुर उठु, अजहु तजी नहीं देहु।
नेक नवाजस करहु तौ, एव नवाजस लेतु ॥६॥
प्रन न टरै तव, मम टरैं, प्रान-नाथ ये प्रान।
नभ घेरे आवहिं जलद, कीजे जलद पयान ॥७॥
अलि मिस बोलि बुलाय कछु, हा साहस इतराय।
इतै चितै चट चोरि चित, लली चली यह जाय ॥८॥
करि न दुराव दुरै न किहुँ, देहिं कहे रति रैन।
अलि साने-मद-बैन ये, ये अलसाने नैन ॥९॥
मो तन तकि बतराय कछु, सखि सन सैनन माँहि।
छत से उतरि गई कहूँ, चित ते उतरत नाँहि ॥१०॥
हँसि भौंइन लजि दृगन भनि, अधरन में इठलाय।
करिनी सी हिय-कमल दलि, चली नवेली जाय ॥११॥

४—नकारे=नगाड़े। नकारे=नहीं करना। ६—नवाजस=कृपा। नया यश।
७—जलद=बादल। जलद=शीघ्र।

मानिनि भाव न भीतरी, गोइ सकति मुसकान।
बिनु कारन आदर अधिक, अधिक जनावत मान ॥१२॥
कित चितवत इत नेकु लख, उदित कला ससि दोज।
राजत मिस द्विजरात के, असि कर मनो मनोज ॥१३॥
पबि लगि मरनो औचके, बरुक लिखे बिधि खोट।
पै न लगै किहुं काहु को, अदब दबी दृग-चोट ॥१४॥
आवत ही घर भरि उठ्यो, बतरस लग्यौ न घात।
तदापि मिले दोउन खिले, पूछि दृगनि कुसलात ॥१५॥
घुँघरारो टुटि केस मुख, छहरि छयो छवि देत।
भ्रमत कोकनद भ्रम मनौ, अलि अवली मधु हेत ॥१६॥
पपिहा बारयौ तोहिं पै, हियो-देत गहि नेहु।
हनि पाइन तिहिं ताहु पै, मेघ मोघ अध लेहु ॥१७॥
कटि तनु भरे सुजंघ-जुग, सब तन भरे उमंग।
खिलत जवानी पाइ मनु, खिलत रहत से अंग ॥१८॥
रुकि न सकी आवत बन्यौ, तजि गुरु-जन की भीति।
मोहि करी अति बावरी, खरी रावरी प्रीति ॥१९॥
कढ़ि आये तन सेद कन, पुलकि उठी उहिं काल।
पाती लखि पिय-कर-लिखी, छाती छ्वावत बाल ॥२०॥
सब विधि जो जैवो तुम्हैं, इतौ कपट केहि काज।
लावत उर हरखत हियैं, लावत उर नहिं लाज ॥२१॥
अधमीचे दृग पुलकित लजि, ज्यौं ज्यौं चौंकति बाल।
त्यौं त्यौं मलि मसकत रसिक, गालनि लाल गुलाल ॥२२॥
बिच नासा नग गवन यौं, गुथि नथनी छवि देत।
मनु मथनी मन मथ गही, मन मथिबे कैं हेत ॥२३॥
मिलि पिय सौं घूँघट न करु, सहमि न तू गहि मौन।
लगत सलोनो रूप लखि, सौतिन कै दृग लौन ॥२४॥

१३—असि=तलवार। १४—पवि=वज्र। २०—सेद=पसीना।

रिस-साने दृग दुहुँन के, जदपि जुरे सगुमान।
तीख मान तिहिं छन दुर्‌यो, आई मुख मुसकान ।।२५।।

दृग दोउन के लड़त लखि, ज्यौं ज्यौं बढ़त चबाव।
त्यौं त्यौं रस सरसंत अधिक, नित नव प्रकटत भाव ।।२६।।

लखि लखाइ चख चौह्नि मुख, ठिठकी भई न ठाढ़ि।
लजी भजी बरबस यहैं, लिये जाति जिय काढ़ि ।।२७।।

मीत-मिलन की चाह उर, जदपि बढ़त अति आज।
क्योंहूँ चलन न देत यै, अरी होत अरि लाज ।।२८।।

रंचक नहिं हिचकी हिये, आवत जात निसंक।
लागन चहत न अंक पै, लागन चहत कलङ्क ।।२९।।

केतिक हूँ काँटन घिरी, सुन केतकी प्रवीन।
क्यों हूँ तदपि कलीन के, तो रस तजै अलीन ।।३०।।

तिय ते ललित न कलि कछु, तिहूँ लोक में कीन।
याही ते मनु बिधि बली, बलि त्रिवली रचि दीन ।।३१।।

इतनौं नारो कसि रही, नहिं नेंकहूँ डराइ।
भोरी अतिही छीन कटि, मति वहहू कटि जाय ।।३२।।

पाँखहु मिले न मिलि सकत, अनुचित यह चित दौर।
चकन्चकई निसि किन लखे, सपनेहू इक ठौर ।।३३।।

दिन चारक फेरे फिरौ, मुख चख भौंहन तानि।
भोरी फिरि को हेरि है, कचन, कुचन मुसकानि ।।३४।।

[नीति निचय]

अंनराय तम दिवस-मनि, बाती प्रति हेरम्ब।
ऋद्धि-सिद्धि के सहित प्रभु, होहु मोर अवलम्ब ।।३५।।

प्रभुता पाय न मद-सत्यौ, जो बन काम-विकार।
सो नर वर सन्तत सुखी, नारायन - अवतार ।।३६।।

२६—चबाव=बदनामी। २८—अरि=बैरी। ३२—नारो=नारा।

नारी, गुरु, पितु, मातु, सुत, सचिव, महीपति मीत।
बन्धु, विप्रहूँ दण्डिये, धर्म-विमुख यह नीत ॥३७॥
जब लौं परै न हाथ रिपु, करिये तासु बखान।
मृग-बाँधन-हित व्याध ज्यौं, करत प्रपंची गान ॥३८॥
सुबल-सुमन्त्र-सुकर्म जहँ, जहँ एका-सुविचार।
तहँ सुख सम्पत्ति-जय सदा, उन्नति होति अवार ॥३९॥
तिय-बस पण्डित हू परे, कहा सकत करि नाहि।
प्रान तजे दसरथ तुरत, सुत पठये बन माहि ॥४०॥
तप-बल-गरब न कीजिये, वरु करिये तप नाहि।
गाधि-सुअन लखि मेनका, दौरि गहे गर माहि ॥४१॥
धरम-विमुख, खर, स्वान, अहि, कृपन, कुमीतरु राँड़।
दूरहि ते दस बरजियै, उनमत भडुआ, भाँड़ ॥४२॥
दुर्लभ सो नर जगत में, मानव-कुल-सिरनेत।
जो बिनु मागे ही रहे, जो बिनु माँगे देत ॥४३॥
पतिवरता, अरु पुत्रिणी, पाक-प्रवीन पवित्र।
रूपवती पण्डित तिया, दुरलभ 'राम चरित्र' ॥४४॥
सुख सपनो, दुख दुगुन नित, आँतर दिन उपवासु।
भोगत नरक सदेह सो, गेह कुनारी जासु ॥४५॥
नृप, ज्ञानी, तिय प्रौढ़, रस-काव्य, सिखायो अस्व।
चारहुँ ते जुग चारिहूँ, पैयत सुख सर्वस्व ॥४६॥
नारी-गृह-भूखन-बसन, नूतन रहे बखान।
दास-वैद-मन्त्री-महिप, तन्दुल-पान पुरान ॥४७॥
मरन-हरन सुनि होय जो, पण्डित हू हिय खेद।
तौ ज्ञानी अरु मूढ़ में, कछुक रह्यौ नहि भेद ॥४८॥
गुरु अन्त्यज, ब्राह्मण निपढ़, बूढ़ गृही, यति ज्वान।
रसिक-अधन, तपसी धनी, षट दुख हेतु समान ॥४९॥

४१—गाधि सुअन=विश्वामित्र। ४२—कुमीतरु=कुमित्र।

नहिं कोऊ ऐसो कहूँ, जाको रिपु जग माहिं।
मीन कहा केहिको दुखद, हने जाहिं जल माहिं ॥५०॥
धन उनही को जानिये, जग कीरत जिन कीन।
न तु समान दोऊ अहैं, धनाधीस, धनहीन ॥५१॥
गुन-दुरगुन छिपि सकहिं नहिं, करिये कोटि उपाय।
तैल-विन्दु जलमाहि ज्यौं, तुरत जात उतराय ॥५२॥
केवल गुनही से न जस, चहिये आग-सहाय।
फूलत-फलत न देखिये, महँगो पान बिकाय ॥५३॥
भल-अनभल दोउन किये, जस बड़ेन के हाथ।
बसन बढ़ाइ चुराइ ज्यौं, सुजसी जग जदुनाथ ॥५४॥
मानी दीन न ह्वै फिरै, बरुक प्रान दै खोय।
बिना बुझे ही कबहुँ क्यौं, पावक सीतल होय ॥५५॥
दुःख-सुख, धन-जीवन-मरन, पैये बार करोर।
बीत गयौ जो फिर कबौं, समय न मिलत बहोर ॥५६॥
पण्डित मानी, मूढ़ जह, चुप साधे तहँ चैन।
दादुरगन के बचन सुनि, कढ़त न कोकिल बैन ॥५७॥
कैसी हूँ आपति परै, मीतहिं तजिय न तात।
ग्रहण-समय मुख राहु के, चन्द संग मृग जात ॥५८॥
बिनु फूटे निज जाति के, हानि लह्यो कब कोय।
लोहा काट्यो जात तब, लोह-छिनी जब होय ॥५९॥
तौलौं ही डर विपति सों, जबलौं बिपति सुदूर।
नद में डूबै नाव तौ, पैरे परियत पूर ॥६०॥
कवि, कोविद, केहरि, जलद, साँप, साधु ये सात।
जहैं जाहिं इनके लिये, तहैं गेह बनि जात ॥६१॥
सज्जन निन्दा करत क्यौं, करु न तासु गुन-गान।
कामधेनु को छीर तजि, मूढ़ न करु मद-पान ॥६२॥

५९—लोह छिनी=लोहे की छेनी।

बुधि विवेक को फल यहै, कीजै काज विचार।
सब पुरुषारथ तें बड़ो, करियै पर-उपकार ॥६३॥
ज्यौं त्यौं दबि काटिय बिपति, समय पाइ बलधार।
पाँडु-तनय केहि बिधि कियौ, कौरव दल संहार ॥६४॥
दुरदिन बिन पूरो भये को, बरबस सुख लेत।
बन तैं घर सिय आइ कै, चली बहुरि वनहेत ॥६५॥
समुझि परत नहिं मरम कछु, करम - कुफेर - सुफेर।
मच्छराज-गृह पतिन जुत, बनी दौपदी चेर ॥६६॥
माटीचाखत सूम लखि, लियौ तनय मुख चूम।
बिहँसि कह्यो मन माँहि निज, सुत मोहूँ तैं सूम ॥६७॥
बरु सपूत एकै भलो, सौ कपूत भल नाहिं।
कौरव-पाँडव को अजौं, जस अपजस जग माँहि ॥६८॥
धन, धरती, जीवन, जगत, चंचल सभी विचारि।
करु कीरति मन छानि कै, सुजत सकै को टारि ॥६९॥
उर मैं धरहिं न विज्ञजन, सुनि खल के कटु बैन।
ढरकि जात जल बिन्दु ज्यौं, बारिज पात थिरै न ॥७०॥
थिर चित उद्यम कीजियै, अकुलाये अति हानि।
करै जुगति जौ तौ कबौं, पाथर होवै पानि ॥७१॥
निज भुज बल जग जीतजो, सोई नृप-सिरताज।
लखु बिचारि मृगराज कहँ, कौन देत है राज ॥७२॥

[भक्ति वैराग्य]

उन्मादक मद तैं अधिक, लहि विष विषय खुसाल।
दृग रहते हैं आँधरो, धिग धिग जोवन काल ॥७३॥
जनि भरमैं घर मैं पर्यौ, अपनो भलो विचारि।
सकल जगत-जंजाल तजि, भजु जुग चरन मुरारि ॥७४॥
पर्व वहै तीरथ वहै, वहै त्रिदेव-निकेत।
ज्यौं त्यौं जहँ मुख तै कढ़ै, राम-नाम सुख हेत ॥७५॥

नहिं आश्रम, नहिं वरन, नहिं जाति अवस्था नाहिं।
सर्वहिं सुखद सम भाव तें, राम-नाम जग माँहिं ॥७६॥
धन-धरनी, घरनी, तनय, अबसि छुटेंगे तोर।
यह बिचारि मन मूढ़ क्यौं, भजत न नन्दकिशोर ॥७७॥
का कासी का द्वारिका, कहा अयोध्या धाम।
तीर्थराज तहँ जानियें, जहाँ राम कौ नाम ॥७८॥
अपने स्वारथ सब लगे, कों वैरी को मीत।
यह बिचारि मन कीजियै, सीता पति सों प्रीत ॥७९॥
अपनावत अति अधम हूँ, सरनागत हरि हेर।
सुने न सपनेहूँ कहूँ, दियौ काहु प्रभु फेर ॥८०॥
चकई चाहति रविहिं ज्यौं, चन्दहिं चहत चकोर।
त्यौं चाहैगो मन कबै, तू नित नन्द किशोर ॥८१॥
करै कोटि कोऊ जतन, नसै न करम अनन्त।
राम-कृपा सोऊ सुलभ, समुझहिं यह मत संत ॥८२॥
विनय, सुसंगति, सुमति हिय, दया जाति ये चारि।
मिलहिं न कछु संदेह तिहिं, आपुहिं आइ मुरारि ॥८३॥
संछेपहि सुनि लेत यह, निगमागम को उक्त।
जाको कुछ इच्छा नहीं, सोजन जीवन मुक्त ॥८४॥
दीन-राज मो सम न कोउ, तों सौं दीन-निवाज।
जुरी जोड़ भल आइकै, को जीतै रघुराज ॥८५॥
जोग-जुगति नहि चाहिये, नहिं जप-तप-व्रत-नेम।
सबै सिद्ध ह्वै जाहिं जो, हिये राम-पद-प्रेम ॥८६॥
बुधि नहि, बल नहि, विभव नांहे, बुझौं न ब्रह्म-विलास।
पतित-नृपिति हौं मोहि है, राम रावरी आस ॥८७॥
प्रेमांजलि दै नाथ मैं, माँगत बार करोरि।
क्यौं हूँ ढुरकि परो रहौं, राम रावरी पौरि ॥८८॥
तू मति मारै काँह कौ, तोहिं सके को मारि।
सुधि राखत हिय माहि नित, निज जग जानि मुरारि ॥८९॥

बल विद्या वैभव वरन, इन तैं चलै न काम।
परखि यहै दृढ़ करि लियौ, प्रेम-पियासे राम ॥९०॥

स्वारथ लगि संव कहँ सबै, परसंसहिं अनुरागि।
तियमुख चूमत चंद कहि, मरे देत मुख आगि ॥९१॥

सपनेहु चहिय न मुक्ति-पद, नहिं सुर-जुवति-विलास।
है केवल मेरे हियँ, राम-नाम-जल-प्यास ॥९२॥

कौतुक बस तिसु, काम बस, युवा, लोभ-बल वृद्ध।
प्रेम विवस रघुनंस मनि, साखी सबरी गिद्ध ॥९३॥

प्रात भयौ, सन्ध्या भई, वीती निसि फिर प्रात।
यतिबिधि छीजत आयु है, काहुन जान्यौं जात ॥९४॥

गुरु कीन्हें को फल कहा, जो न न मिट्यो संदेह।
छतरी धारै सीस क्यौं, जी जल भीजे देह ॥९५॥

निरधन, दीन, मलीन अति, गर्व सहित धनवन्त।
सदा सुखी विचरहिं महीं, लहिं सन्तोषहिं सन्त ॥९६॥

राम मातु, पितु राम, गुरु, राम, धरा धन धाम।
जोग छेम ममराम हैं, नहिं दूजे तें काम ॥९७॥

सब साधन तजि राम जपु, प्रीति-प्रतीति समेत।
मन अनमन क्यौं होत तैं, सुखंद सिखावन देत ॥९८॥

ब्रज की रज पै लोटिकैं, तरनि तनूजा तीर।
कब देवन ललचाइ है, मेरौ अधम सरीर ॥९९॥

बर-दायक बर दीजियै, अभय कीजियै राम।
अपनौ गेह बनाइयै, प्रभु मेरे हिय धाम ॥१००॥

———

हरि प्रसाद द्विवेदी

[वियोगी हरि]

आधुनिक काल के दोहाकारों में 'वीर सतसई' की रचना करके 'वियोगी हरि' जी ने अच्छा स्थान प्राप्त किया है। इस उत्कृष्ट रचना पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने १२००=०० रु० का मंगलाप्रसाद-पारितोषिक भी प्रदान कर कवि को पुरस्कृत और सम्मानित किया है।

'वियोगी हरि' जी का जन्म चैत्र शुक्ल रामनवमी संवत् १९५३ वि० में बुन्देल खण्ड के छतरपुर राज्य में हुआ था। इनके पिता पं० बल्देव प्रसाद द्विवेदी एक यशस्वी शक्ति थे। यह कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं। इनका अध्ययन इनके नाना पं० अच्छे लाल तिवारी के यहाँ हुआ। क्योंकि बाल्यावस्था में ही इनके पिता का देहान्त हो गया था। इन्होंने संस्कृत, हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी का भी अध्ययन किया। सन् १९१५ में इन्होंने मैट्रीकुलेशन परीक्षा उत्तीर्ण की।

'वियोगी हरि' जी ब्रजभाषा के श्रेष्ट कवि, लेखक और आलोचक हैं। भक्तिभाव पूर्ण प्रेम सम्बन्धी रचनाएँ आप के अध्ययन और पाण्डित्य का परिचय देती हैं। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित 'सम्मेलन पत्रिका' का सम्पादन करके आप ने हिन्दी की ठोस सेवा की है। हरिजन आन्दोलन में आपने सक्रिय रूप से भाग लेकर देश के राष्ट्रीय जीवन में विशेष महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस दिशा में आप पूर्ण गाँधीवादी हैं। आप को अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति होने का भी गौरव प्राप्त हो चुका है।

'वीर सतसई' की रचना करके 'वियोगी हरि' जी यश के ही भाजन नहीं हुए, वरन् उसके प्रणयन से आपने सतसई परम्परा का निर्वाह करते हुए ब्रज-भाषा काव्य की परम्परा के जीवन को स्थिर करने का भी स्तुत्य कार्य किया है।

व्रजभाषा की श्रृङ्गारमयी तन्द्रा से ऊबकर कवि ने उसे कदाचित् आदर्श वादिता का देश की परिस्थिति को देखकर जामा पहनाया है। साथ ही साथ साहित्यिकता की छाप रखते हुए भारत को इस गिरी हुई दशा से उठाकर उसे उठने के लिए ललकारते हुए भारतीय-प्राचीन गौरव और संस्कृति का स्मरण दिलाते हुए, उत्तेजना और संवर्द्धन की दिशा की ओर जो संकेत किया है वह सराहनीय है।

वीर सतसई रचकर कवि नें हिन्दी-साहित्य-सतसई-परम्परा में एक नये अध्याय की सृष्टि की है। देश, जाति, नेता, प्राचीन, नवीन और समाज की कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसे 'वीर सतसई' वीरत्व के साथ पाठक के हृदय में में स्थान न कराती हो। राजस्थान की वीर गाथायें एक-एक दोहे में ऐसी सूझ-बूझ के साथ भरी गई हैं कि पढ़-सुनकर भुजाएँ फड़क उठती हैं और मानो कानों में किसी ने जुझारु कड़खे भर दिये हो। वीर नारियों की महिमामयी मूर्ति, पुरुष का पुरुषत्व और देश की दयनीय दशा साथ ही भारतीय वातावरण का आधुनिक चित्र आप को इसमें स्थान-स्थान पर मिलेगा।

सतसई में ओजगुण प्रचुर मात्रा में विराजमान है। साथ ही साथ माधुर्य और प्रसाद की भी इतनी अच्छी व्यञ्जना है कि एक-एक दोहा आप पढ़ते चले जायँ हृदय आनन्द और भावनाओं से भर कर प्रफुल्लित हो जाता है। ब्रज भाषा का निखरा रूप सर्वत्र दिखाई देता है। भाषा की साहित्यिकता और एक रूपता का गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।

कहाँ तक कहें 'वियोगी हरि' जी की यह रचना आधुनिक युग के श्रेष्ठ साहित्य सर्जना में एक है। सतसई रचकर कवि ने काव्य और अपने को अमर कर दिया है। यह हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि और इसके दोहे सोने के टकसाली सिक्के हैं।

❀

[दोहा]

जयति कंस-करि-केहरी, मधु-रिपु केशी-काल।
कालिय-मद-मर्दन हरे, केशव कृष्ण कृपाल ॥ १ ॥

आदि मध्य अबसान हूँ, जा में उदित उछाह।
सुरस वीर इकरससदा, सुभग सर्व रस-नाह ॥ २ ॥

खल-खण्डन मण्डन-सुजन, सरल सुहृद स विवेक।
गुण-गँभीर रण-सूरमा, मिलतु लाख महँ एक ॥ ३ ॥

रण-थल मूर्च्छित स्वामि के, लीनें प्राण बचाय।
गीधनु निज तनु-माँसु दै, धन्य संयमा राय ॥ ४ ॥

सुन्दर सत्य-सरोज सुचि, बिगस्यो धर्म-तड़ाग।
सुरभित चहुँ हरिचन्द को, जुग-जुग पुन्य-पराग ॥ ५ ॥

इत गाँधी उत सत्य दोउ, मिलै परस्पर चाहि।
यह छाँड़त नहिं ताहि त्यों, वह छाँड़त नहिं याहि ॥ ६ ॥

१—कंस-करि-केहरी=कंस रूपी हाथी के लिए सिंह। मधु-रिपु=मधु नामक दैत्य के शत्रु। केशी काल=केशी नामक राक्षस को मारने वाले। कालिय-मद-मर्दन=कालिया नाग को नाथने वाले।

२—आदि मध्य अवसान हूँ=प्रारम्भ बीच और अन्त में। उछाह=उत्साह।

३—मण्डन-सुजन=सज्जनों का आदर करने वाले। रसा-सूरमा=युद्ध वीर।

४—संयमराय—पृथ्वीराज के स्वामिभक्त सामन्त थे। जिन्होंने युद्ध-क्षेत्र में पृथ्वीराज को मूर्छित दशा में देखकर और गिद्धों को उनकी आँख निकाले और मांस खाने को प्रस्तुत समझ कर, अपने को अशक्त दशा में देखकर स्वयं अपना मांस खड्ग से काट-काटकर सिद्धों को खिला दिया और मूर्छित पृथ्वी के प्राण बचाकर अपने को बलिदान कर दिया।

५—विगस्यो=विकसित। सुरभित=सुगन्धित। जुग-जुग=सदा। ६—चाहि=प्रेम।

धर्मवीर हरदौल जू, अजहुँ तुम्हारे गीत।
ह्याँ घर घर तिय गावतीं, समुझि सनातन रीति ॥ ७ ॥
दयानन्द आरज पथिक, यतिवर श्रद्धानन्द।
जगिहै तुम्हरे रुधिर तें, जुग-जुग धर्म अमन्द ॥ ८ ॥
साध्यो सहज सुप्रेम-व्रत, चढ़ि खाँड़े की धार।
बिरह बीर-ब्रज-बाल हीं, रसिक - मेंढ़ - रखवार ॥ ९ ॥
सुरतरु लै कीजै कहा, अरु चिन्तामणि-ढेरु।
इक दधीचि की अस्थि पै, वारिय कोटि सुमेरु ॥१०॥
कूकरु उदरु खलाय कैं, घर घर चाँटत चून।
रहो रहत सद खून सों, नित नाहर - नाखून ॥११॥
पैरि प्रार असि धार कै, नाखि युद्ध - नद - मीर।
भेदि भानु मण्डलहिं अब, चल्यौ कहाँ रणधीर ॥१२॥

७–हरदौल=बुन्देलखण्डान्तर्गत औरछा के राजा जुझार सिंह के भाई हरदौल जी से राज्य कर्मचारी डाह रखते थे। उन्होंने जुझार सिंह से हरदौल की और राजमहिषी की झूठे अनुचित प्रेम की बातें कहीं। राजमहिषी हरदौल जी को पुत्रवत् स्नेह करती थी। इस पर जुझार सिंह ने राजमहिषी के हाथों उनके सतीत्व के परीक्षार्थ हरदौल जी को विष दिया। इस बिष को हरदौल जी जानते हुए पी गए और अपने प्राण दिये। इनके गीत अब भी बुन्देल खण्ड में शुभ अवसरों पर गाये जाते हैं। जगह-जगह चबूतरे बने हैं जहाँ इनके नाम और सत्य प्रेम की पूजा अब भी होती है।

८–दयानन्द=स्वामी दयानन्द, आर्यसमाज के प्रवर्तक, जिनकी मृत्यु विष देने से हुई थी। आरज-पथिक=आर्य मुसाफिर धर्मवीर लेखराम जो एक मुसलमान द्वारा हत हुए थे। श्रद्धानन्द=आर्य समाज के नेता और देशभक्त जिन्हें अब्दुल रसीद ने पिस्तौल से मारा था।

९–रसिक-मेंड़-रखवार=रसिकों की सीमा की रक्षा करने वाले।

१०–सुरतरु=कल्पवृक्ष। अस्थि=हड्डी।

११–सद-खून=ताजे खून। नाहर-नाखून=सिंह के नख। १२–नाखि=मार करके।

औसरु आवत प्रान पै, खेलि जाय गहि टेक।
लाखनु बीच सराहियै, प्रकृति बीर सो एक ॥१३॥

सीस हथेरी पर धरें, ठोकत भुज मजबूत।
छिति छात्रनी गर्भ तें, जनमतु सूर सपूत ॥१४॥

लावै बाजी प्रान की, चढ़ि कृपान की धार।
सोई क्षत्रिय-धर्म की, मेंड़ रखावन हार ॥१५॥

लोहित लथ-पथ देखि कैं, खण्ड-खण्ड तन त्रान।
निकसत हुलसत युद्ध में, बड़ भागिनु के प्रान ॥१३॥

बसत सदा ता भूमि पै, तीरथ लाख-करोर।
लरत-मरत जहँ बाँकुरे, बिरुझि बीर बर जोर ॥१७॥

नमो-नमो कुरु-खेत तुय, महिमा अकथ अनूप।
कण-कण तेरो लेखिमतु, सहस-तीर्थ-प्रतिरूप ॥१८॥

एक ओर स्वाधीनता, सीसु दूसरी ओर।
जो दो में भावै तुम्हें, भरि मो लेहु-अँकोर ॥१९॥

किम्मत हिम्मत कौ नही, नहिं बल-बीरज-तोल।
आँक्यो गयौ न आनु लौं, बीर मौलि कौ मोल ॥२०॥

मौलि जटा धनु बान कर, मुख प्रसेदु अंग श्रान्त।
बसौ बिजय राघव हिये, किये रूप रण-क्राँत ॥२१॥

१३—औसरु=अवसर। प्रकृत बीर=स्वभावतः बीर।
१४—हथेरी=हथेली। छिति=पृथ्वी। १५—लावै=लगावे। मेंड़=सीमा, हद।
१६—लोहित=खून से भरे हुए। १७—बिरुझि=बिरझा कर। बरजोर=जबरन।
१८—नमो-नमो=बार-बार नमस्कार है। कुरुखेत=कुरुक्षेत्र, वह स्थान जहाँ महाभारत हुआ था। १९—भावै=अच्छा लगे। अँकोर=गोद।
२०—किम्मत=कीमत, मूल्य। आँक्योगयो=मूल्य लगाया गया। बीर-मौलि=बीरों के सिर।
२१—विजयी राम की मूर्ति का दिग्दर्शन कवि ने कराया है।

लै बल-विक्रम-बीन कवि, किन छेड़त वह तान।
उठें डोलि जेहिं सुनत ही, धरा मेरु ससि भान ॥२२॥
फिर दोसी किन जाय दुरि, देखत ही कवि चन्द।
जासु प्रभा लखि परि गयो, कवि होमर हूँ मन्द ॥२३॥
सिवा-सुजस - सरसिज - सुरस, मधुकर मत्त अनन्य।
रस-भूषण-भूषण सुकवि, भूषण भूषण धन्य ॥२४॥
पराधीन सबु देखियतु, बल-बीरज तें हीन।
या कानन में केहरी, इक तूँही स्वाधीन ॥२५॥
जहँ नृत्यति नित चंडिका, ताँडव-नृत्य प्रचण्ड।
कुसुम तीर तहँ काम के, होत आप सत-खण्ड ॥२६॥
खल-खण्डन मण्डन-सुजन, अरि बिहण्ड बरिबण्ड।
सोहत सिन्धुर-मुण्ड सै, सुभट - चण्ड - भुजदण्ड ॥२७॥
सुभट-नयन अंगारु पै, अचरजु एकु लखातु।
ज्यौं ज्यौं परतु उमाह-जलु, त्यौं-त्यौं धँधकत जातु ॥२८॥
प्रलय - कारिनी तुव छता, लत लपाति तरवार।
खात-खात खल-सीसु जो, लई न अजहुँ उकार ॥२९॥
देखत ही वह कुटिल धनु, कुटिल सरल ह्वै जात।
त्यों अरि अथिर थिरात, ज्यौं विषम बान लहरात ॥३०॥

२२—किन=क्यों नहीं। धरा=पृथ्वी।

२३—फिरदोसी=शाहनामा का रचयिता प्रसिद्ध फारसी कवि। होमर=प्रसिद्ध इलियड काव्य का रचयिता। चन्द=पृथ्वीराज रासो महाकाव्य के रचयिता।

२४—भूषण=महाकवि भूषण। २५—केहरी=सिंह।

२६—कुसुमतीर=पुष्प वाण। २७—सिंधुर-सुंड=हाथी के सूंड।

२८—सुभट-नयन-अंगारु=वीर के अँगारे के समान नेत्र।

२९—छता=बुंदेलखण्ड के प्रसिद्ध वीर महाराज छत्रसाल।

३०—धनु=धनुष। अरि=वैरी।

वह शकुन्तला लाड़िलों, कब तें माँगत रोय।
खड्ग-खिलौना खेलिबे, अबहिं लाय दै मोय ॥३१॥
सेनापति सत सहसहूँ, सकैं जाहि नहिं जीति।
ताहि स्वबस करि लेति है, सहज प्रीति की रीति ॥३२॥
लोटि लोटि जापै भए, धूरि-धूसरित आज।
वत्स तुम्हारे हाथ है, ता धरती की लाज ॥३३॥
सुदिनु ज्योतिषी ते कहा, सोधवावत रण-हेत।
चढ़ि आये वै दुर्ग पै, तुव इत परे अचेत ॥३४॥
फूंकत पीं पीं बासुरी, रह्यो न यामें स्वादु।
है त्रिलोक में भरि गयो, संगम संख सुनादु ॥३५॥
कलपि कलप भूखन मरति, तुव सन्तति अभिराम।
कहा जानि धार्‌यो जननि, अन्नपूरणा नाम ॥३६॥
जौ न घालि घननाद कों, यमपुर आजु पठाउँ।
हौं रामानुज मुख कबौं, जियत न औध दिखाउँ ॥३७॥
जौ लगि मूरि न लाउँ मैं, मारुति तौलगि तात।
करि सुधि मो सिसु केलि की, मुख न खोलियौ प्रात ॥३८॥
प्रण कीनों बहु बीर जग, टैकहु गही अनेक।
पै भीषम ब्रत आजु लौं, है भीषम व्रत एक ॥३९॥
मूंछ न तौ लौं ऐंठिहौं, हौं प्रताप भुज-हीन।
करि पायौ जौ लौं न मैं, गढ़ चित्तौर स्वाधीन ॥४०॥

३१—शकुन्तला-लाड़िलो=भरत। ३२—स्वबस=अपने वश में।
३३—धूरिधूसरित=धूल में भरना।
३४—सुदिनु=अच्छा दिन। सोधवावत=विचार करवाते हो।
३५—संगर-संख-सुनादु=युद्ध का सुन्दर बजने वाला शंख।
३६—कलपि-कलपि=दु:खित होकर। संतति=संतान।
३७—लक्ष्मण प्रतिज्ञा वर्णन। ३८—हनुमान जी की वीरोक्ति।
३९—भीषम=कठिन। भीषम=भीष्म पितामह। ४०—राणाप्रताप की प्रतिज्ञा।

मिलियौ तहँ परखति प्रिये, मिलिहौं सरबसु बारि।
बिसिख हारु हौं पैन्हि, तुम ज्वालमाल उर धारि ॥४१॥

चली चमाचम चोप सौं, चकचौंधिनि तरवार।
पटी लोथ पै लोथ त्यौं, बही रक्त की धार ॥४२॥

रमा भारती कालिका, करति कलोल असेस।
बिलसति बोधति संहरति, जहँ सोई मम देस ॥४३॥

मिली हमैं थर्मोपिली, ठौर ठौर चहूँ पास।
लेखिय राजस्थान में, लाखन ल्यूनीडास ॥४४॥

मनु मेरो चित्तौर मैं, लखि तेरो जस थम्भ।
भ्रमतु हँसतु रोवतु अहो, सुभठ मौलि नृप कुम्भ ॥४५॥

सौर्य सरित सिंचित जहाँ, जूझन खेत हमेस।
मारवाड़ अस देस कों, कहत मूढ़ महदेस ॥४६॥

अहो सुभट तोनित सन्यौ, दृढ़ब्रत हल्दी घाट।
अजहूँ हठी प्रताप की, जोहति ठाढ़ो बाट ॥४७॥

४१–विसिख-हारु=वाणों का हार। ज्वाल माल=ज्वाला की माला, जौहर व्रत।

४२–लोथ-शव।

४३–बिलसति=विलास करती है। बोधति=ज्ञान देती है। संहरति=नाश करती है।

४४–थर्मोपिली=यूनान की प्रसिद्ध घाटी जहाँ ईरानियों से युद्ध हुआ। ल्यूनीडास=यूनान का प्रसिद्ध वीर जिसने थर्मोपिली में लड़कर प्राण दिये।

४५–जस-थंभ=कीर्ति स्तम्भ, जिसे महाराणा कुम्भ ने वि० सं० १४९७ से मालवा के बादशाह महमूद शाह खिलजी को प्रथम बार परास्त करके उसकी स्मृति में अपने इष्टदेव विष्णु के निमित्त बनवाया था। इसकी प्रतिष्ठा वि० सं० १५०५ माघ बदी १० को हुई थी। भारत के दर्शनीय वस्तुओं में यह स्तम्भ भी है।

४६–मरुदेस=मरुस्थल रेगिस्थान।

४७–हल्दीघाट=मेवाड़ की प्रसिद्ध युद्धस्थली जहाँ अकबर की सेना और राणा प्रताप में युद्ध हुआ था।

इतहूँ तौ रण चन्द्रिका, वैसोइ खेलो खेल।
राजथान से घटि कहा, हमरो खण्ड बुँदेल ॥४८॥

पराधीनता दुख भरी, कटति न काटे रात।
हा! स्वतन्त्रता कौ कबै, ह्वैं है पुण्य प्रभात ॥४९॥

पर भाषा पर भाव पर, भूषन पर परिधान।
पराधीन जन की अहैं, यही पूर्ण पहिचान ॥५०॥

निज भाषा निज भाव निज, असन-बसन निज चाल।
तजि परता निजता गहूँ, यह लिखियौ बिधि भाल ॥५१॥

पराधीनु केहि काम कौ, जो सुर पति सम होय।
सतत सुखी स्वाधीन ही, धनि जगती तल कोय ॥५२॥

सिव विरंचि हरि लोकहूँ, विपति सुनावै राय।
पै स्वदेस-बिद्रोहि को, सरनु न दैहै कोय ॥५३॥

मेघनाथ महितल गिर्‌यो, सुनि मारुति-हुँकार।
कहूं तूह कहुं धनु पर्‌यो, कहुं कृपान, कहुं ढार ॥५४॥

गहि मेरो कर रुकमिनी, मति काँपै घबराय।
दूंगो प्रति पच्छीनु के, पच्छनु काटि गिराय ॥५५॥

धन्य उत्तरा-उर-धनी, धन्य सुभद्रा-नन्द।
धनि भारत-भट अग्रनी, पार्थ - पयोनिधि - चन्द ॥५६॥

रहौ न केते पाण्डु-सुत, बुधि - बल - बिक्रम - सीम।
द्रौपदि-वेनी-बाँधिबो, जानतु पै इक भीम ॥५७॥

४८—राजथान=राजपूताना। खंड बुंदेल=बुन्देल खण्ड।

४९—प्रभात=सवेरा। ५०—पर परिधान=दूसरे के वस्त्र।

५१—असन=वसन=भोजन और वस्त्र। ५२—सुरपति=इन्द्र।

५३—शिव विरंचि हरि=शिव, ब्रह्मा और विष्णु।

५४—मारुति=हनुमान। तून=तूणीर। ढार=ढाल। ५५—प्रतिपच्छीनु=प्रतिद्वन्दियों।

५६—सुभद्रा नन्द=अभिमन्यु। ५७—द्रौपदि-वेनी=द्रौपदी की वेणी।

गई न धँसि पाताल तूँ, लखि द्रौपदि - पट - हीन।
धिक दिल्ली दुरभागिनी, दिन-दिन-दीन अधीन ॥५८॥
दियो उलटि साम्राज्य तैं, करि अशक्य हू शक्य।
नीति-बीरता में तुहीं, कुशल एक चाणक्य ॥५९॥
जासु समर हुंकार तें, काँपतु विश्व विराट।
सेल्यूकस - करि - केहरी, जयतु गुप्त सम्राट ॥६०॥
धनि गोरा यह साहसी, धँसी साँग हिय-पार।
बाँधि आँत पुनि तेग लै, भयो तुरंग असवार ॥६१॥
अलादीन-दल दारिबे, बद्दलु बीरु बलन्द।
मेरे मत मेवाड़ में, प्रगट्यो - पारथ - नन्द ॥६२॥
वह चित्तौर की पद्मिनी, किमि पेहौ सुलतान।
कब सिंहिनि अधरानु कौ, कियौ स्वान मधु-पान ॥६३॥
क्यों न धारियै सीस पै, वह जौहर की राख।
भव-तनु-भूषन भसम तें, जो पुनीत गुन लाख ॥६४॥
जगत जाहि खोजत फिरै, सो स्वतन्त्रता आप।
बिकल तोहिं हेरह अजौं, राणा निठुर प्रताप ॥६५॥
प्राण-प्रिया कौ सीसु लै, परम प्रेम उपहार।
चल्यो हुलसि रणमंत्र ह्वै, चूड़ावत सरदारु ॥६६॥

५८—दुरभागिनी=बुरे भाग्यवाली। ५९—चाणक्य=प्रसिद्ध नीतिज्ञ, अमात्य चाणक्य।
६०—सिल्यु-कस-करि-केहरि=सिल्यूकस रूपी हाथी को सिंह के समक्ष।
६१—तुरंग=घोड़ा। ६२—दारिबे=दलने के लिए। पारथ-नन्द=अभिमन्यु।
६३—सिहिनि-अधरानु=सिहिनी के अधर। स्वान=कुत्ता।
६४—भव-तनु-भूषन=शिव जी के शरीर का भूषण अर्थात राख।
६५—प्रताप=राणाप्रताप।
६६—चूड़ावत सरदार की रानी ने पति की रानी ने अपने पति को रणक्षेत्र में जाते हुए हिचकिचाते देखकर अपना सर काटकर पति के पास भेज दिया।

रखी तुहीं सरजा शिवा, दलित हिन्द की लाज।
निरवलंब हिन्दून को, तूंही भयो जहाज ॥६७॥
छत्रसाल नृप नामु तुवं, मंगल - मोद - निधान।
सुमिरि जाहि अजहूँ वनिक, खोलत प्रात दुकान ॥६८॥
असि-व्रत धारयो धर्म पै, उमगि उधारयो हिन्द।
किए सिक्ख तें सिंह सब, धनि-धलि गुरुगोविन्द ॥६९॥
माथ रहौ वा न रहौ, तजैं न सत्य अकाल।
कहत कहत ही चुनि गए, धनि गुरुगोविद-लाल ॥७०॥
दलौ त्रिशूल त्रिशूल धर, त्रिभुवन अलयंकारि।
हर त्रयम्बक त्रैलोक्य-पर, त्रिदश-ईश त्रिपुरारि ॥७१॥
धनि दुर्गा राठौर तूं, दल्यौ मुगल-दल-दाप।
लखियत मरुथल पै अजौं, तुव निजन्यारी छाप ॥७२॥
भावतु भारत-भाल की, तितल तिलक हीं एक।
व्यक्त भयौ जातें सदा, शक्ति - भक्ति - उद्रेक ॥७३॥
जुग - जुग अकह - कहानियाँ, कहिहै कवि - कुल - गाय।
धनि भारत-भट-नारियाँ, रह्यो सुजस चहुँ छाय ॥७४॥
धारि पीउ-भुज-माल तब, बिलस्यो नेह रसाल।
अव हौं बीरा धारिहौं, समर शत्रु-सिर-माल ॥७५॥

६७–निरवलंव=अवलंब रहित। ६८–वनिक=वनिया।

६९–आस-व्रत=तलवार का व्रत।

७०–गुरुगोविंद लाल—गुरुगोविन्द सिंह के वीरपुत्र जोरावर सिंह और फतेह सिंह जो ९ व ७ वर्ष के थे। ७१–शिव जी की स्तुति।

७२–दुर्गा राठौर=राठौर दुर्गादास। ७३–तिलक=लोकमान्य बालगंगाधर तिलक।

७४–अकह-कहानियाँ=अकथ कहानियाँ।

७५–बीरा=मेवाड़ के महाराणा उदय सिंह की उपपत्नी जिसने बिलास मग्न महाराणा को अकबर के कैद से छुड़ाकर अपनी वीरता और अद्भुत पराक्रम से मुगल सेना को परास्त किया था।

निज प्रिय लाल कटाय जो, प्रभु-सिसु लियो बचाय ।
क्यों न होय मेवाड़ में, पूजित पन्ना धाय ॥७६॥
धन्य सती दुर्गावती, करि गढ़ मण्डल राज ।
रखी गोंड़वानैं तुहीं, खड़ग-धर्म की लाज ॥७७॥
मुगलनु पै झपटी मनो, रण सिंहिनि तजि चाँद ।
अकबर-मद-मर्द्दनु कियो, धनि सुलताना माँद ॥७८॥
भई प्रगटि रण-चण्डिका, गढ़ झाँसी परतच्छ ।
सुभट सँहारे लच्छमी, लच्छ लच्छ करि लच्छ ॥७९॥
नहिं यामें अचरजु कछू, नाहिन नीति-अनीति ।
हँसत सदा खल सुजन पै, नई न कछु यह रीति ॥८०॥
कवच कहा ए धारिहैं, तचीकीले मृदुगात ।
सुमन हार के भार ते, तीन-तीन बल खात ॥८१॥
अब नख-शिख-सिङ्गार में, कवि-जन कछु रस नाहिं ।
जूठन चाटत तुम तऊ, मिली कूकुर-कुल माहिं ॥८२॥
भली नाथ लीला रची, भलो अलाप्यो राग ।
नर ओढ़ी सिर ओढ़नी, नारिन बाँधी पाग ॥८३॥

७६—लाल=पुत्र । प्रभु=सिसु मालिक के पुत्र ।

७७—दुर्गावती=गढ़ माण्डले की रानी और चन्देल पुत्री जिसने अकबर की सेना के छक्के छुड़ा दिये और हारने पर आत्म हत्या कर ली ।

७८—सुलताना चाँद=अहमद नगर के राजा की पुत्री और बीजापुर की रानी जिसने मुगल सेना को मार भगाया था ।

७९—लच्छमी=झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई जो १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध वीरता से लड़ी ।

८०—अचरजु=आश्चर्य । खल दुष्ट । सुजन=सज्जन ।

८१—सुमनहार=फूलों के हार । तीन-तीन-बल खात=कमर लचक जाती है ।

८२—नख-शिख-सिङ्गार=नख-शिख वर्णन और शृङ्गार रस में ।

८३—पाग=पगिया, साफा, बीरता का पहनावा ।

रखी तुहीं सरजा शिवा, दलित हिन्द की लाज।
निरवलंब हिन्दून को, तूँही भयो जहाज ॥६७॥
छत्रसाल नृप नामु तुवं, मंगल - मोद - निधान।
सुमिरि जाहि अजहूँ बनिक, खोलत प्रात दुकान ॥६८॥
असि-व्रत धारयो धर्म पै, उमगि उधारयो हिन्द।
किए सिक्ख तें सिंह सब, धनि-धनि गुरुगोविन्द ॥६९॥
माथ रहौ वा न रहौ, तजैं न सत्य अकाल।
कहत कहत ही चुनि गए, धनि गुरुगोविंद-लाल ॥७०॥
दलौ त्रिशूल त्रिशूल धर, त्रिभुवन अलयंकारि।
हर त्रयम्बक त्रैलोक्य-पर, त्रिदश-ईश त्रिपुरारि ॥७१॥
धनि दुर्गा राठौर तूँ, दल्यौ मुगल-दल-दाप।
लखियत मरुथल पै अजौं, तुव निजन्यारी छाप ॥७२॥
भावतु भारत-भाल की, तितल तिलक हीं एक।
व्यक्त भयौ जातें सदा, शक्ति - भक्ति - उद्रेक ॥७३॥
जुग - जुग अकह - कहानियाँ, कहिहै कवि - कुल - गाय।
धनि भारत-भट-नारियाँ, रह्यो सुजस चहुँ छाय ॥७४॥
धारि पीउ-भुज-माल तब, बिलस्यो नेह रसाल।
अव हौं बीरा धारिहौं, समर शत्रु-सिर-माल ॥७५॥

६७—निरवलंव=अवलंब रहित। ६८—बनिक=बनिया।

६९—आस-व्रत=तलवार का व्रत।

७०—गुरुगोविंद लाल—गुरुगोविन्द सिंह के वीरपुत्र जोरावर सिंह और फतेह सिंह जो ९ व ७ वर्ष के थे। ७१—शिव जी की स्तुति।

७२—दुर्गा राठौर=राठौर दुर्गादास। ७३—तिलक=लोकमान्य वालगंगाधर तिलक।

७४—अकह-कहानियाँ=अकथ कहानियाँ।

७५—बीरा=मेवाड़ के महाराणा उदय सिंह की उपपत्नी जिसने बिलास मग्न महाराणा को अकबर के कैद से छुड़ाकर अपनी वीरता और अद्भुत पराक्रम से मुगल सेना को परास्त किया था।

निज प्रिय लाल कटाय जो, प्रभु-सिसु लियो बचाय।
क्यों न होय मेवाड़ में, पूजित पन्ना धाय ॥७६॥
धन्य सती दुर्गावती, करि गढ़ मण्डल राज।
रखी गोंड़वानैं तुहीं, खड़ग-धर्म की लाज ॥७७॥
मुगलनु पै झपटी मनो, रण सिंहिनि तजि चाँद।
अकबर-मद-मर्द्दनु कियो, धनि सुलताना माँद ॥७८॥
भई प्रगटि रण-चण्डिका, गढ़ झाँसी परतच्छ।
सुभट सँहारे लच्छमी, लच्छ लच्छ करि लच्छ ॥७९॥
नहिं यामें अचरजु कछू, नाहिन नीति-अनीति।
हँसत सदा खल सुजन पै, नई न कछु यह रीति ॥८०॥
कवच कहा ए धारिहैं, तचीकीले मृदुगात।
सुमन हार के भार ते, तीन-तीन बल खात ॥८१॥
अब नख-शिख-सिङ्गार में, कवि-जन कछु रस नाहिं।
जूठन चाटत तुम तऊ, मिली कूकुर-कुल माहिं ॥८२॥
भली नाथ लीला रची, भलो अलाप्यो राग।
नर ओढ़ी सिर ओढ़नी, नारिन बाँधी पाग ॥८३॥

७६—लाल=पुत्र। प्रभु=सिसु मालिक के पुत्र।

७७—दुर्गावती=गढ़ माण्डले की रानी और चन्देल पुत्री जिसने अकबर की सेना के छक्के छुड़ा दिये और हारने पर आत्म हत्या कर ली।

७८—सुलताना चाँद=अहमद नगर के राजा की पुत्री और बीजापुर की रानी जिसने मुगल सेना को मार भगाया था।

७९—लच्छमी=झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई जो १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध वीरता से लड़ी।

८०—अचरजु=आश्चर्य। खल दुष्ट। सुजन=सज्जन।

८१—सुमनहार=फूलों के हार। तीन-तीन-बल खात=कमर लचक जाती है।

८२—नख-शिख-सिङ्गार=नख-शिख वर्णन और शृङ्गार रस में।

८३—पाग=पगिया, साफा, वीरता का पहनावा।

जाहिं देखि फहरत गगन, गये काँपि जग-राज।
सो भारत की जय-ध्वजा, परी धरातल आज ॥८४॥
जिनकी आँखन ते रहे, बरसत ओज-अँगार।
तिनके बंशज झेंप तें, दृग काँकत सुकुँवार ॥८५॥
उत हाकिम रैयत-रकत, करतपान उर चीर।
इत पीवत तैं मद भारे, नृपति मनोज-अधीर ॥८६॥
तुम रजपूतनु तें कहा, रजपूती की आस।
प्रमदा-मादिरा-माँस के, भये आजु तुम दास ॥८७॥
तो देखत तुव भगिनि के, खैंचत पामर केस।
सानि परत या बाहु, में, रह्यौन बल को लेस ॥८८॥
जित देखौ तित बढ़ि रहे, कुल कुठार भुवि-भार।
क्यों न होत पुनि आजु वह, परशुराम - अवतार ॥८९॥
ह्वै हौ पुनि स्वाधीन तुम, सदा न रहि हौ दास।
या युग के बलिदान कौ, लिखियौ तब इतिहास ॥९०॥
लाल तिहारी लाड़िलीं, तुव गोकुल की गाय।
कटति आजु गोपाल हा, क्यों न बचावहु धाय ॥९१॥
अपनावत अजहूँ न जे, अपनहिं अंग अछूत।
क्यों करि ह्वै है छूत वे, करि कारी करतूत ॥९२॥
जहाँ बाल-विधवा हियें, रहे धधाकि अंगार।
सुख-शीतलता कौ तहाँ, करिहौ किमि संचार ॥९३॥

८४—जयध्वजा=जय पताका। धरातल=पृथ्वी।

८५—ओज-अंगार=ओजरूपी अंगारे।

८६—रैयत-रकत=प्रजा का खून। मद=मदिरा।

८७—प्रमदा=स्त्री। ८८—भगिनि=बहिन। पामर=नीच।

८९—भुवि-भार=पृथ्वी के भार स्वरूप। ९०—या युग=वर्तमान युग।

९१—लाडिली=प्यारी। ९२—अछूत=अंत्यज। कारी करतूत=बुरे कर्म।

९३—किमि=किस प्रकार।

है स्वदेश मख-वेदिका, अरु आहुति मम-प्रान।
कोटि जन्म हूँ नाथ जनि, जावै यह अभिमान ॥९४॥

जाव भलैं कुरुराज पै, धारि दूत-वर वेश।
जइयो भूलि न कहुँ वहाँ, केशव द्रोपादि केश ॥९५॥

चूसि गरीबनु कौ रकतु, करत इन्द्र सम भोग।
तउ गरीव परवर उन्है, कहत अहो ए लोग ॥९६॥

क्षात्र-धर्म यश-कौमुदी, कृष्ण-रूप-रुचि राग।
होउ हरे संगमु सदा, यहै सुहाग प्रयाग ॥९७॥

मन-मोहिनि वै सतसई, हिरनी-सी सुकुवाँरि।
कहा रिझैहै ररिक-मन, यह सिंहिनि भयकारि ॥९८॥

उर-प्रेरक श्रीहरि भये, भई प्रगटि लाहौर।
सत सइया पूरन भई, पदमावती सुठौर ॥९९॥

चैत्र-सुदी-सुभ पंचमी, वेद सिद्धि निधि इन्दु।
करी समापत सतसई, हरी सुमिरि गोबिन्दु ॥१००॥

९४—मख-वेदिका=यज्ञ की वेदी।

९५—कुरुराज=दुर्योधन। द्रोपदि-केश=द्रोपदी के खुले हुए बालों को।

९६—रकतु=खून। गरीब परवर=गरीवों का पालन करने वाले।

९७—संगमु=मेल।

९८—सुकुवारि=सुकुमार। अन्य श्रृङ्गार सतसई तथा वीर सतसई के सम्बन्ध में कवि की उक्ति।

९९—पद्मावती=पन्ना नगरी। इसका प्राचीन नाम पद्मावती था।

१००—वेद सिद्धि निधि इन्दु=संवत् १९८४। हरी=वियोगी हरि।

श्री दुलारे लाल भार्गव

[सुधा सम्पादक]

सुमिरौं वा बिघनेस कौ, जोति सदन मुख-सोम।
जासु रदन-दुति-किरन इक, हरति बिघन तम-तोम ॥ १ ॥
श्री राधा-बाधा हरनि, नेह अगाधा-साथ।
निहचल नैन-निकुंज में, नचौ निरंतर नाथ ॥ २ ॥
जनम दियौ पाल्यौ तऊ, जन बिसरायौ नाथ।
परयौ पुहुप मसल्यौ मनौ, मधु ही के मृदु हाथ ॥ ३ ॥
मम तन तव रज-राज, तव तन मम रज-रज रमत।
करि बिधि-हरि-हर काज, सतत सृजहु-पालहु हरहु ॥ ४ ॥
नीरस हिय-तम कूप मम, दोष-तिमिर बिनसाय।
रस-प्रकास भारति भरौ, प्यासौ मन छकि जाय ॥ ५ ॥

१—बिघनेस=गणेश जी। जोति=[१] प्रभा, [२] ज्ञान। सोम=[१] चन्द्रमा, [२] आकाश। रदन=दाँत। तम-तोम=अन्धकार राशि।

२—निहचल=[१] अपलक, भावमय, [२] शान्त, एकांत।

३—जन=सेवक। पुहुप=पुष्प। मसल्यौ=मसला हुआ। मधु=बसन्त। मृदु हाथ= कोमल हाथ।

४—रज=[१] धुल, [२] रजोगुण, [३] ज्योति, प्रकाश। रमत=[१] अन्तुर्क्त हो रहा है, [२] लीन हो जाता है, व्याप्त हो जाता है, गायत्र हो जाता हैं। बिधि=ब्रह्मा। हरि=विष्णु। हर=महेश। सतत=सर्वदा।

५—तमकूप=अन्धेरा कुआँ। दोष=काव्य-दोष। रस=[१] नवरस, [२] जल। प्रकाश=[१] रोशनी [२] ज्ञान। भारति=भारती, सरस्वती।

कोप कोकनद-अवलि अलि, उर-सरलई लगाइ।
पै दिखाइ मुख-चंद पिय, दई! दई कुम्हिलाइ ॥ ६ ॥
द्रवि-द्रवि, दै-दै धीर नित, दियौ जु दुर दिन साथ।
आँस सुमन सो नाथ दै, पहलें करौं सनाथ ॥ ७ ॥
कठिन विरह ऐसी करी, आवति जबै नगीच।
फिरि फिरि जाति दसा लखे, कर दृन मीचति मीच ॥ ८ ॥
झपकि रही धीरें चलौ, करौ दूरि तें प्यार।
पीर-दब्यौ दरकै न उर, चुंबन ही के भार ॥ ९ ॥
जोबन-देख-प्रवेस करि, बुधजन हूँ बौरायँ।
चंचल चख चख चख चलति, चित हित गुन बँधि जायँ ॥१०॥
दमकति दरपन-दरप दरि, दीपशिखा-दुति देह।
वह दृढ़ इकदिसि दिपत यह, मृदु दस दिसनि सनेह ॥११॥
नाह-नेह-नभ तें अली, टारि रोस कौ राहु।
पिय-मुख-चंद दिखाहु प्रिय, तिय कुमुदिनि बिकसाहु ॥१२॥
कबि - सुरबैद्यन - बीर - रस, साहित-सर सरसाय।
न्हाय जरठ भारत च्यवन, तुरत ज्वान ह्वै जाय ॥१३॥

६–क्रोप का अभिप्राय प्रणय कोप से है।

७–द्रवि-द्रवि=दया द्रवित होकर। दुरदिन=वियोग के दिनों में। आँस=आँसू। सनाथ=सुखी।

८–फिरि-फिरि जात=लौट लौट जाती है। मीच=मृत्यु।

९–झपकि-रही=झपकी लगी है। दरकै=फटै। नायिका की सुकुमारता का वर्णन।

१०–चख=नेत्र। चख-चख=झगड़ा। हित-गुन=प्रेम की रस्सी।

११–दरपन-दरप दरि=दर्पण का दर्प दलन करके। दोप-सिखादुति=दीपशिखा की प्रभावाली, स-सनेह=१–तेलयुक्त, चिकनी, २–प्रेमयुक्त, सजीव।

१२–नाह-नेह-नभ तें=प्रेम-पात्र के प्रेमरूपी आकाश से। रोस=क्रोध। बिकसाहु=विकसित करो, प्रफुलित करो।

१३–कवि-सूखैद्यन=कविरूप अश्विनी कुमार। जरठ=वृक्ष। भारतच्यवन=भारत रूपी च्यवत ऋषि।

झर सम दीजै देस हित, झर-झर जीवन-दान।
रुकि-रुकि यों चरसा सरिस, देबौ कहा सुजान ॥१४॥
प्रभा प्रभाकर देत जेहि, साम्राजहिं दिन-रात।
ताको हतप्रभ-सो करत, श्री गाँधी-दृग-पात ॥१५॥
हिम मय परबत पर परति, दिनकर-प्रभा प्रभात।
प्रकृति-परी के उर परयो, हेम-हार लहरात ॥१६॥
ऊँच-जनम जन जे हरैं, नित नमि नमि परपीर।
गिरिवर तें ढरि-ढरि धरनि, सींचत ज्यों नद-नीर ॥१७॥
संतत सहज सुभाव सों, सुजन सबै सनमानि।
सुधा-सरस सींचत स्रवन, सनी-सनेह सुबानि ॥१८॥
भाव-भाप भरि, कल्पना-कर मत उदधि पसारि।
कवि रवि मुख-धन तें जगहिं, नव रस देय सँवारि ॥१९॥
काँटनि-कँकरिनि वरुनि चुनि, असुवन-कनि मग सींचि।
कसक-कराहनि हौं रह्यो, आहनि ही तोहिं ईंचि ॥ ॥२०॥
कब तें मन-भाजन लएँ, खरौ तिहारे द्वार।
दरसन-दुति-कन दै हरौ, मति तम-तोम अपार ।.२१॥
तजत बिरह-रवि उर उदधि, उठत सघन दुख-मेह।
नयन-गगन उमड़त घुमड़ि, बरसत सलिल अछेह ॥२२॥

१४—झर=पानी की झड़ी लगना। जीन=१—प्राण, २—जल। चरसा=चरस।
१५—प्रभा=प्रकाश। प्रभाकर=सूर्य। साम्राजहिं=साम्राज्य को।
१६—प्रकृति-परी=प्रकृतिरूपिणी अप्सरा। हेमहार=स्वर्णमाल।
१७—नमि-नमि=झुक-झुक। धरनि=पृथ्वी पर।
१८—संतत=सदा। स्रवन=कानों। सनी-सनेह=प्रेमभरी। सुबानि—मीठे बचन।
१९—भाव-भाप=भावरूपी वाष्प। नवरस=नवों रस।
२०—आँसूवनि-कनि=आसुओं के कारण। ईंचि=खींच।
२१—मन-भाजन=मन रूपी पात्र। दरसन—दुति कन=दर्शन के प्रकाशकी भिक्षा।
२२—अछेह= १—लगातार २—अधिक

नेह - नीर भरि - भरि नयन, उर पर ढरि - ढरि जात।
टूटि - टूटि तारक गगन, गिरि पर गिरि - गिरि जात ॥२३॥
चित चकमक पै चोंट दै, चितवन लोह चलाइ।
लगन - लाइ हिय - सूत में, ललना गई लगाइ ॥२४॥
लखिकें भारत - दीप को, हतप्रभ - सौ असहाइ।
दै नवजीवन नेह निज, गंधी दियो जगाइ ॥२५॥
रही अछूतोद्धार - नद, छूआछूत - तिय डूबि।
सास्त्रन कौ तिनकौ गहति, क्रांति -भँवर सो ऊबि ॥२६॥
जाति - पाँति की भीति तौ, प्रीति - भवन में नाहिं।
एक एकता - छतहिं की, छाँह मिलति सब काहिं ॥२७॥
जग - तरनी में तन - तरो, परी अरी मँझधार।
मन - मलाह जो बस करै, निहचै उतरै पार ॥२८॥
तन - उपवन सहि है कहा, बिछुरन - झंझावात।
उड़्यो जात उर - तरु जवै, चलिबे ही की बात ॥२९॥
बीय दीय ज्यों ज्यों बरे, त्यों त्यों घटे सनेह।
हीय - दीय ज्यों ज्यों जरे, त्यों - त्यों बढ़े सनेह ॥३०॥
लंक लचाइ नचाइ दृग, पग - उँचाइ भरि चाइ।
सिर धरि गागरि मगन मग, नागरि नाचति जाइ ॥३१॥
गंगा - जमुना - सरसुती, बचपन - जोबन - रूप।
तिय त्रिबेनि नहिं देति केहिं, मति - महि मुकति अनूप ॥३२॥

२३—तारक=नक्षत्र २४—लाइ=अग्नि

२५—नवजीव=१—नवीन स्फूर्ति, २—महात्मा गाँधी का नवजीवन नामक पत्र गाँधी=१—गाँधी जी, २—अत्तार। २६—छुआछूत तिय=छुआछूत रूपी नारी।

२७—भीति=दीवार। २८—निहचै=निश्चय पूर्वक।

२९—तन-उपवन=शरीररूपी बाग। बात=श्लेष्ट पद है, बात (चर्चा) रूपी वायु।

३०—बीय=दूसरा। दीय=दीपक। सनेह=१—घृत, २—प्रेम।

३१—भरि-चाबू=उमंग में भर कर। ३२—मति-मतिरूपी पृथ्वी से।

सिव - गाँधी दोई भये, बाँके माँ के लाल।
उन काटे हिंदून - दुख, इन जग - दृग - तम - जाल ॥३३॥
दुष्ट - दनुज - दल - दलन को, धरे तीक्ष्ण तरवार।
देश - शक्ति दुर्गावती, दुर्गा को अवतार ॥३४॥
जनु जु रजनि - बिछुरन रहे, पदुमिनि - आनन छाइ।
ओस - आसु - कन सो करन, पोंछत रबि - पिय आइ ॥३५॥
सीत - घाम - लू - दुख सहत, तऊ न तोरत तार।
झरत निरंतर झर - सरिस, सोइ सनेह सुचि सार ॥३६॥
उर-धरकनि-धुनि माहिं सुनि, पिय - पग - प्रतिधुनि कान।
नस - नस तें नैंनन उमहि, आए उतसुक प्रान ॥३७॥
सत - इसटिक जग फील्ड लै, जीवन - हाकी खेलि।
चा अनंत के गोल में, आतम बालहिं मेलि ॥३८॥
ग्राह - गहत गजराज की, गरज गहत ब्रजराज।
भजे गरीब निवाज कौ, बिरद बचावन काज ॥३९॥
लेत देत संदेस सब, सुनि न सकत कछु कोय।
बिना तार कौ तार जनु, कियौ दृगनु तुम दोय ॥४०॥

३३—सिव=शिवाजी।

३४—दुर्गावती=गढ़ माँडले की वीर रानी दुर्गावती, जिसने अकबर बादशाह के सूबेदार आसफ खाँ से भीषण संग्राम किया था।

३५—पदुमिनि-आनन=कामलिनी-रूपिणी पद्मिनी नायिका के नुख पर। ओस-आँसु=ओसरूपी आँसू। करन=किरणरूपी हाथों से। रवि-पिय=सूर्यरूपी पति।

३६—तउ=तोभी। झर=झरना। सुचि=पवित्र। ३७—उमंहि=उमड़।

३८—इसटिक=हाकी खेलने का डंडा। फील्ड=मैदान। गोल=वह स्थान जहाँ गेंद अन्दर कर देने से विजय प्राप्त होती है। बालहिं=गेंद को।

३९—बिरद=प्रशंसित पदवी।

४०—बिनातार कौ तार=रेडियों। नेत्रों द्वार वार्तालय को कवि ने बेतार के तार का यन्त्र बनाया हैं।

नयौ नेह दै पिय दियौ, जीवन दियौ जगाइ।
किंचित सिंचित राखियौ, ह्वै सूनों न वुझाइ ॥४१॥

झपटि लरत गिरि-गिरि परत, पुनि उठि-उठि गिरि जात।
लगनि-लरनि चख भट चतुर, करत परसपर घात ॥४२॥

चख-जख तव दृग-सर-सरस, बूड़ि बहुरि उतराय।
वेदी छटकै में छटकि, अटकि जात निरूपाय ॥४३॥

चख-तुरंग माने इते, छाके छवि की भाँग।
सुमति छाँद छाँदहुँ तऊ, छिन-छिन भरत छलाँग ॥४४॥

कलिजुग ही मैं मैं लखी, अति अचरजमय बात।
होत पतित-पावन पतित, छुवत पतित जब गात ॥४५॥

गाँधी-गुरु तें ग्याँन लै, चरखा अनहद जोर।
भारत सबद-तरंग पै, बहत मुकति की ओर ॥४६॥

दिन नायक ज्यों-ज्यौं बढ़त, कर अनुराग पसारि।
त्यों-त्यों लजि सिमटति हटति, निसि-नवनारि निहारि ॥४७॥

४१–नेह=१–प्रेम, २–तैल। जीवन-दियो=जीवन-दीपक।

४२–लगनि-लरनि=प्रेम युद्ध में।

४३–छटका=मछलियों के फँसाने का गढ़ा, जो दो जलाशयों के बीच तंग मेड़ पर खोदा जाता है।

४४–लाते=मदोन्मत्त हो गए। छाँद=रस्सी से। छाँदना=दोनों पैर सँटाकर बाँधना इससे भागने में और चलन में अड़चन होनी है।

४५–अचरजमय=आश्चर्यमयी। पतित-पावन=पतितों को पवित्र करने वाले।

४६–भारत=१–ज्ञान से रत, २–भारतदेष। मुकति–१–लोक्ष, २–स्वाधीनता।

४७–दिन-नायक=सूर्यरूपी नायक। बढ़त=आकाश में ऊपर चढ़ता है आगे बढ़ता है। कर=१–किरण, २–हाथ। पसारि=फैलाकर। निसि-नवनारि=रात्रिरूपी नव-बाला।

जाति जोंक भारत रकत, संतत चूसत जाय।
अंतर जाति बिवाह कौ, नोंन देहु छिरकाय ॥४८॥
सुलभ सनेह न व्याह सों, सुलभ नेह सों व्याह।
ब्याह किए पुनि नेह की, इकै नेह ही राह ॥४९॥
जगि-जगि बुझि-बुझि जगत में, जुगुनू की गति हौति।
कब अनन्त परकास सों, जगि है जीवन-जोति ॥५०॥
नैन-आतसी काँच परि, छवि-रवि-कर अवदात।
झुलसायौ उर-कागदहिं, उड़्यो साँस-सँग जात ॥५१॥
बिंब विलोकन कौं कहा, झमकि झुकति झर-तीर।
भोरी तुव मुख छवि निरखि, होत बिकल चल नीर ॥५२॥
हृद्रय कूप मन रहँट सुधि, माल माल रस राग।
बिरह वृषभ बरहा नयन, क्यों न सिंचै तन - बाग ॥५३॥
नजर - तीर तें नैंन पुर, रच्छित राखन - हेत।
अनु काजर - प्राचीर पिय, तिय - तन - भू - पति - देत ॥५४॥
भारत - सरहिं सरोजिनी, गाँधी - पूरब - ओर।
तकि सोचति—'ह्वै हैं कबै, प्रिय स्वराज - रबि - भोर ॥५५॥

४८—अंतर जाति विवाह=अन्तर्जातीय विवाह। नोंन=नमक, नमकछिड़कने से खून चूसने वाली जोकें खून चूसना छोड़ देती है।

४९—सनेह=प्रेम।

५०—अनन्त ज्योति से संयोग प्राप्त करने को उत्सुक पुनः-पुनः जन्म मरणशील जीवात्मा की वेदना की पुकार है।

५१—आत्सी काँच=आतिशी शीशा। अवदात=श्वेत, सुन्दर। साँस=१—श्वाँस, २—हवा।

५२—भोरी=भोली।

५३—सुधि=स्मृति। माल=घट-माला। बरहा=सिचाई के लिए बनी हुई नाली।

५४—काजर-प्रचीर=काजल का परकोटा।

५५—सरोजिनि=श्लिष्ट पद है, जिससे भारत प्रसिद्ध नेत्री श्री सरोजिनी नायडू और कमलिनी दोनों का अर्थ निकलता है। पूरब=पूर्व-दिशा।

भारत - भूधर तें ढरति, देस - प्रेम - जल - धार।
आर्डिनेंस - इसपंज लै, सोखन चह सरकार ॥५६॥
दिनकर-पुट-बर-बरन लै, कर-कूँचीन खलाइ।
प्रकृति-चितेरी रचति पट्ट, नभ पट्ट साँझ सुभाइ ॥५७॥
सुखद समै संगी सबै, कठिन काल कोउ नाहिं।
मधु सोहैं उपवन सुमन, नहिं दिदाघ दिखराहिं ॥५८॥
सतसैया के दोहरा, चुनें जौंहरी - हीर।
जोति-धरे तीछन खरे, अरथ - भरे गंभीर ॥५९॥
नीच मीच कौं मत कहै, जनि उर करै उदास।
अंतरंगिनो प्रिय अली, पहुंचावति पिय - पास ॥६०॥
चख - खंजन परि किरकिरी, अंजन डारति धोय।
अखिल निरंजन जो बसै, क्यों न निरंजन होय ॥६१॥

५६—भूधर=पर्वत। आर्डिनेंसरूपी स्पंज। स्पंज झावाँ की तरह एक प्रकार का मुलायम पदार्थ होता है, जिसमें बहुत से छोटे-छोटे छेद होता है। इन्हीं छेदों से वह बहुत सा पानी सोख लेता है और जब उसे दबाते हैं तो सारा पानी बाहर निकल आता है।

५७—दिनकर-पुट=सूर्यरूपी गोल पात्र जिसमें रंग भरा है। बर-बरन=श्रेष्ठ वर्ण या रंग। १—स्वाभाव से, २—उत्तम भाव से।

५८—मधु=बसंत। निदाघ=ग्रीष्म।

५९—हीर=हीरा। जोति=१—ज्ञान, २—प्रभा। तीछन=तीक्ष्ण।
१—तेज बुद्धियुक्त, प्रतिभा पूर्ण, २—तेज नोक वाला। खरे=१—विशुद्ध, २—चोखे, बढ़िया। अरथ (अर्थ)=१—व्यंग्यादि काव्यार्थ, २—धन। गम्भीर=१—गहरा, २—घना, प्रचुर।

६०—मीच=मृत्यु। अन्तरंगिनी-प्रिय-अली=अन्तरंग-भेद जानने वाली प्यारी सखी।

६१—चख-खंजन—चपल नेत्र। अंजन=काजल। निरंजन=१—अंजन रहित, २—दोष-रहित, माया-मोह-रहित, ३—ईश्वर।

उर-पुर अरि-परनारि तें, रच्छित राखौ लाल।
नतरु बियोग-कृसानु में, जौहर ह्वै है बाल ॥६२॥

पुरखन कौ धन दै दियौ, देस-प्रेम की राह।
त्याग-निसेनी चढ़ि चले, चित-चित भामाशाह ॥६३॥

करी करन अकरन करनि, करि रन कवच-प्रदान।
हरन न करि अरि-प्रान निज, करनि दिए निज प्रान ॥६४॥

ईसाई हिंदू जवन, ईसा राम रहीम।
बैविल बेद कुरान में, जग मग एक असीम ॥६५॥

इकै जाति भाषा इकैं, इके जु लिपि बिसतार।
भारत-भू में होय तौ, टूटैं बंधन - तार ॥६६॥

हिंदी द्रोही उचित ही, तुव अंगरेजी-नेह।
दई निरदई पै दई, नाहक हिंदी देह ॥६७॥

एक जोति जग जगमगै, जीव-जीव के जीय।
बिजुरी बिजुरी घर-निकसि, ज्यों जारत पुर-दीय ॥६८॥

बिरह–ताप–तपि भाप–सम, जब उर उड़त अचेत।
तव सुधि–सिंचित आँसु ही, तब सखि जीवन देत ॥६९॥

६२–अरि-परनारि=शत्रु रूपिणी अन्य नारी। कृसानु=अग्नि। जौहर ह्वैहै=जल मरेगी। ६३–त्याग-निसेनी=त्यागरूपी सीढ़ी।

६४–करन=दानी कर्ण जिन्होंने अपनी माता कुन्ती को अपना प्राण रक्षक कवच प्रदान कर दिया था और अर्जुन के हाथों मारे गये थे। करनि=करनी। करनि=हाथों से।

६५–जवन=यवन, मुसलमान। बैविल=बाइबिल। असीम=अनंत, परमात्मा।

६६–बिसतार–विस्तार। बंधन-तार=परतन्त्रता के तार।

६७–हिंदी=हिन्दी भाषा। दई निर्दयी=निर्दय ब्रह्मा। हिन्दी=हिन्दुस्तानी।

६८–जीय=जी, अन्तःकरण। दीय=दीपक।

६९–सुधि-सिंचित=स्मृति से सींचे हुए।

एती गरमी देखि कै, करि बरसा-अनुमान।
अली भली पिय पैं चली, लली दसाधरि ध्यान ॥७०॥

राखत दूरी दूरि ही, सखि प्रेमिन कौ प्यार।
नित तिनके मन कुसुम में, बसति बसंतबहार ॥७१॥

तरुन तरुनई-तरु सरस, काटि न कलुस-कुठार।
सींचि सुजीवन सुमन धरि, करि निज सफल बहार ॥७२॥

दुष्ट दुसासन दलमल्यौ, भीम भीम तम-भेस।
पाल्यौ प्रन छाक्यो रक्त, बाँधे कृस्ना केस ॥७३॥

पागल कौं सिच्छा कहा, कायर कौं करवार।
कहा अंध कौ आरसी, त्यागी कौं घर-बार ॥७४॥

सहज सनेह सुभाव मृदु, सहजोगिता सुकाम।
एई दंपति धाम की, दीवारें अभिराम ॥७५॥

बंसीधर - अधरन - धरी, बंसी बस कर लेति।
सुधि-बुधि सजनि भुलाइकें, जोति इकै कर देति ॥७६॥

खरी साँकरी हित-गली, बिरह-काँकरी छाइ।
अगम करी तापै अली, लाज-करी बिठराइ ॥७७॥

७०-बरसा-अनुमान=वर्षा का अन्दाज। गरमी हो रही है अब वर्षा होगी इससे लली को कष्ट होगा या गरमी के अर्थ क्रोध के भी हैं।

७१-मन कुसुम-मनरूपी पुष्प।

७२-कलुस=कलुष, पाप कर्म। सुजीवन=१-उत्तम जीवन, २-उत्तम जल। सुमन=१-पुष्प, २-अच्छामन। सफल=१-फलयुक्त, २-सार्थक। बहार=बहार=१-उचित संभोग, २-वसंत।

७३-कृष्णा=द्रोपदी। ७४-करवार=तलवार। आरसी=आइना।

७५-सहजोगिता=सहयोग से रहना। अभिराम=सुन्दर।

७६-वंसीधर=कृष्ण। वंसी=बाँसुरी।

७७-खरी=खूब। लाज-करी=लज्जारूपी हाथी।

केहि कारन कसकन लगी, भले मन चले लाल।
आँख-किराकिरी होइ यह, आँख-पूतरी बाल ॥७८॥
सोवत कन्त इकन्त चहुँ, चितै रही मुख चाहि।
पै कपोल़ पै ललक लखि, भजी लाज अवगाहि ॥७९॥
बार[१] बित्यौ लखि बार[२] झुकि, बार[३] बिरह के बार[४]।
बार[५]-बार सोचति—कितै, किन्हीं बार[६] लबार[७] ॥८०॥
छुट्यो राज रानी बिकी, सहत डोम-गृह दन्द।
मृत सुख छू लखि प्रियहिं तें, कर माँगत हरिचन्द ॥८१॥
छुआछूत नागिन डसी, परी जुजाति अचेत।
देन मंत्रना मंच तें, गाँधी गारुड़ि चेत ॥८२॥
कूट नीति पच्छिम लखत, राष्ट्रसंघ रवि अस्त।
अस्त्र शस्त्र – दुति – वृद्धि में, राष्ट्र नखत भे व्यस्त ॥८३॥
बात झूलि रे फूल यों; निज श्री भूलि न फूलि।
काल कुटिल को कर निरखि, मिलन चहत तैं धूलि ॥८४॥
डारें हास फुहार कन, कर कियारिन – माहिं।
सींचे कवि माली सुरस, रसिक सुमन बिकसाहिं ॥८५॥
रात संगति लघु बँसहू, हरि अवगुन गुन देति।
केहि न कान्ह अधरन धरी, बंसी बस करि लेति ॥८६॥

७८—आँख-किरकिरी=आँखों में पड़कर पीड़ा देनें वाला, दृण कण, रजकण आदि। या जिस व्यक्ति को देखना न चाहे। आँख-पूतरी=प्रिय व्यक्ति।

७९—रही-मुख चाहि=प्रेम से मुख ताकती रह गई। अवगाहि=नहाकर।

८०—१—दिन २—द्वार ३—बाला ४—बोझा ५—फिर-फिर ६—देर ७—गयी।

८१—दंद=दुख। मृत=मरा हुआ। प्रियहिं तें=प्रिया से भी।

८२—मंत्रनी-मंत्र=उपदेश अथवा सम्मति सूची मंत्र। गारुड़ि=साँप का विष उतारने वाला।

८४—बात=१—हवा, २—बातें। श्री=१—शोभा, २—सम्पति। न फूलि=गर्व न कर।

८५—करन=कान। सुमन=१—सुन्दर मन २—पुष्प।

८६—लघुवंस=१—छोटा कुल, २—तुच्छ बास।

धाम द्वारिका राय द्वि, पुनि सुभाय मुसकाय।
सिर नवाय गहि पायँ उर, लाय रहे लपटाय ॥८७॥

नंदलाल रंग आल रंग, चीत चीर रँगि लेहु।
जगत आलजंजाल कौ, दीमक लगन न देहु ॥८८॥

तू हेरत इत उत फिरत, वह घट रह्यो समाइ।
आपौ खोवै आपनों, मिलै आप ही आइ ॥८९॥

सन्देसन पठवन लिखन, मिलन कहा मम प्रान।
मन दोउन के इक जबै, बिछुरन मिलन समान ॥९०॥

जुगन – जुगन बिछुरे रहें, हम तें हरिजन लोग।
गाँधी – जोगी – जोग किय, छन में जुगल – सँजोग ॥९१॥

जुद्ध मद्ध वल सों सबल, कला दिखाई देति।
निरबल मकरिहुँ जाल बुनि, सरप दरप हरि लेति ॥९२॥

इक मियान में रहि सकत, कहूँ जदि जुग तरवार।
तौ भारत हूँ सहि सकत, जुग सासन कौ भार ॥९३॥

कवि सँग मैं राखत हुते, जे नरपाल सुजान।
राखत आज खुसामदी, मोटर गनिका स्वान ॥९४॥

मिलत न भोजन नग तन, मन मलीन पथ बासु।
निरधनता साकार लखि, ढ़ारति करुनह आँसु ॥९५॥

८७–कृष्ण सुदामा-मिलन वर्णन है।

८८–रंग=प्रेम। आलरंग=एक प्रकार का रंग जिसके रंगने से कपड़े पर दीमक नहीं चगती। चीत=चित्त। आल-जंजाल=झंझट, माया।

८९–आपौ=घमंड। आप=प्रभु। ९०–बिछुरन-मिलन=संयोग-वियोग।

९१–जुगन-जुगन=युग-युग से। हरिजन=अछूत।

९२–मकरिहूँ=मकड़ी भी। सरप-दरप=सर्प का घमंड।

९३–मियान=म्यान। जुग-सासन=दोहरा प्रवन्ध। ९४–गनिका=वेश्या।

९५–पथ-वासु=रास्ते में निवास। करुनह=करुणा भी।

केहि कारन कसकन लगी, भले मन चले लाल।
आँख-किराकिरी होइ यह, आँख-पूतरी बाल ॥७८॥
सोवत कन्त इकन्त चहुँ, चितै रही मुख चाहि।
पै कपोऊ पै ललक लखि, भजी लाज अवगाहि ॥७९॥
बार[१] बित्यौ लखि बार[२] झुकि, बार[३] बिरह के बार[४]।
बार[५]-बार सोचति—कितै, किन्हीं बार[६] लवार[७] ॥८०॥
छुट्यो राज रानी बिकी, सहत डोम-गृह दन्द।
मृत सुख छू लखि प्रियहिं तें, कर माँगत हरिचन्द ॥८१॥
छुआछूत नागिन डसी, परी जुजाति अचेत।
देन मंत्रना मंच तें, गाँधी गारुड़ि चेत ॥८२॥
कूट नीति पच्छिम लखत, राष्ट्रसंघ रवि अस्त।
अस्त्र शस्त्र - दुति - वृद्धि में, राष्ट्र नखत भे व्यस्त ॥८३॥
बात झूलि रे फूल यों; निज श्री भूलि न फूलि।
काल कुटिल को कर निरखि, मिलन चहत तैं धूलि ॥८४॥
डारें हास फुहार कन, कर कियारिन - माहिं।
सींचे कवि माली सुरस, रसिक सुमन बिकसाहिं ॥८५॥
रात संगति लघु बँसहू, हरि अवगुन गुन देति।
केहि न कान्ह अघरन धरी, बंसी बस करि लेति ॥८६॥

७८—आँख-किरकिरी=आँखों में पड़कर पीड़ा देने वाला, दृण कण, रजकण आदि। या जिस व्यक्ति को देखना न चाहे। आँख-पूतरी=प्रिय व्यक्ति।

७९—रही-मुख चाहि=प्रेम से मुख ताकती रह गई। अवगाहि=नहाकर।

८०—१—दिन २—द्वार ३—बाला ४—बोझा ५—फिर-फिर ६—देर ७—गयी।

८१—दंद=दुख। मृत=मरा हुआ। प्रियहिं तें=प्रिया से भी।

८२—मंत्रनी-मंत्र=उपदेश अथवा सम्मति सूची मंत्र। गारुड़ि=साँप का विप उतारने वाला।

८४—बात=१—हवा, २—बातें। श्री=१—शोभा, २—सम्पति। न फूलि=गर्व न कर।

८५—करन=कान। सुमन=१—सुन्दर मन २—पुष्प।

८६—लघुवंस=१—छोटा कुल, २—तुच्छ बास।

धाम द्वारिका राय द्रवि, पुनि सुभाय मुसकाय।
सिर नवाय गहि पायँ उर, लाय रहे लपटाय ॥८७॥

नंदलाल रंग आल रंग, चीत चीर रँगि लेहु।
जगत आलजंजाल कौ, दीमक लगन न देहु ॥८८॥

तू हेरत इत उत फिरत, वह घट रह्यो समाइ।
आपौ खोवै आपनों, मिलै आप ही आइ ॥८९॥

सन्देसन पठवन लिखन, मिलन कहा मम प्रान।
मन दोउन के इक जबै, बिछुरन मिलन समान ॥९०॥

जुगन - जुगन बिछुरे रहें, हम तें हरिजन लोग।
गाँधी - जोगी - जोग किय, छन में जुगल - सँजोग ॥९१॥

जुद्ध मद्ध बल सों सबल, कला दिखाई देति।
निरबल मकरिहुँ जाल बुनि, सरप दरप हरि लेति ॥९२॥

इक मियान में रहि सकत, कहूँ जदि जुग तरवार।
तौ भारत हूँ सहि सकत, जुग सासन कौ भार ॥९३॥

कवि सँग मैं राखत हुते, जे नरपाल सुजान।
राखत आज खुसामदी, मोटर गनिका स्वान ॥९४॥

मिलत न भोजन नग तन, मन मलीन पथ बासु।
निरधनता साकार लखि, ढ़ारति करुनह आँसु ॥९५॥

८७—कृष्ण सुदामा-मिलन वर्णन है।

८८—रंग=प्रेम। आलरंग=एक प्रकार का रंग जिसके रंगने से कपड़े पर दीमक नहीं चगती। चीत=चित्त। आल-जंजाल=झंझट, माया।

८९—आयौ=घमंड। आप=प्रभु। ९०—बिछुरन-मिलन=संयोग-वियोग।

९१—जुगन-जुगन=युग-युग से। हरिजन=अछूत।

९२—मकरिहूँ=मकड़ी भी। सरप-दरप=सर्प का घमंड।

९३—मियान=म्यान। जुग-सासन=दोहरा प्रबन्ध। ९४—गनिका=वेश्या।

९५—पथ-बासु=रास्ते में निवास। करुनह=करुणा भी।

खरी दूबरी तिय करी, बिरह निठुर बरजोर।
चितवन चढ़ति पहार जनु, जब चितवत ममओर ॥९६॥

राधाबर – अधरन – धरी, बाँसुरिया बौराइ।
प्रतिपल पियत पियूष पै, विषम बिसहिँ बरसाइ ॥९७॥

देस कला नव विसतरत, हरत ताप चहु ओर।
करत प्रफुल्ल प्रफुल्लचँद, चतुरन – चित्त – चकोर ॥९८॥

कविता कंचन कामिनी, करैं कृपा की कोर।
हाथ पसारै कौन फिर, वहि अनन्त की ओर ॥९९॥

नन्द – नंद सुख – कन्द कौ, मन्द हँसत मुख – चन्द।
नसत दन्द – छलछंद – तम, जगत जगत आनंद ॥१००॥

९६–पहार=पहाड़। ९७–पियूख=अमृत=बिसहिँ=विष को।

९८–प्रफुल्लचँद=बंगाल के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता प्रफुलचन्द्र राय जी। कला, ताप प्रफुल्ल तथा प्रफुल्ल ये चारो श्लिष्ट पद हैं।

९९–कंचन=धन, सोना। कामिनी=सुन्दर स्त्री। अनंत=स्वर्ग।

१००–दंद=छन्द।

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

आधुनिक काल के भावप्रधान कवियों में पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का स्थान उच्च है। आपकी कविताओं में जो मादकता और उन्माद है वह अन्य कवियों की कृतियों में मिलना दुर्लभ है। गीति काव्य के प्रधान गायक इस कवि ने दोहे भी रचे हैं, यह हिन्दी भाषा और दोहा साहित्य का सौभाग्य है।

'नवीन' जी का जन्म संवत् १९५४ वि० में ग्वालियर राज्यान्तर्गत शाजापुर में हुआ था। आपके पिता पं० यमुनादास शर्मा कृष्णोपासक कट्टर वैष्णव सम्प्रदायी थे।

'नवीन' जी की प्रारम्भिक शिक्षा इनकी जन्मभूमि शाजापुर में हुई। इसके पश्चात् माधव कालेज उज्जैन से आपने इन्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण की।

आपकी साहित्यिक प्रतिभा सूर साहित्य मर्मज्ञ श्री दामोदरदास झालाणी के संसर्ग से प्रस्फुटित हूई।

आपके हृदय में राष्ट्रीय भावना प्रारम्भ से ही थी। उसीसे प्रभावित होकर आप सन् १९१६ ई० में भारतीय कांग्रेस का अधिवेशन देखने लखनऊ गये। वहीं पर अन्य नेताओं के साथ-साथ 'प्रताप' के यशस्वी सम्पादक और सञ्चालक श्री गणेश शंकर विद्यार्थी से भी आपका परिचय हुआ।

इन्ट्रेन्स पास करने के पश्चात् 'नवीन' जी कानपुर पधारे और श्री गणेशशंकर जी की संरक्षता में क्राइस्ट चर्च कालेज में शिक्षा प्राप्त करने लगे।

बी० ए० परीक्षा का अन्तिम वर्ष था। महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन छिड़ने पर आप कालेज से पढ़ाई छोड़कर सार्वजनिक क्षेत्र में कूद पड़े। देश सेवा के साथ-साथ 'प्रताप' और 'प्रभा' नामक मासिक पत्रिका का भी सम्पादन किया।

कानपुर के राष्ट्रीय जीवन में श्रद्धेय गणेश शंकर विद्यार्थी के आप सदा दाहिने हाथ रहे। सन् १९३१ में उनके निधन के पश्चात् उन्हें कानपुर नगर

के एकमात्र नेता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस राष्ट्रीय जीवन में उन्हें पूर्ण सफलता मिली। अनेक बार आपको जेल-यातनाएँ भुगतनी पड़ीं।

'नवीन' जी कुशल वक्ता और योग्य सभा सञ्चालक हैं। अपने ओजस्वी भाषण के कारण कानपुर के राष्ट्रीय जीवन के साथ-साथ भारतीय नेताओं में आपका अच्छा स्थान है। विश्व वन्द्य बापू के निधन पर रेडियों में दिये गये आप के भाषणों का देश में अच्छा प्रभाव पड़ा, जिससे देश भर में आपके कुशल वक्ता होने की धाक जम गई।

आप केन्द्रीय धारा सभा और भारतीय विधान परिषद के ख्यातनामा सदस्य हैं।

हिन्दी में संस्कृत-मिश्रित शैली के कट्टर समर्थक हैं।

आपका कविता काल १९१८ ई० से प्रारम्भ होता है। 'नवीन' जी गद्य तथा पद्य दोनों के प्रसिद्ध लेखक हैं। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर जो कुछ भी आपने लिखा है वह भाषा और विचार की दृष्टि से उच्चकोटि का स्थायी साहित्य हैं।

'नवीन' जी सफल दोहाकार भी हैं। 'विस्मृता उर्मिला' नामक महाकाव्य में अपने एक सर्ग दोहा छन्दों में ही लिखा है जिसमें लगभग सात सौ दोहे हैं। इसके अतिरिक्त फुटकर दोहे भी आप ने लिखे हैं।

दोहों में भी आप की काव्य-मादकता, उन्माद और मस्ती झलकती है। उनमें ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण विशेष मात्रा में विद्यमान हैं। साथ ही साथ सामयिकता की भी गहरी छाप है।

'नवीन' जी अन्तर्वेदना के गायक हैं। इस अन्तर्वेदना में कवि का व्यक्तित्व ओजस्विनी भावना से ओत-प्रोत है। यही अन्तर्वेदना कवि की जीवन-कसौटी है, जिसमें कवि का हृदय खरा उतरता है।

'नवीन' जी की भाषा में एक विशेषता है। भाषाशैली अटपटी और सुन्दर पहाड़ी के समान चढ़ावदार है, जिसके देखने से आनन्द और चढ़ने में कठिनायी भी प्रतीत होते हुये सुगम है।

भाषा के इस निर्माण में 'नवीन जी का अपना एक दृष्टिकोण है। वे संस्कृत मिश्रित शैली के समर्थक हैं। कोई भी भाषा-साहित्य-मर्मज्ञ 'नवीन' जी के काव्य और गद्य से उनका नाम बता सकता है, क्योंकि उनका व्यक्तित्व उसमें प्रत्यक्ष लक्षित होता है।

नवयुग के सफल गायक 'नवीन' जी का दोहा-साहित्य भी उनके व्यक्तित्व और भावनाओं से पूर्ण प्रभावित है। वे सफल दोहाकारों की श्रेणी में आगे बैठने के योग्य हैं।

❀

[दोहा]

जीवन–तरल–तरङ्गिणी, सूखि भई कृश–धार।
द्वेष–मत्त जग ने दियौ, यह निदाध–उपहार ॥ १ ॥
जग प्यासौं अवलोकि कैं, हम भरि लाए नीर।
फूटि गई गगरी, लगे उपालम्भ के तीर ॥ २ ॥
साँझ भई, सूरज भयौ, पश्चिम दिशि की ओर।
नभ अँधियारौ बढ़ि चल्यौ, हिय कसकी निशि चोर ॥ ३ ॥
सोच भयो हिय देखि कैं, अपनी जीवन साँझ।
दिन की घड़ियाँ रहि गईं, हाय बोझ की बाँझ ॥ ४ ॥
नेह दियौ निष्ठा सहित, पाई घृणा अपार।
सेवा कौ मेवा मिल्यौ, यह कृतघ्न व्योहार ॥ ५ ॥
बोल्यो नेह पपीहरा, जीवन तरु पर बैठि।
पिऊ ? पिऊ ? की ध्वनि गई, अन्तरिक्ष में पैठि ॥ ६ ॥
अरुणा भई विभावरी, ढूँढ़त पिउ की ठाँव।
कितै पिया की डगरिया, कितै पिया को गाँव ॥ ७ ॥
निखिल सौर मण्डल बन्यौ, सजन सुमिरनी काल।
घूर्षित त्रिभुवन रव भर्‌यो, नाम–स्मरण सब काल ॥ ८ ॥

रवि शशि तारक वृन्द लौं, गूँजि रह्यो पिय नाम।
ढूँढ़ि थके अणु-अणु उन्हें, पर न ढरे घनश्याम ॥ ९ ॥

[जीवन डगर]

नापत जीवन डगरिया, आइ गये इहि ठाँव।
हिम थाक्यो, जिय थकि गयौ, थके बापुरे पाँव ॥१०॥
दृग थाके अवलोकि कैं, मन अनन्त की लीक।
यह अहनिशि चलिबौ भयो, गति को स्वयं प्रतीक ॥११॥
अरुझानी मन भावना, मुरझानी हिय आस।
पथ की न-दूति विचार कै, सकुचि रह्यो उल्लास ॥१२॥
उन, जिन दीन्ही चरण गति, उन जिन दियो विकास।
उन, जिन पथ निर्मित कियौ, उनकौ कौन विसास ॥१३॥
मुरि देख्यौ गत पथ; मिले, द्वै पद चिह्न अनेक।
पै निज पग में ना मिली, चार चरण की रेख ॥१४॥
अपने बेगाने भये, कोऊ देत न संग।
जग जन क्यों यारी करें, जब हम नंग धड़ङ्ग ॥१५॥
जिन्हें दियो हिय नेह, वे, कब पूछत हम कौन।
कहा हमारो नाम है, कितै हमारो भौन ॥१६॥
पूछहु सब मिलि आज तुम, हमारो नामरु गाँव।
हम अनिकेतन जनम के, हमारो कहूँ न ठाँव ॥१७॥
पथ चलिबे की रंचहू, रही न अब जिय चाह।
शिथिल गाथ संश्लथ चरण, भङ्ग भयो उत्साह ॥१८॥
अब लौं आए चलत हम, पै न सर्‌यो कछु काम।
अपने पीतम की मिली, कहूँ न ठौर, न ठाम ॥१९॥
धिक ऐसो मग सञ्चरण, धिक यह पद-विन्यास।
जो न सकै पहुंचाय कछु, अपने पिय के पास ॥२०॥
जब इतनौ पथ चलि चुके, तव जिय उठ्यो विचार।
यह प्रवास असफल भयौ, यह जीवन निस्तार ॥२१॥

चिर जीवन इक जनम में, कैसे बाँधो जाय।
किमि अनन्त आकाश ग्रह, अञ्जलि बीच समाय ॥२२॥
बेदरदी दर-दर फिरे, तुव कारन हम दीन।
खोजत तुमको ह्वै गये, हम 'नवीन' प्राचीन ॥२३॥

[चिर रहस्य को रंग]

सहसा उठी अशेष की, मूक हूक हिय बीच।
कोहं ? कोहं ? कहि उठे, हम आतुर दृग मींच ॥२४॥
पूछत निज को भेद यह, बीत गये युग-कल्प।
तऊ न कछु उत्तर मिल्यौं, तोष न पायौ स्वल्प ॥२५॥
देखि निखिल ब्राह्माण्ड कौ, यह अहनिसि को रास।
अपनो हू चिर भ्रमण लखि, हिय नित रहत उदास ॥२६॥
भ्रमित सूर्य, उडुराजि, शशि, भ्रमित भूमि आकाश।
घूर्णित अणु-परमाणु सब, चक्रित शोणित-रास ॥२७॥
रास-चक्र में परिभ्रम, जड़ चेतन एक सङ्ग।
पै न खुल्यौ या भ्रमण के, चिर रहस्य को रङ्ग ॥२८॥
अहो कौन हम बावरे ?, कहा हमारो नाम।
हम पूछत या सृष्टि में, कौन हमारो काम ॥२९॥
या दिक-काल-प्रवाह की, द्रुत मण्डळ गति बीच।
कौन बिसासी नेह में, पटक्यो बरबस खींच ॥३०॥
परि कै सृजन प्रवाह में, हम पूछत हम कौन ?
ऊतर में कहि जात कोउ, तुम बुद-बुद तुम पौन ॥३१॥
हम न वारि-बुद-बुद क्षणिक, हम न पवन आगार।
फैल्यौ अगम अनादि लौं, अपनो कुल विस्तार ॥३२॥
दैहिक पिंजर-बद्ध हम, तदापि न सीमा युक्त।
हम हँसा आकास के, सन्तत बन्धन मुक्त ॥३३॥
निहचै आज थके रुँधे, विवश हमारे प्रान।
पै अबाध गतिवान हम, इतनों हमकौं भान ॥३४॥

हमें विवश लखि कहत सब, हम जड़ धूलि विकार।
पै हमकौं कबु यौं लगत, हम न जाड्य–विचार ॥३५॥
सब फीके परि जात हैं, तर्क विवाद विस्तार।
जब हिय तल तें उठत है, 'न–इति'–'न–इति' गुञ्जार ॥३६॥
कासों कहिये रञ्चहू, अपने मन की पीर।
कैसें बने दिखाइबौ, निज ही तल कौं चीर ॥३७॥
रटत नाम सुमिरन करत, बौरान्यो मन–कीर।
जोहत पथ इक टक सतत, उमङ्ग्यो नैनन नीर ॥३८॥
शिला खण्ड पै वैठि हम, नित हिय लोचन चीर।
देखि रहे जग–मग–चलत, इन पन्थिन की भीर ॥३९॥
हमे अहम आसन मिल्यो, मिली प्रतीक्षा पीर।
मिली उपेक्षा; औ मिले, उपालम्भ के तीर ॥४०॥
हमें बावरो कहत सब, जो हम जोहत बाट।
कहा कहैं ? कछुपरि गई, ऐसी रेख ललाट ॥४१॥
हम विषपायी जमन के, सहैं अबोल कुबोल।
मानत नैकु न अनख हम, जानत आपुन मोल ॥४२॥
अजहूँ कछु–कछु है स्मरण, वा मुख की मुसकान।
कबहूँ तो या पन्थ ह्वै, निकसैंगे रसखान ॥४३॥
कोलाहल मचि जाइगौ, उमड़ैंगी जन–भीर।
तब साजन रस–बस खिंचे, ढ़रकैंगे हम तीर ॥४४॥
विह्वल चरण पखारिहैं, ये युग नयन अधीर।
न्योछावर ह्वै जाइङ्गे, उन पै हम स–शरीर ॥४५॥
मैं, जब तक पिय ना ढ़रत, हुलस हमारी ओर।
तब तक हम रहिहैं सतत, गहे प्रतीक्षा डोर ॥४६॥
पंछी बोलत चैं चटक, सलिल करत कल नाद।
सब जग ध्वनिमय, ह्वै रह्यो, हमैं मौन उन्माद ॥४७॥
कहा कहैं ? कछु समझ हूँ, परत न कोऊ बात।
शब्द वापुरें सिमिटि कैं, सकुचि सकुचि रहि जात ॥४८॥

उठि-उठि आवत कण्ठ लौं, हिय उत्ताल तरङ्ग।
पै यह रसना बावरी, देत न बाकौ सङ्ग ॥४९॥
मौन रहहु जनि कछु कहहु, सहहु जगत अपवाद।
गूँगे ही तुम ह्वै रहौ, हे 'नवीन' अविवाद ॥५०॥
ये तब मौन अधर खुलें, वा छिन अरे 'नवीन'।
ता छिन पिय मुख परस तैं, हों तुव शब्द अदीन ॥५१॥

[राग विराग]

हंसा उड़े अकास में, पै नहिं छूट्यो द्वन्द।
मन अरुझान्यौ ही रह्यौ, मान सरोवर कन्द ॥५२॥
हम विराग आकास में, बहुत उड़े दिन रैन।
पै मन पिय-पग-राग में, लिपटि रह्यौ बेचैन ॥५३॥
हम सेन्द्रिय बनिबे चले, निपट निरिन्द्रिय रूप।
इत, मन बोल्यो, बावरे, पिय को रूप अनूप ॥५४॥
व्यर्थ भये, असफल भये, योग साधना यत्न।
कौन समेटे धूरि जब, मन में पिय सों रत्न ॥५५॥
कहँ धूनी कीं राख यह ?, कहँ पिय-चरण-पराग ?।
कहाँ बापुरी विरति यह ?, कहाँ स्नेह, रस, राग ? ॥५६॥
प्रिय, हम तैं या देह सों, सधै गौं न बैराग।
फीके-फीके सो लगत, सबै जोग-जप-जाग ॥५७॥
सदा राउरी अर्चना, सन्तत राउर ध्यान।
राउर ढ़िग रहिबी ललकि, यही हमारी बान ॥५८॥
कबहुँ बेणी गूँथिये, कबहुँ चापियं पायँ।
कबहुँ अधर रस चाखिये, तब नवीन हरषायँ ॥५९॥
खीझि रह्यो तुम एक दिन, कि हम बड़े बेकाम।
ठीक हमारो काम है, बिकि जैबो बेदाम ॥६०॥
तुम्हैं खिझाय रिझाइबौ, दुलरैवो प्रतियाम।
सतत बलैया लेइबो, यही हमारो काम ॥६१॥

तुम बोलै—निलज्ज हम, हमें न लौकिक लाज।
पै हमने यह कब कही, कि हम लोक-सिरताज ॥६२॥
खीजहु मत, रंचक सुनहु, ओ सलज्ज-सरदार।
हमरे दृग में लखि तुम्हे, बिहँसि रह्यो संसार ॥६३॥
नैनन में मन प्राण में, रोम-रोम में आज।
चौंडे ही तुम रमि रहे, कितैं तिहारी लाज ॥६४॥
जो तुम लज्जा शील तौं, क्यों न हिये तें जाहु ?।
प्रीत न छानी रहि सकत, सजन अब न शरमाहु ॥६५॥
जब हम माँगत अधर रस, तबही तुम मुसकात।
फिर नाहीं करि देत हौ, कहहु लौन यह बात ॥६६॥
हम नितान्त बौड़म बजत, बीते बरस अनेक।
मारे मारे हम फिरे, रहे एक के एक ॥६७॥
प्राण, नयन, मन, श्रवण, तन, अर्पण कौं अकुलात।
पे साजन नहिं ढ़रत इत, जीवन बीत्यौ जात ॥६८॥
का योंही रहि जायगी, प्राण समर्पण टेक ?।
मो ललाट की रेख तू, कहुरी कछु तौ नेक ॥६९॥
कौन पूर्व कृत करम में, आड़े आए आज।
जो न पधारत प्रेम-घन, अपने जन के काज ॥७०॥
हम तौ ढूंढ़त हैं पियहिं, गहरे पानी पैठि।
वै गहराई छाँड़ि कै, रहे किनारे बैठि ॥७१॥
अपने पिय कौ ढूँढ़िबे, हम तौ उड़त अकास।
वे भूतल की गलिन में, करत रहत उपहास ॥७२॥
हम उत, वे इत चलत हैं, हम इत, वे उत जात।
योही इत-उत में सतत, बीतत है दिन-रात ॥७३॥
जे पग हम राखत हिये, जे पग लखे न काहु।
उन पग गज-गति चलत तुम, आहु सजन गृह आहु ॥७४॥
कुहकी कोयल मद भरी, इन आमन की डालि।
बगिया में ढ़रि हृदय के, कण्टक लेहु निकालि ॥७५॥

[श्री शिवनारायण मिश्र के निधन पर]

नट आयो रँगभूमि में, धरि कैं रूप अनेक।
नाच-नाचि पुनि चलि बस्यो, इक दिन एका एक ॥७६॥
नट नाच्यो सब कहि उठे, यह नट बड़ो प्रवीन।
नट थाक्यो तादिन भये, दर्शक तेरह-तीन ॥७७॥
नट आयौ रोयौ हँस्यौ, सबहिं रुवाय हँसाय।
नट पट बदल्यौ, लखि रहे, सब दर्शक निरुपाय ॥७८॥
नट यह आयौ यह गयौ, यह छिन भर कौ मोह।
कासों नातौ मानिये, कासों छोह विछोह ॥७९॥
एक यवनिका पतन तैं, सूनो होत न मंच।
रंगभूमि जग की विशद, ऊनी रहत न रंच ॥८०॥
लगी खबरिया चलि भए, ते पँचरंगी मीत।
या पँचरंगी जगत की, कहौ जु कौन प्रतीत ॥८१॥
बनि बिगरत इक निमिष में, इन्द्रधनुष के रंग।
त्यों बनि बिगरत रहत है, जन जीवन के संग ॥८२॥
सुनि उनके प्रस्थान की, उठी हिये में हूक।
दृग पथराए से भये, भयौ हृदय द्वै टूक ॥८३॥
अपने या हिय कीं बिथा, कैसै बरनी जाय।
वाकौं कैसै कहि सकैं, शब्द-दीन निरुपाय ॥८४॥
हिय पूछत जीवन कहाँ ?, कहाँ काल कौ कोर।
कहा-काल की परिधि में, जीवन रहत अथोर ॥८५॥
ये कछु बत्सर है कहा, जीवन कौ इतिहास।
चिर जीवन कौ करत हैं, कहा काल उपहास ॥८६॥
आवत क्यों चलि देत क्यों, क्यों यह ठेल-पठेल।
क्यों आवागमन कौ, होत रहतु है खेल ॥८७॥
हिय अकुलायौई रहत, ऊतर मिलत न एक।
मति डोलत विभ्रम निरत, पावत मन न विवेक ॥८८॥

यदि जीवन है व्यर्थ कौ, समय-बद्ध अभिशाप।
तब फिर यह कैसी विथा, तब क्यों यह सन्ताप ॥८९॥
देखत ही देखत मुँदे, वे अनियारे नैन।
मौन भये छिन एक में, सलज रसीले बैन ॥९०॥
शरद जुन्हाई अब कहाँ, कहाँ बसन्त उछाह।
जीवन में अब बचि रह्यो, चिर निदाघ कौ दाह ॥९१॥
जीवन के मधु स्वप्न वे, हास-लास-रस-रङ्ग।
सकल तिरोहित ह्वै गयै, प्राण तिहारे सङ्ग ॥९२॥
स्मृति तैं ह्वै जात है, मानस में कल्लोल।
नैनन तें बहि बहि उठत, अबस अबोले बोल ॥९३॥
यह जीवन की दुपहरी, भई अटपटी साँझ।
तम की झाँई परि गई, तुम बिन या हिय माँझ ॥९४॥
जिय सूनौ, सूनौ हृदय, तन मन प्राण उदास।
भली भई तुम सँग गई, जीवन की सुख आस ॥९५॥
वा तन की केवल भसम, आज बचि रही शेष।
यह परिवर्तन ठाढ़ हम, लखत रहे अनिमेष ॥९६॥
धू-धू करिके बरि उठी, उतै चिता की आग।
इति हिय धधकी होलिका, बिन फागुन बिन फाग ॥९७॥
मानव ने नव जनम कौ, लख्यौ प्रात को हास।
पुनि वाते जन्मान्त कौ, लख्यौ उदास अकास ॥९८॥
अब तौ तुम बिन दृगन में, भरी रहैगी रात।
एक कहानी ह्वै गई, अब प्रभात की बात ।९९॥
बसी रहै तव हृदय मे, संस्मृति वनी अनूप।
सरसावहु मन गगन बिच, कछु छाया कछु धूप ॥१००॥

———

राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा'

[चितचोर]

आधुनिक काल के दोहाकारों में पं० राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा', जिन्होंने दोहों में अपना उपनाम 'चितचोर' रक्खा है, विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

शुक्ल जी का जन्म कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी मंगलवार संवत् १९५५ वि० में फरुखाबाद जिलान्तर्गत ग्राम परसूपुर उनके ननिहाल में हुआ था। इनके पूर्वज मन्धना जिला कानपुर के निवासी थे। पिता का नाम पं० सूर्यप्रसाद शुक्ल था। अधिकतर इनका बाल्यकाल इनके ननिहाल ही में व्यतीत हुआ।

शुक्ल जी की शिक्षा खण्डवा मध्यप्रदेश में हुई। वहीं पं० गणेशराम मिश्र प्रसिद्ध चित्रकार से इन्होंने काव्य ग्रन्थ पढ़े। इनके काव्यगुरु भी थे। सन् १९१९ ई० में दयानन्द एङ्गलो वैदिक हाई स्कूल, कानपुर में आप हिन्दी के प्रधान अध्यापक होकर आये और जीवनपर्यन्त वहीं रहे।

दोहाकारों की प्राचीन और आधुनिक शैली और उनके विषयक्रम पर यदि हम दृष्टिपात करें तो शुक्ल जी को एक मौलिक दिशा की ओर अग्रसर होते हुए पावेंगे। आधुनिकता का ध्यान रखते हुए वास्तव में शुक्ल जी ने जो प्रयास किया है, इसके लिए वे बधाई के पात्र हैं।

दोहों की लेखन-प्रणाली, विषयक्रम और संख्या को देखते हुए यह पता चलता है कि न तो वे सतसईकार हैं और न हजाराकार। आपका विषय और लेखन-प्रणाली नितान्त मौलिक और नवीन है। आपने फुटकर दोहों को छोड़कर 'आँखों' पर ही लिखे गये हैं, किन्तु उनमें भी विशेषता यह है कि आँखों के ही आधार पर शुक्ल जी ने किसी विषय रस को नहीं छोड़ा है। यह ग्रन्थ हिन्दी भाषा-भण्डार की अमूल्य निधि है।

ग्रन्थ की रचना खड़ी बोली में हुई है। खड़ी बोली का विशिष्ट परिमार्जित रूप देने तथा शब्द-मैत्री के निर्बाह में शुक्ल जी सहयोग प्रशंसनीय है।

कहीं-कहीं, भाषा का सरल रूप और वाक्यों की शीघ्रगामिता से पाठक का हृदय ऊब कर गम्भीर और क्लिष्ट भाषा शैली के प्रयोग की आशा अवश्य करता है, किन्तु यह आशा उसी समय बलवती होती है जब शुक्ल जी की आँखें किसी गम्भीर विषय को देखने लगती हैं।

शब्दों के कलात्मक रूप में यत्र-तत्र अलङ्कारों की छटा दिखाते हुए शुक्ल जी ने भाषा को जनसाधारण के समक्ष पहुँचाने का जो प्रयत्न किया है उसमें उन्हें पुर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

'राष्ट्रीय आत्मा' के नाम से आप राष्ट्रीय कविताओं के लिए प्रख्यात हैं।

'मुक्ति की युक्ति' 'विधवा', और 'जीवन' नामक पुस्तकें आपकी प्रकाशित हो चुकी हैं। 'पद्यपञ्चामृत' 'स्वाधीनता', 'प्रकृवि प्रतिमा', 'छाया', 'मंगलमाला', जिसमें हनुमान जी की स्तुति है, पुस्तकें अभी अप्रकाशित हैं।

शुक्ल जी एकान्त साहित्य सेवी, हिन्दी माता के अनन्य भक्त और प्रचारक तथा बड़े ही सहृदय एवं भावुक व्यक्ति थे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सरस्वती-देवी जी भी एक विदुषी महिला थी। शुक्ल जी ने इन्हीं के नाम से 'सरस्वती पुस्तकालय' और वाचनालय की स्थापना अपने निजी भवन में की थी, जिससे आपका हिन्दी प्रेम अक्षुण्य बना रहेगा।

आपका स्मारक राजाराम सरस्वती विद्यालय वर्तमान समय में जनता की अच्छी सेवा कर रहा है और है आपने अपनी सारी सम्पत्ति इसी विद्यालय में लगा दी थी।

शुक्ल जी हिन्दी के प्रकाण्ड पण्डित और महाकवि थे। उनका नाम हिन्दी संसार में अमर रहेगा।

✿

[दोहा]

मेरी आँखो में रमें, रम्य राम धनश्याम।
रुचिर रूप रस रंग सुख, बरसाये अविराम ॥ १ ॥
आँखो का अन्जन बने, तव स्वरूप घनश्याम।
मन-रंजन, शुभगुण सदन, भवभंजन अभिराम ॥ २ ॥
जो पल पल में हों स्वंय, सानुकूल - प्रतिकूल।
उन नयनों की वन्दना, वन्दे कभी न भूल ॥ ३ ॥
श्री युत शुक्राचार्य से, शक्र - शेष पर्यन्त।
सब के लोचन पूज्य मम, एक अनेक अनन्त ॥ ४ ॥
लोचन तुम चंचल - चतुर, मेरी गति मति मन्द।
हारा हूँ हा हा करूँ, लिख-लिख दोहा छन्द ॥ ५ ॥
इधर उधर फिर फिर थका, बैठ रहा मन-मार।
दृग ! तव चंचलता निरख, मान गया मन हार ॥ ६ ॥
है यह आँखो का विषय, मैं अतिशय मति-अन्ध।
शकित हूँ अंकित करूँ, कैसे ललित निबन्ध ॥ ७ ॥
आँखे होंगी साथ में, जाऊँगा जिस ओर।
ये मेरी हृदयेश्वरी, मैं इनका 'चितचोर' ॥ ८ ॥
ज्ञानांधों को देख कर, बोल रहे हैं बोल।
अब आँखे विकने लगीं, ले ले आखे मोल ॥ ९ ॥
मेरी आँखों के रसिक, होते खूब निहाल।
यह आँखे उनके लिये, दी हैं आज निकाल ॥१०॥
यदि मुझको मिल जाय तो, लूँ कवि के कर चूम।
आँखों के संसार में, खूब मचाथी धूम ॥११॥
तो मानव नित तव प्रथम, क्यों पाते परिताप।
आँखो का आख्यान यदि, लिख दिखलाते आप ॥१२॥
ऐ नटनागर ! सिर पटक, समझ प्रकट परिणाम।
अन्धों में करने चला, दृग अभिनय अभिराम ॥१३॥

चित्रकार ! कैसे चले, यह विचित्र व्यापार।
चक्षु-चित्र लाया जहाँ, अन्धों का बाजार। ॥१४॥
अभी अन्धविश्वास का, छोड़ा नहीं स्वभाव।
आँखों देखे दृश्य का, कैसे पड़े प्रभाव ॥१५॥
नम्र निवेदन कर रहा, बार-बार यह दीन।
आखों की आलोचना, करें न लोचन हीन ॥१६॥
जाती है, सब ओर को, पथिक, दृगों से राह।
कहो कहाँ की सैर की, किये हुए हो चाह ॥१७॥
आँखो की ही है तुला, आँखों के ही बाँट।
आँखों का ही माल है, आँखो की ही हाट ॥१८॥
आँखो के आवास में, आँखो का ही बास।
आँखे ही हैं स्वामिनि, आँखे दासी - दास ॥१९॥
जिन्हें अर्थ से अर्थ है, नहीं अर्थ से अर्थ।
मलिन मक्षिका - वृत्ति के, हैं अनेक दृग व्यर्थ ॥२०॥
आँखों वाले अल्प हैं, हैं असंख्य जन अन्ध।
थोड़े हैं सुरभित सुमन, अमित कुसुम र्निगंध ॥२१॥
देख न सका विशेष कुछ, पक्ष नयन रख मोर।
पाकर कोष कुबेर का, रहा चोर का चोर ॥२२॥
ऐसे कैसे हो कहा, दृग वालों में लेख।
जो दिखलायें अन्य जन, वही सकें हम देख ॥२३॥
भले और की हों भली, अनियारी अभिराम।
अपनी ही आँखे सदा, देंतीं अपना काम ॥२४॥
पलक-पटी, पुतली-नटी, कल-कटाक्ष-नट संग।
भाव पात्र, रस सूत्रधर, रंगभूमि दृग अंग ॥२५॥
अड़ते उत्कट सुभट बन, पड़ते सहसा टूट।
ले ही जाते हृदय धन, नयन - लुटेरे लूट ॥२६॥
आनन-आज्ञा-पत्र पर, आँखें मुहर समान।
प्रेम - प्रदेश - प्रवेश के, साधन यही महान ॥२७॥

प्रकटी, सटी, उटी, हटी, चला चित्त पर चोट।
छिपी, छटी पुतली–नटी, पलक-पटौ कौ ओट ।।२८।।
लाल–लाल डोरे नहीं, प्रेम-पन्थ की रेख।
हैं रसिकों के रुधिर से, अरुण हो रहे देख ।।२९।।
दाँव घात प्रतिघात गति, क्षण-वगली, क्षण–छूट।
सीख रहे रति–रप–क्रिया, नयन नये रँगरूट ।।३०।।
मुख ढ़क कर करतीं अभी, आँख बचाकर बात।
तो भी हैं करने लगीं, बात-बात में मात ।।३१।।
हरि-मुख छवि लख, लग गये, तन की सुध बुध भूल।
चन्द्रमुखी के दृग बने, सूर्यमुखी के फूल ।।३२।।
सीखे यौवन-व्याध से, खन्जन - नयन कमाल।
अम्दर वसे फँसा रहे, सुर, नर, मुनि बिन जाल ।।३३।।
आँखो पर आँखें बिकी, श्रवण विके सुन वोल।
जीवन पर जीवन बिका, हृदय हृदय का मोल ।।३४।।
अलग हुए लग कर नयन, लगा न कुछ भी हाथ।
वे आमोद-प्रमोद सब, लगा ले गए साथ ।।३५।।
अपने शील-स्वभाव का, डाल अचूक प्रभाव।
करा गये अनुभव नयन, मन में एक अभाव ।।३६।।
पलक अधर-पट खोल कर, लपक झपक छुक झूम।
परम रसिक लोचन मधुप, गये कमल मुख चूम ।।३७।।
पाओ सब सहवास सुख, वस अव बस कर साथ।
बहुत दिवस तक हो चुकी, आँख मिचौनी नाथ ।।३८।।
तुन्हें देखने की कमी, पूरी हुई न साध।
चल पलकें बाधक हई, ठहरी घड़ी न आध ।।३९।।
जब तुमने अपनी नजर, फेरी मेरी ओर।
उत्सुक होकर सृष्टि सब, हेरी मेरी ओर ।।४०।।
बिन. बन्धन अपराध बिन, बाँध लिया मजबूत।
अजब अनोखी आप की, आँखों की करतूत ।।४१।।

चित्त चुरा चुपचाप ये, करती विकल वियोग।
क्यों न चलाऊँ आपकी, आँखो पर अभियोग ॥४२॥
सब के सन्मुख आप जब, गये दृगों में बैठ।
लुक छिप कर तब क्यों रहे, अन्तःपुर में बैठ ॥४३॥
अवलम्बित तव दृष्टि पर, प्रिये प्रैम-संसार।
जब जो जी चाहे करो, सृजन, भरण संहार ॥४४॥
तव क्यों कर रुचिकर रहे, मन-महीप को शान्ति।
जब कि किसी दृग-देश में, मची हुई हो क्रान्ति ॥४५॥
घूँघट से बाहर निकल, वह कुछ लिया निकाल।
डाल नजर तिरछी गई, आँखे जादू डाल ॥४६॥
मृगनैनी मत भूल तू, मृग तृष्णा की ओर।
पीतम के बिधु वदन रत, कर निज नयन चकोर ॥४७॥
सोच समझ कर शशिमुखी, इनकी गति विधि रोक।
आँखे लगने से प्रथम, लगता है अप लोक ॥४८॥
बरस रहे मोती वहाँ, चल देखिये समीप।
हैं उसके लोचन बने, जलधि, जलद, जल सीप ॥४९॥
पिला प्रेम पीयूष अब, रहे बिरह-विष बोर।
लगे चुराने आँख भी, तुम तो दे 'चितचोर' ॥५०॥
लाल न यों लोचन करो, लाल न बनो अधीर।
अभी लालना योग्य है, ललना ललित शरीर ॥५१॥
सुमन शरासन, सुमन शर, सज सरोज की फौज।
कर लें रस रस समार सर, है मनोज की मौज ॥५२॥
कर अभिलाषा मिलन की, यदि न बने दृग धीर।
नयन-नीर की धार में, तो बह जाय शरीर ॥५३॥
दृग विनिमय का प्रेम मय, नया निराला ढंग।
बदल लिये फिर भी रहे, अपने अपने संग ॥५४॥
प्रेम दृष्टि की माधुरी, अधर-माधुरी सान।
रूप माधुरी से मधुर, करा रहीं जलपान ॥५५॥

दिये परम सम्मान से, दिखा मधुर मुसकान।
प्रेम-लसेटे नयन कर, प्रेम-लपेटे पान ॥५६॥

आँखों से बहता रहा, अश्रु प्रवाह पवित्र।
बना रहा फिर भी यहाँ, मंजु मित्र का चित्र ॥५७॥

दर्शन बिन व्याकुल नयन, किये शरीर अधीर।
विरह वह्नि रोदन सलिल, श्वासोच्छास समीर ॥५८॥

जिस रस से संयोग में, था उर ओत-प्रोत।
वह वियोग में बह चला, पाकर लोचन स्रोत ॥५९॥

इधर आह निकली उधर, फड़के लोचन लोल।
धधक चुका ज्वालामुखी, तब आया भूडोल ॥६०॥

प्यास बुझाता था सदा, कर अधरासव पान।
आसू पीकर अब प्रिये, बचा रहा हूँ जान॥ ६१॥

जब तक मुख सम्मुख रहा, सम्मुख सब संसार।
आँखे फेरी फिर गया, सहसा अब संसार ॥६२॥

कुंजबिहारी कुंज में, हरि हरि में बसुयाम।
गिरधर गिरि में देखतीं, ये घन में घनश्याम॥ ६३॥

हरि आगम सुन खिल गये, नवल-नयन जल जात।
विगत विरह वर्षा निशा, आया शरद प्रभात ॥६४॥

मधुप म्लान सकुचे कमल, विंकल कोक तन-ओक।
मंजुल मिलन प्रभात से, मिटे सभी का शोक ॥६५॥

प्रिय बिन हास विलास वह, और न न बदन विकास।
अब बसन्त के बास में, पावस किये निवास ॥६६॥

मंजु प्रभा सी मुख-प्रभा, उषा सदृश मुसकान।
लखि दिन सी द्युति खिल गये, नयन सरोज समान ॥६७॥

सदा एक ही सी रहे, यदि आँखो की सूझ।
अन्ध कूप में पतित हो, क्यों जायें जन जूझ ॥६८॥

हैं कहने को अमित जन, नहीं काम के एक।
मोर पक्ष पर व्यर्थ हैं, जैसे नयन अनेक ॥७९॥

दृग नीचे रख कर चलो, ऊँचे हो सानन्द।
आँख उठा कर देखना, समझ पतन का फंद ॥७०॥

नागर नर! संसार को, इसी प्रकार निहार।
ज्यों-ज्यों हो नीचे नयन, त्यों त्यों - उच्च विचार ॥७१॥

दृग! तुम भी जगते रहो, है इसका जग नाम।
सोना तो रोना न फिर, गवाँ धर्म, धन, धान ॥७२॥

आँखो से होता प्रकट, यों मानव-मन-मैल।
लहर छहर देता दिखा, ज्यों पानी पर तैल ॥७३॥

शासन करते जगत पर, बिन सिंहासन तान।
तेज अयन निर्भय नयन, पंचानन शिवराज ॥७४॥

वादल बन बरसे नयन, दे तन-ताप-प्रमाण।
पिघल नहीं सकते तनिक, निष्ठुर - उर - पाषाण ॥७५॥

क्यों न पतित परतन्त्र नर, चलें नितचली गैल।
आँखों में पट्टी नहीं, हैं तेली के बैल ॥७६॥

लेते हो क्यों मोल ये, चिथड़े देकर दाम।
आँखो के अन्धे बने, धरे नैनसुख नाम ॥७७॥

टेढ़ी मेढ़ी चाल के, टेढ़े मेढ़े भाव।
ऐंची तानी आख के, ये प्रत्यक्ष प्रभाव ॥७८॥

कैंची आँचे प्रेम-पट, नये काट से काट।
बड़े ठाठ के साथ है, सजा रहीं तन हाट ॥७९॥

नीरज रज-कण भी जिन्हें, देते हैं अतिल्केश।
उन नयनों में घर बना, वसते हैं रसिकेश ॥८०॥

अधिक अवुध बन, अमित जन, भूल जाति हित पाँती।
आँखों से पिस मिस गये, धुन मुनगों की भाँति ॥८१॥

तज कर अरि-दल-बल-दलन, रहे परस्पर जूझ।
सूझ रहा है क्या तुम्हें, यही रहा हूँ बूझ ॥८२॥

जगती है उस जाति की, जीवन-ज्योति अडोल।
जगती में जगती सदा, जो निज लोचन खोल ॥८३॥

पड़े रहे घर में गड़े, रत्न यत्न बिन दूर।
सुरमा आँखो में बसा, होकर चकनाचूर ॥८४॥

बिकट कष्ट भोगे विना, सुलभ कहाँ सुख योग।
कटु अञ्जन ही काटता, दुखद दृगों के रोग ॥८५॥

जिन्हें न मिला अरूप के, विश्वरूप का स्वाद।
लोचन ! भाया है उन्हें, छाया - माया - वाद ॥८६॥

सम्मुख सके न देख तब, शत्रु सभीत सशंक।
कहाँ गया वह हाय अब, आँखो का आतंक ॥८७॥

व्याकुलता वर्द्धक यथा, तप्त तैल की वृष्टि।
होती हैं इतनी दुखद, एक घृणा की दृष्टि ॥८८॥

निर्विकार तव नीति में, यदि आता न विकार।
दुर्जन नयनों के न तो, बनते सुजन शिकार ॥८९॥

श्रम दुर्लभ बिन श्रम सुलभ, अशन बसन आगार।
समदर्शी यह विश्व का, वड़ा विषम व्यापार ॥९०॥

खल जन तन-तन कर चलें, कर नित नूतन पाप।
पुरुष पुरातन् क्या करे, देख रहा चुपचाप ॥९१॥

तू किसका मुंह ताकता, अरे क्षुधित अनजान।
विश्व भरण अव तज चुका, विश्वम्भर भगवान ॥९२॥

रोरो दृग भर दें उसे, सह सव संकट भूख।
करुणा सागर का गया, करुणा-सागर सूख ॥९३॥

विश्व रूप जग रूप में, तव स्वरूप अवराध।
बतलाओ तो क्या किया, आँखो ने अपराध ॥९४॥

देख रहा हुँ जगत सब, यही धारणा धार।
विश्व विलोचन से कहीं, लोचन होंगे चार ॥९५॥

दृग तुम उसकी दृष्टि से, जोड़ो निज सम्वन्ध।
जिस दर्शक के सामने, सब दर्शक हैं अन्ध ॥९६॥

लूटें तो लूटें नयन, निशिदिन ब्रह्मानन्द।
छूटें राज-समाज-भय, टूटे माया फन्द ॥९७॥

आँखों में देखो न अब, रुचिर रूप की रेख।
जो आँखो में देखता, उस दर्शक की देख ॥९८॥

विकट कंटकाकीर्ण है, कानन कठिन कुसंग।
चले चौकड़ी भर कहाँ, लोचन ! कुटिल कुरंग ॥९९॥

लिये रामनामी सुकर, बोलरहा मुख राम।
देह रामनामी रमी, नयन रमा - सी वाम ॥१००॥

पं० राधावल्लभ पाण्डेय

[बन्धु]

हिन्दी के आधुनिक दोहाकारों में 'बन्धु' जी अपनी विशेषता के कारण प्रसिद्ध हैं। यह निस्वार्थ साहित्यसेवी और हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए प्रसिद्ध थे। यह आतमविज्ञापन से दूर एकान्त सेवी व्यक्ति थे।

बन्धु जी का जन्म गाँव मसवासी जिला उन्नाव में भाद्रपद शुक्ल पंचमी (ऋषि पंचमी) सं० १९४५ वि० में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० बल्देव प्रसाद पाण्डेय था। इनकी शिक्षा नार्मल तक हुई थी, किन्तु पाण्डेय जी ने अपने परिश्रम से हिन्दी, उर्दु, फारसी तथा संस्कृत में अच्छा ज्ञान अर्जन कर लिया था। इन भाषाओं पर इनका अच्छा अधिकार था।

बन्धु जी सुधारवादी विचार के सरल, मिलनसार और निस्पृह स्वभाव के थे। शिक्षा विभाग में अध्यापक होते हुए जिले के यशस्वी व्यक्तियों में थे। हिन्दी शिक्षा प्रसार इनके जीवन का ध्येय था। इससे इनके अनेक शिष्य थे। यह ग्राम में ही राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार हेतु 'साहित्याश्रम' की स्थापना करके उसे अच्छे पुस्तकालय के रूप में परिर्वातित कर दिया था, जो अभी तक उनके सुयोग्य पुत्रों द्वारा सुरक्षित है तथा ग्राम वासियों की सेवा कर रहा है।

बन्धु जी काव्यमर्मज्ञ और अच्छे कवि थे। अन्य। छन्दों के अतिरिक्त दोहा छन्द में इन्हें काव्य-नैपुण्य प्राप्त था। इनके दोहो का प्रकाशन आचार्य 'सनेही' जी ने अपने काव्य विषयक पत्र सुकवि में प्रचुर मात्रा में किया है। इनकी 'राष्ट्रीय गीत' पुस्तक प्रकाशित हैं। इनके अतिरिक्त 'बन्धु विनोद,' 'बन्धु वचनामृत,' 'ऋतु विलास' तथा 'रोटी' भी प्रणयन कर चुके हैं।

बन्धु जी का हिन्दी दोहाकारों में अच्छा स्थान सुरक्षित है।

❀

[दोहा]

जन्म भूमि सेवत सुजन, धरम जाय बरु छूटि।
सुरन संवारी सुरपुरी, रतना कर को लूटि ॥ १ ॥
बन्धु न स्वर्गंहु मे सुलभ, जन्म भूमि को स्वाद।
तब तो लक्षिमी ताहि तजि, किये सिंधु आबाद ॥ २ ॥
बार वार रवि करन गहि, नभ पर धरत उठाय।
गिरि-गिरि,बहि-बहिबारि तउ, बन्धु सिंधु में जाय ॥ ३ ॥
जनम-भूमि को प्रेम तो, माटिहु माहिं लखाय।
ढेला फेंको गगन में, गिरत भूमि पर आय ॥ ४॥
विजय सबल की होत है, नित्य निबल की हार।
सबल गठित भई जब प्रजा, नस्यो सदल बल जार ॥ ५ ॥
तपो वली गुनि शाप भय, भूपन पूजे पाँय।
वेई द्विज अब सूद से, बल विन धक्के खाँय ॥ ६ ॥
होत निवलता में कबहु, जो कछु तारन जोग।
तौ को पूछत गाय को, अजा पुजावत लोग ॥ ७ ॥
निबल सिद्ध करि आप को, हनत न रावण कंस।
राम कृष्ण को नाम तौ, होत न आज प्रशंस ॥ ८ ॥
चलत न कछु बल निबल को, बनत सवल को कौर।
चूहा कबहुँ न धरि सकत, बिकट म्याउँ को ठौर ॥ ९ ॥
खुद न बने जो ताहि को, सकत गुलाम बनाय।
चढ़ि ले कोऊ सिंह पै, भला लगाम लगाय ॥१०॥
सव बिधि सब सों है वड़ो, होत यहै मृगराज।
जो न वड़प्पन वोरतो, बनि गुलाब गजराज ॥११॥
नहिं पर हाथन अन्न जल, नहिं कौरन पर हार।
ग्राम सिंह सो तो भले, सहज स्वतन्त्र सियार ॥१२॥
ज्ञान वघारे कौन फल, पाँव परो जो काठ।
बन्दी शुक मुक्ति न लहत, राम नाम के पाठ ॥१३॥

बल बिन बन्धु न बनि सकत, दीन बन्धु भगवान।
बनि नृसिंह प्रह्लाद के, राखि सके प्रभु प्रान ॥१४॥
बन्धु निबल जो करि सकत, कहूँ सबलन को जेरे।
तौ हुइहैं बस मृगन के, कबहू मृग पति शेर ॥१५॥
निबलहुँ की लहि सबल बल, बन्धु हवा बँधि जाय।
मुई खाल परि मनुज कर, सार देत भसमाय ॥१६॥
जनम भरत बँधवाय गर, सुत-सरवस्व दुहाय।
पूजा गो पूजा सरिस, चाहै बन्धु बलाय ॥१७॥
शासित होते सबल यदि, होत निबल सिरताज।
बँधत सिंह तौ रजक घर, गधे बनत मृगराज ॥१८॥
होत प्रलय में निबल अणु, छिन भिन्न लाचार।
सबल बनत जब मिलि बहुरि, प्रगटावत संसार ॥१९॥
सुर असुरन सो बन्धु तब, जीति सकैं संग्राम।
प्रकटे जब पशुबल सहित, हरि पूरण बलधाम ॥२०॥
जो कराल नरसिंह बन, प्रकटत नहि भगवान।
तौ न बचत प्रह्लाद, नहिं होत असुर अवसान ॥२१॥
निज दूधहु निज बच्छ कौ, गाय न सकति बचाय।
सिंहिनि पालति पूत निज, पर को रकत पियाय ॥२२॥
बन्धु सबल की पहुँच भर, निबल मिटाये जाहिं।
बड़े बड़े की छाँह लौं, पौदे पनपत नाहिं ॥२३॥
निबल पशुन के दूध सों, घर घर माखन होइ।
दुही जाति कहुँ सिंहनी, बन्धु न देखी कोइ ॥२४॥
सबै सतावत निबल को, सबलन को भय खात।
बकरन की बलि देत सब, बाघ निकट को जात ॥२५॥
सबल लेत हर निबल को, जन्म सिद्ध अधिकार।
बन्धु बचत कब अङ्ग पर, भोरि भेड़ि के बार ॥२६॥
सबलहिं मग देवों परत, निबलन को झख मार।
पैदल इक्का लखो या, इक्का मोटर कार ॥२७॥

बन्धु निरबल को रुदन, कबहु करत नहिं कान।
सबल चुनौती देत जब, तब चौंकन भगवान ॥२८॥
सबलन जनमत जो जगत, मिटत ईशको नाम।
भये कृष्ण कब कंस बिन, कब रावण बिन राम ॥२९॥
करत दीनता दीन की, रखवारी बरजोर।
भूलिहु फटकत निकट नहिं, भटकट डाकू चोर ॥३०॥
का छति राजा राव सों, जो राखत बिलगाय।
दीन बन्धु सों दीनता, दीनहिं देत मिलाय ॥३१॥
लाभ मोटाई सो कहा, कहा तोंद सों काम।
हिये बसावति दीनता, दीन बन्धु बस जाम ॥३२॥
परे रहैं लाले भले, पेट भरन के हेत।
बलि बलि तोकों दीनता, दीठि न बिगरन देत ॥३३॥
सविनय सेवा सों सुभग, जग में धर्म न अन्य।
देति तासु तौफीक तैं, तोहिं दीनता धन्य ॥३४॥
घृनित बातहू धनिक की, सरहत सब स उमंग।
लछिमी-पति के पाँव की, धोवन पुजती गंग ॥३५॥
परधन लूटे बिनु बनत, कोउ न धनिक महान।
लूटि सिन्धु हरि हू बने, लछिमी - पति भगवान ॥३७॥
पावन बनत अछूत हू, घनी गहै जग जौन।
लछिमी-पति यदि गहत नहिं, छुवत शङ्ख को कौन ॥३७॥
पढ़े लिखे हो कैसहू, धन बिन मान न होय।
लछिमी-पति को भजत जग, सरसुति–पतिहिं न कोय ॥३८॥
ठगी किये हू धनिक को, वन्धु घटत नहिं मान।
लछिमी-पति ने बलि छल्यो, तऊ बने भगवान ॥३९॥
गनैं न औरन कछु धनी, नंगन सो भय खाहिं।
लछिमी-पति तजि रुद्र को, भक्त काहु के नाहिं ॥४०॥
धनिक-रीझ हित करत नर, पतित करम पति खोइ।
पंचामृत कहि पित्रत सब, लछिमी-पति-पद धोइ ॥४१॥

बड़े-बड़े हू बड़ेन के, गनत न कोउ गुनाह।
लक्ष्मी पितु लूट्यो सुरन, तऊ स्वर्ग के साह ॥४२॥
सहस चखन ताकत यहै, निशि बासर अमरेन्द्र।
बन्धु सवाँ असुमेध तो, करत न कोउ नरेन्द्र ॥४३॥
छोटन की धन लूटि सों, सजत बड़न के भौन।
सिन्धु रतन तजि स्वर्ग में, बन्धु पदारथ कौन ॥४४॥
पापहु फलत बड़ेन को, चलत न हरि को चक्र।
चोरी-छल-व्यभिचार करि, सहस-नयन को सक्र ॥४५॥
स्वारथ हित लघुता गहत, बड़े बड़े तजि मान।
बौना भिक्षुक बनन में, लजे नहीं भगवान ॥४६॥
नाथ तोरि फेकत जुआ, गहत और ही गैल।
बन्धु गऊ को पूत जो, हो तो निरो न बैल ॥४७॥
वंश बड़ो है बल बड़ो, बन्धु चलत बड़ि चाल।
तऊ कहावत बैल क्यों, कामधेनु को लाल ॥४८॥
पराधीन बनि दिन भरत, गुनत न निज अधिकार।
नान्दी बन्धुहिं कस न फिर, बैल कहै संसार ॥४९॥
केतहु बैल कमाय अरू, बन्धु करै अनुराग।
पै भूसा तजि अन्न में, देहै मनुज न भाग ॥५०॥
अजब न बन्धु किसान जो, बैलन मुक्ति न देत।
गाड़ी कौन चलाइहै, कौन जोतिहै खेत ॥५१॥
नाक छिदी गरदन बँधी, कन्ध जुआ धरि गौन।
बन्धु कमाऊ पूत बनि, लाभ बैल को कौन ॥५२॥
पूजा को गरजो रहै, अरजी करै न कान।
निज मरजी ही पर मरै, सो फरजी भगवान ॥५३॥
होउ अलग जो दै सकत, नहिं अनाथ को साथ।
भगवन्! है भगवान पन, बै न तुम्हारे हाथ ॥५४॥
बिन कानन के सेस पर, सोवै पैर पसार।
चा श्री पति भगवान की, बन्धु न अब दरकार ॥५५॥

जाको माया के बिना, बन्धु चलत नहिं काम।
मेरो वा भगवान को, दूरहिं सो परनाम ॥५६॥
पापी द्विज टेरत सुतहिं, तेहि निज सुमिरन मान।
मुक्ति देत जो गावदी, सों भोंदू भगवान ॥५७॥
बन्धु न रुचि भगवान की, अब सेवक दरकार।
वे दासन सासन करैं, ये सवैं करि प्यार ॥५८॥
रीझत जो भगवान बस, देखि सुखसामद अन्ध।
जुरै न वासो नेकहूँ, कबहुँ बन्धु सम्बन्ध ॥५९॥
जा कर सीधी हृदय में, लगती बाण समान।
'बन्धु' बिपक्षी वृन्द को, व्यंग्य भरी मुसकान ॥६०॥
अनुचित उचित न सोचती, हरती है सम्मान।
भरी जवानी ताकतीं, काम भरी मुसकान ॥६१॥
जाल बिछाती फाँसती, करके यत्न महान।
ठगती भोले 'बन्धु' को, मतलब की मुसकान ॥६२॥
असमय समय न देखती, तनती अपनी तान।
रस में दै विष घोलती, नीघस की मुसकान ॥६३॥
सरसाती स्वर्गीय सुख, सबको 'बन्धु' समान।
शिशुओं की सुन्दर सहज, सुधा-सनी मुसकान ॥६४॥
शील और संकोच का, बन्धु ठान कर ठान।
मन्द मधुर मधु घोलती, लज्जामय मुसकान ॥६५॥
ले लेती बे मोल है, तन-मन मोल समान।
चलता जादू डालती, प्रेम भरी मुसकान ॥६४॥
लक्ष्मी को बस में किये, भोगि रह्यो विज्ञान।
याही लाजन हैं छिपे, परदे में भगवान ॥६७॥
दलति नहीं दुखी करि दया, दीन-दयालु कहाय।
दीनन को भगवान मुँह, कैसे सकत दिखाय ॥६८॥
थाहे गुण्डनं की चलनि, क्यों किसान बेताब।
सब के समुहें आइ कै, देवो परै जवाब ॥६९॥

भेद खुलन को भय भये, समुहे वाद-विवाद।
मूँदी निवही जाति हैं, परदे में मरजाद ॥७०॥
देइ उड़ाइ न धज्जियाँ, करि कृतर्क विज्ञान।
डरन छिपाये मुँह परे, परदे में भगवान ॥७१॥
साँचे को कुछ डर नहीं, कोऊ लेय बयान।
कछु काला है दाल में, प्रकटत नहिं भगवान ॥७२॥
कियो जलन्धर बधन हित, छल वृन्दा के साथ।
याही डरन फरार है, मिलत न लक्ष्मी नाथ ॥७३॥
समुहै आवत कौन, छिपि सबै दिखावत हाथ।
मुँदे मुँदे माया करत, खुलत न माया नाथ ॥७४॥
रोटी हित संसार में, बढ़ो जुलुम को जोर।
बढ़-बड़े 'दाना' पिसत, चक्की में उठि भोर ॥७५॥
सहत ओखरिन मूड़ दै, मूमर मार अतीव।
'दानन' के बलिदान पर, रोटी की है नीव ॥७६॥
गाँधी, बोस, पटेल, अरु, खान, जवाहरलाल।
हल करने में पचि रहे, रोटी कठिन सवाल ॥७७॥
चखत हवस को टोप दै, परि चक्कर की गैल।
रोटी हित भरमत मनुज, बनि कोल्हू को बैल ॥७८॥
लेत उसासें धौकनी, रन्दा रगरत नाक।
रोटी को सिक्का लखे, चक्कर में है चाक ॥७९॥
रोटी हित अकरम करम, करत न कोउ बिचार।
बड़े-बड़े मानी धनी, पीसत बीच बजार ॥८०॥
पूछयों पानी खोय क्यों, डारी लज्जा धोय।
रोटी रोटी कहि उठी, सदा सुहागिन रोय ॥८१॥
मंगन गन को दान दै, दानी पावत मान।
मानी मरतो मान पर, मुयहु न माँगत दान ॥८२॥
मान पाइबै हेतु ही, दानी देतो दान।
दान माँगि के बन्धु पै, मानी देत न मान ॥८३॥

दानी सरबस दान दे, चाहत है जो मान।
खोवत सोई मान क्यों, रे मंगन लै दान ॥८४॥
'बन्धु' चहै जो दुनी में, दानी साँचो मान।
तो मनाय मानी मनहिं, बिन माँगै दे दान ॥८५॥
दानी सों कछ माँगि कै, 'बन्धु' पाइबो दान।
अपनो वाको दुहुन को, करना है अपमान ॥८६॥
जाहि साध कछु देन कौं, 'बन्धु' आपु दे दान।
माँगन को पथ देखि के, ब्यर्थ न खोवे मान ॥८७॥
न्याय तुला पर तौलिए, लखिए कौन महान।
दान दानि को 'बन्धु' वर, या मानी को मान ॥८८॥
नीरसता बरसति निरी, रह्यो न रस को नेम।
भेद नीनि जिमि राष्ट्र मे, हरत आपुसी प्रेम ॥८९॥
बड़ी राति बहु हिममयी, लहि हिमन्त को फेर।
अन्यायो के राज में, यथा वढ़त अन्धेर ॥९०॥
घामहु मिलत न दीन को, कुहरे की भरमार।
यथा विजैता बिजित को, हरत सहज अधिकार ॥९१॥
हरिथर तरु फूले फरे, बिनसत पाला माहिं।
नेटि व पर-साम्राज्य में, यथा मिटाए जाहिं ॥९२॥
ठिठुरत चलत न हाथ पग, थर थर काँपत अँग।
जिमि जनता नृप दमन सों, होति त्रसित अरु तंग ॥९३॥
फस्ल रबीअ खरीफ सस, लम्बी बाढ़त नाहिं।
बढ़त न जिमि स्वाधीन सम, पराधीन जग माहिं ॥९४॥
तरु न अंकुर अंकुरित, होत ठंड सो नाहिं।
करि न सकत उन्नति यथा, दास दासता माहिं ॥९५॥
तजि कछु धनिक हिमन्त में, कोउ सुखी नहिं आज।
पक्ष विशेषहिं सुख लहत, पक्षपात के राज ॥९६॥
सूर-करावलि हू सिथिल, सकत न सीत हटाय।
हठी नृपति को हठ यथा, नीति न सकत घटाय ॥९७॥

पीतर पानी फेरि कै, बेंचति सुबरन रङ्ग।
को न खटाई में परत, परे सुनारिन फंग ॥९८॥
नव कलवारिन मद भरी, मद को मजा चखाइ।
मूसि लेत धन धाम सब, सुधि वुधि देत भुलाइ ॥९९॥
सौदा बाँकी वनिन का, करता बाहर बाट।
इससे जाता है उलट, बड़ों बड़ौं का ठाट ॥१००॥
तीखी तेलिन स्नेह से, जिन कोल्हू में पेल।
कितने ही मन तिलों से, है निकालती तेल ॥१०१॥
निशिदिन बाँकी बनिन है, रखती खुली दुकान।
किसको आटा दाल का, भाव न पड़ता जान ॥१०२॥
'इन्दु' निबाहति केवटिन, नदी नाव संयोग।
पार लगावति खेइ कै, बुरै भलै सब लोग ॥१०३॥
है रंगने का इन्दु कवि, अनुपम अपना ढग।
कभी न चढ़ कर उतरता, रँगरेजिन का रंग ॥१०४॥
रोज घुलावति दर्जिनी, इन्दु बिहँसि तजि लाज।
जब जैये तव दे तकहि, अबै वनो नहि काज ॥१०५॥
लोहौ को पिघलाय यह, पानी धरती ललाम।
बल से अपने चाय के, करति लुहारिन नाम ॥१०६॥
ओटन धुनकन भरन श्रम, सहनो सहज न काम।
नाहीं करति न तउ कबहुं, धुनकिन सीधी वात ॥१०७॥
ग्वालिन गुहरावत गलिन, गोरस गाढ़ो लेहु।
खटौ मिठो लखि लेहु चखि, इन्दु दाम तब देहु ॥१०८॥
सब को ढ़ाँकति नङ्गपन, ताने बाने माहिं।
सारी वै है गुन भरी, कोरिन कोरी नाहिं ॥१०९॥
काछिन बारी देखि कै, मन सब को हरियाय।
सुन्दर सब्जी बैंगनी, रही छटा छवि छाय ॥११०॥

———

श्री दीनानाथ अशंक

[दोहा]

पीतवसन - मणिमुकुट - धर, घन-श्याम, छविधाम ।
सुभासीन सीता सहित, जयति महीपति राम ॥ १ ॥

बढ़कर पीछे लौटना, नहीं वीर का काम ।
ऐसे कूर-कपूत का, लिया न जाता नाम ॥ २ ॥

यदि धीरज के साथ में, देखी जाती बाट ।
तो पत्ते शहतूत के, बन जाते हैं पाट ॥ ३ ॥

प्रथम सोच लो जिस समय, करो किसी पर रोष ।
अपने में भी हैं भरे, कैसे कैसे दोष ॥ ४ ॥

जब असिद्धियाँ हार कर, जाती हैं मन मार ।
तब आती है सिद्धि ही, खिंच कर अन्तिम वार ॥ ५ ॥

लाखों तप करते हुए, खो देते हैं प्राण ।
सुकवि एक ही पंक्ति में, पा जाते निर्वाण ॥ ६ ॥

बदला करता है समय, सुनते हैं सब ठाम ।
समय बदल दे शक्ति से, पुरुष उसी का नाम ॥ ७ ॥

साख न जाने दीजिए, लाख भले ही जायँ ।
फिर भी वे दिन आयँगे, आप न कच्ची खाँय ॥ ८ ॥

१—पीतवसन=पीला वस्त्र । जयति=जय हो । २—कूर=दुष्ट ।
३—शहतूत=एक वृक्ष विशेष । पाट=रेशम । ४—रोष=क्रोध । दोष=बुराई ।
५—मनमार=मन को दुःखी । ६—निर्वाण=मोक्ष ।
७—ठाम=जगत । ८-साख=इज्जत ।

गिरता है जो गार में, औरों को दे ज्ञान।
कौन मान सकता उसे, ज्ञानवान मतिमान ॥ ९ ॥
आलस में आसक्त हो, करे न घोर अनर्थ।
आत्मघात के तुल्य है, समय गँवाना व्यर्थ ॥१०॥
काने काने ही जहाँ, हों एकत्र अनेक।
अच्छा है तुम भी वहाँ, आँख मीच लो एक ॥११॥
होता है आपत्ति में, जैसा सविधि सुधार।
सुख में हो सकता नहीं, वैसा किसी प्रकार ॥१२॥
घर को समझो सर्वदा, कर्म क्षेत्र प्रधान।
घर से बन को भागते, कायर ही भयमान ॥१३॥
काम क्रोध लोभादि का, करे उचित उपयोग।
शुद्ध संखिया आदि क्या, हरते नहीं सुरोग ॥१४॥
होती है आलस्य से, मति अवश्य ही नीच।
कीड़े पड़ते हैं स्वतः, दूषित जल के बीच ॥१५॥
करे शील की पालना, जो सदैव सविवेक।
वही सनातन सौख्य का, अधिकारी है एक ॥१६॥
यदि निज आत्मा के निकट, निरपराध हैं आप।
तो कोई भी आप को, लगा न सकता पाप ॥१७॥
कार्य सिद्धि करती नहीं, सम्पद की परवाह।
वह तो होती है विवश, देख ओज उत्साह ॥१८॥
घबराते हैं चित्त में, जो आपत्ति निहार।
वे मनुष्य के रूप में, हैं अवश्य ही स्यार ॥१९॥

९—गार=गड्ढे। मतिमान=बुद्धिमान। १०—आसक्त=लीन।
११—एकत्र=इकट्ठा। १२—आपत्ति=दुःख।
१३—कर्मक्षेत्र=कर्म की जगह। १४—संखिया=एक विष।
१५—स्वतः=स्वयं। १६—सौख्य=सुख।
१७—निज=अपने। १८—सम्पद्=धन। १९—आपत्ति=विपत्ति।

नारी के प्रति आर्यजन, रखते भाव अनूप।
गिनते उसको शारदा, शक्ति रमा का रूप ॥२०॥
जिस ईश्वर ने आज तक, किये अमित उपकार।
उसकी दी आपत्ति से, डरते :हो क्यों यार ॥२१॥
कर सकते हो काम तुम, चाहो यथा तथैव।
पर फल का अधिकार है, हरि के हाथ सदैव ॥२२॥
जो आत्मा को ज्ञात हो, योग्य और अनुकूल।
उसे करे निश्चय करे, उलटा करे न भूल ॥२३॥
अरे देखते मत रहो, केवल शास्त्र-विधान।
अपने अन्तः करण की, ध्वनि पर भी दो ध्यान ॥२४॥
आत्मा की वह मोहनी, वाणी है संगीत।
जिसके द्वारा हो चुके, लाखों पतित पुनीत ॥२५॥
जिसे भूल का आप ही, योग्य दण्ड मिल जाय।
उसें और भी पीसना, कौन कहेगा न्याय ॥२६॥
रहता है सुख के निकट, संकट भी सब काल।
जैसें कोमल फूल के, निकट शूल विकराल ॥२७॥
महापुरुष संसार को, गिनते है परिवार।
स्वीय और परकीय का, रखते नहीं विचार ॥२८॥
अपने अपने के लिए, करते हैं सब शोक।
मरण उसी का जानिए, जिसको रोता लोक ॥२९॥
कष्ट जिन्होंने शूर-सम, झेले हैं पर्याप्त।
महापुरुष का पद सदा, हुआ उन्हीं को प्राप्त ॥३०॥

२०—शारदा=सरस्वती। २१—अमित=बहुत। २२—तथैव=जैसा।
२३—अनुकूल=उचित। २४—अन्तःकरण=हृदय।
२५—पुनीत=पवित्र। २६—पीसना=कष्ट देना।
२७—शूल=काँटा। २८—स्वीय और परकीय=अपना और पराया।
२९—लोक=संसार। ३०—पर्याप्त=पूर्ण।

विपदा से हो कर विवश, भुला न दो निज रूप।
शीतलता तजता नहीं, हिम खाकर भी धूप ॥३१॥
करते हो बैठे हुए, जब तक सोच विचार।
तब तक ही हैं दीखते, पथ में विघ्न हजार ॥३२॥
कष्ट कण्टकों में खिला, जिनका जीवन फूल।
मिली उन्हीं को सर्वदा, यशोगन्ध अनुकूल ॥३३॥
नर जीवन जिस प्रेम से, ज्योतिर्मय बन जाय।
उसी प्रेम को मानता, शुद्ध साधु समुदाय ॥३४॥
आवरणों को भेद कर, ऊपर आती आग।
कब तक रहता है छिपा, अन्तर का अनुराग ॥३५॥
अपना अपना है नहीं, अपना उसे बिचार।
अपनावे जिसको हृदय, अन्तर्भेद बिसार ॥३६॥
मन्द न पड़ने दो कभी, अन्तर का उत्साह।
शूर बनाते यत्न से, काँटों में भी राह ॥३७॥
पिल पड़ते चल चित्त में, मद, मोहादि विकार।
वे छत के घर में यथा, मेह मूसलाधार ॥३८॥
फूली हुई गुलाब सी, शीलवती सुख-मूल।
मिलती है सौभाग्य से, कुल-बाला अनुकूल ॥३९॥
प्रेमी के मन में कहाँ, इच्छा के हित ठौर।
क्या पूरित भी पात्र में, अट सकता कुछ और ॥४०॥
दूर कीजिए चित्त से, अहङ्कार अविवेक।
शरण आप की आयँगे, सद्गुण स्वतः अनेक ॥४१॥

३१—हिम=बर्फ। ३२—पथ=रास्ता।
३३—यशोगन्ध=यश की सुगन्ध। ३४—ज्योतिर्मय=प्रकाशमान।
३५—आवरण=तह, परत। भेद=छेद। ३६—अन्तर्भेद=भीतर के हार्दिक भेदभाव।
३७—मन्द=धीमा। ३८—चल=चंचल।
३९—कुल-बाला=कुलवती स्त्री। ४०—ठौर=स्थान। ४१—स्वतः=स्वयं।

धीरज धरना चाहिए, समय देख प्रतिकूल।
विकल व्यक्ति कर बैठता, बहुधा भारी भूल ॥४२॥
जिसमें स्वागत-कारिणी, तरुणी नहीं नवीन।
चाहेगा उस गेह में, घुसना कौन प्रवीन ॥४३॥
सिंही जनती केहरी, और कूकरी श्वान्।
माता के अनुरूप ही, होती है सन्तान ॥४४॥
है आदर्श चरित्र का, केवल यही महत्व।
दुर्दिन में खुलने न दे, अपना अन्तस्तत्त्व ॥४५॥
करता है खल व्यर्थ ही, नष्ट पराये काम।
चूहा पाता क्या सुफल, कपड़े काट तमाम ॥४६॥
विद्या पाकर नीच ही, करता है अभिमान।
उल्लू ही रवि तेज से, बनता अन्ध समान ॥४७॥
हमें ईश ने जन्म से, नहीं बनाया दीन।
दीन बने हैं हम स्वयं, गिन अपने को हीन ॥४८॥
औरों के कल्याण में, रहता जिनका ध्यान।
उनका अपने आप ही, हो जाता कल्यान ॥४९॥
बार बार भी हार कर, जीत चुके हैं लोग।
अतः हार कर भी करें, आप उचित उद्योग ॥५०॥
यदि सन्तप्त समाज का, हरना है सन्ताप।
तो बनिये आनन्द के, केन्द्र-बिन्दुवत् आप ॥५१॥
पावन प्रेम प्रसिद्ध है, आत्मा का शृङ्गार।
प्रेम-शून्य को दीजिए, बार बार धिक्कार ॥५२॥

४२—विकल=व्याकुल। ४३—गेह=घर। ४४—केहरी=सिंह।
४५—अन्तस्तत्व=भीतरी भेद। ४६—सुफल=अच्छे फल।
४७—रवि=सूर्य। ४८—हीन=छोटा।
४९—कल्याण=भलाई। ५०—उद्योग=उपाय।
५१—सन्तप्त=दुःखी। ५२—प्रेम-शून्य=प्रेम रहित।

प्रेम प्रेम को पोसता, और द्वेष को द्वेष।
आत्मा से छिपता नहीं, मन का भाव विशेष ॥५३॥
यदि उन्नति की कामना, रखते हो भरपूर।
तो सदैव को चित्त से, करो कुशंका दूर ॥५४॥
औरों के तो दोष पर, दरसाते हो रोष।
किन्तु देखते हो कभी, क्या अपना भी दोष ॥५५॥
चक्की चिल्ला कर यही, देती है सन्देश।
पत्थर का भी अन्न से, मुँह भरता परमेश ॥५६॥
वर्तमान हैं आप के, अन्तर में भगवान।
काम कीजिए सर्वदा, उनकी आज्ञा मान ॥५७॥
असमय में आत्मीय भी, नहीं बँटाता हाथ।
क्या छाया देती कभी, तम में तन का साथ ॥५८॥
आगे बढ़ते जाइये, संगर में स्वच्छन्द।
वरण करेगी आप का, विजय-वधू सानंद ॥५९॥
रखता है दासत्व में, जो विश्वास घनिष्ठ।
वह पापिष्ठ समाज में, है प्रधान पापिष्ठ ॥६०॥
अपने को आपत्ति में, गिनते हुए अनाथ।
आत्म-समर्पण मतकरो, शोक-शत्रु के हाथ ॥६१॥
उच्चस्वर से कीजिए, घोषित बारम्बार।
हमें जन्म से प्राप्त है, उठने का अधिकार ॥६२॥

५३—पोसता=पालता। ५४—कुशंका=हृदय के डर।
५५—दरसाते=दिखलाते। ५६—परमेश=परमात्मा।
५७— वर्तमान=मौजूद। ५८—आत्मीय=अपने सम्बन्धी।
५९—संगर=युद्ध। ६०—पापिष्ठ=पापी।
६१—शोक-शत्रु=शोकरूपी बैरी। ६२—घोषित=कहना।

सरल बने कर्त्तव्य भी, पाले भली प्रकार।
कपट और आलस्य से, होती हानि अपार ॥६३॥
माना जाता है जिसे, कपटी और निकाम।
करता है बहुधा वही, अविश्वास के काम ॥६४॥
अन्तर में अनुराग के, होते ही अवतीर्ण।
मनोभाव रहता नहीं, क्षुद्र और संकीर्ण ॥६५॥
एक दूसरे के लिए, हम बन जायँ उदार।
तो सत्वर ही स्वर्ग में, परिणत हो संसार ॥६६॥
क्या खोकर स्वाधीनता, कोई सच्चा वीर।
पैरों में दासत्व की, पहिनेगा जंजीर ॥६७॥
श्रीमानों की प्रीति है, बालू की दीवार।
आशा कर उपकार की, जाय न उनके द्वार ॥६८॥
भरत राम का देख कर, पारस्परिक मिलाप।
मन्द विभीषण आप ही, रोया था चुपचाप ॥६९॥
जिस जीवन में व्याप्त हो, वन्दनीय वीरत्व।
एक उसी में जानिए, सच्चा जीवन तत्व ॥७०॥
कहिए अन्तर्वेदना, अथवा प्रायश्चित्त।
चित्त शुद्धि का एक ही, है निर्दिष्ट निमित्त ॥७१॥
करती हैं आपत्तियाँ, जब ऊपर से वार।
गुप्त शक्तियों का स्वतः, होता है उद्गार ।-७२॥
पापी के प्राबल्य की, मान चित्त में भीति।
झुकना उसके सामने, है स्यारों की नीति ॥७३॥

६३—सरल=सीधा । ६४—निकाम=निष्कामी ।

६५—संकीर्ण=संकुचित । ६६—सत्वर=शीघ्र ।

६७—दासत्व=गुलामी । ६८—श्रीमानो=धनवानों ।

६९—मन्द=नीच ।

७०—व्याप्त=प्रविष्ट । वन्दनीय=वन्दना के योग्य । ७१—अन्तर्वेदना=आन्तरिक कष्ट ।

७२—गुप्त शक्तियाँ=छिपी हुई शक्तियाँ । ७३—प्राबल्य=प्रबलता ।

प्रेम प्रभा है पुण्य की, और धर्म की कान्ति।
खिलती प्रेम प्रात में, कमलाकर सम शान्ति ॥७४॥
सत्य-परायणता तथा, मधुर शान्ति के साथ।
जिसमें रमता प्रेम हो, जीवन वही सनाथ ॥७५॥
सह सकते हैं शूरमा, विकट शेल की मार।
किन्तु झेल सकते नहीं, तिरस्कार का वार ॥७६॥
जिसे दीखती हर घड़ी, विपदा खड़ी समीप।
वह नितान्त निर्वीर्य है, बिना तेल का दीप ॥७७॥
मीठा देने से मरे, तो विष का क्या काम।
काम निकालो शांति से, यही अधिक अभिराम ॥७८॥
सज्जन करते भूख से, मरना तो स्वीकार।
किन्तु कभी लेते नहीं, पामर का आधार ॥७९॥
जो चलने देता नहीं, दुष्ट जनों की चाल।
वह हरि के आदेश का, करता है प्रतिपाल ॥८०॥
समझदार चलते सदा, देख समय का रंग।
मूर्ख और मुर्दार ही, नहीं बदलते रंग ॥८१॥
मित्र वही जो दुख में, हरदम आवे काम।
वैसे भोजन-भट्ट तो, जग में भरे तमाम ॥८२॥
दुर्दिन में उद्विग्न हो, करो न हाहाकार।
अक्षय है परमेश की, करुणा का भण्डार ॥८३॥
जो उपाय करते नहीं, उन्नति के हित आप।
ईश्वर भी सुनता नहीं, उसका करुण विलाप ॥८४॥

७४—भीति=डर
७५—सत्य परायणता=सत्य में प्रेम।
७६—तिरस्कार=अपमान।
७७—निर्वीर्य=निस्तेज, कायर।
७८—अभिराम=सुन्दर।
७९—पामर=पापी।
८०—आदेश=आज्ञा।
८१—मुर्दार=कायर।
८२—भोजन-भट्ट=खाने में वीर।
८३—अक्षय=अपार।
८४—विलाप=रोना।

क्या जीवन का आप को, अवगत है कुछ अर्थ।
यदि अवगत है तो समय, मत गँवाइये व्यर्थ ॥८५॥

हमको कितना चाहते, मुँह से कह दो साफ।
यह तो दिल से पूछिए, मुझे कीजिए माफ ॥८६॥

किंचित भी दुर्भावना, करती अहित अपार।
चिनगारी देती उड़ा, वन का धूआँधार ॥८७॥

निश्चय ही उस जाति का, होगा पुनरुत्थान।
गिर कर भी भूली नहीं, जो गौरव का ध्यान ॥८८॥

औरों का भी अभ्युदय, चाहो अपने संग।
यही मानवी धर्म का, है प्रधानतम अंग ॥८९॥

प्रेम और आनन्द का, है सम्बन्ध अभिन्न।
वह सच्चा प्रेमी नहीं, जो होता है खिन्न ॥९०॥

ऋषि प्रतिपादन कर गए, इसका बारम्बार।
रखता है अनुराग ही, जीवन को अविकार ॥९१॥

किसे बनाना चाहिए, अपना प्रेमाधार।
किया न हो जिसने प्रथम, किसी और को प्यार ॥९२॥

सत्य रूप टकसाल में, ढालो अपने काम।
लौटेगी पैरों तले, लक्ष्मी आठों याम ॥९३॥

साधु-हृदय में प्रेम की, बहती रहती धार।
नर उसमें गोते लगा, बनते विगत-विकार ॥९४॥

८५—अवगत=ज्ञात। ८६—माफ=क्षमा।
८७—दुर्भावना=बुरा विचार। ८८—गौरव=बड़प्पन।
८९—अभ्युदय=उन्नति। ९०—खिन्न=दुःखी।
९१—अविकार=विकार रहित। ९२—प्रेमाधार=प्रेम का आधार।
९३—टकसाल=जहाँ सिक्के ढलते हैं। ९४—विगत-विकार=विकार रहित।

छोटी पूँजी को सखे, मत समझो नाचीज।
महावृक्ष बन जायगा, वह छोटा सा बीज ॥९५॥
उद्यम शील मनुष्य का, भाग्य जागता आप।
किन्तु आलसी को समय, देता है अभिशाप ॥९६॥
तुमको जिसके हृदय पर, करना हो अधिकार।
उसको अपने हृदय का, दो सहर्ष उपहार ॥९७॥
जीवित कर सकते नहीं, जिस प्राणी को मार।
उसकी हत्या काहमें, कहिए क्या अधिकार ॥९८॥
मन में होना चाहिए, हर्ष और अह्लाद।
फिर क्या साधारण कुटी, क्या राज-प्रासाद ॥९९॥
परनिन्दा मिथ्या वचन, गाली और प्रलाप।
माने जाते विश्व में, चार गिरा के पाप ॥१००॥

९५—महावृक्ष=बड़ा पेड़। ९६—अभिशाप=श्राप।
९७—उपहार=भेंट। ९८—प्राणी=जीव।
९९—राज-प्रासाद=राजमहल। १००—गिरा=वाणी!

गात गुराई हेम की, दुति सु दुराई देत।
कंज बदन छबि जान अलि, भूलि भाडरै लेत ॥७१॥

देखि घटा छन छबि छटा, छुटत मुनिन के ध्यान।
बैठी भौहैं तान सखि, क्यों रैहै मन मान ॥७२॥

अधरन पर बेसर सरस, लुरकत लुरत विसाल।
राखन हेतु मराल जनु, मुकति चुगावत वाल ॥७३॥

कहत आन की आन मुख, सुनत आन की आन।
पिय प्यारै चल चाहियै, तिय प्रानन की प्रान ॥७४॥

लाल लाल लोइन निरखि, लालन के नव वाम।
हाथ आरसी लै लखति, निज लोचन अभिराम ॥७५॥

कलह करत नेहै करत, तेरी बान सनाम।
कहा चूक है स्याम की, तू ही बाम सुबाम ॥७६॥

कल न परति हहरति हियै, नए बिरह्व ब्रजनाथ।
खिन खिन छवि छीजति खरी, खिन खिन मींजति हाथ ॥७७॥

बिन गुनाह निजनाथ सौं, नाहक भई सरोस।
अनख हिए कत कीजियतु, काहि दीजियतु दोस ॥७८॥

साजि साज कुंजन गई, लख्यौ न नन्दकुमार।
रही ठौर ठाढ़ी ठगी, जुवा जुबा सौ हार ॥७९॥

नहिं डोलति खोलति दृगति, सकुच न बोलन बोल।
अमल कमल दल से दुवौ, पीरे परे कपोल ॥८०॥

सजि सिंगार आनन्द मढ़ी, बढ़ी सरसंऊछाह।
रंग महल फूली फिरति, चिंतनत मग चित चाह ॥८१॥

उदित उमँग अनङ्ग बर, उर उमग्यौ अनुराग।
सजत सेज भूषन बसन, अङ्ग अङ्ग अँगराग ॥८२॥

भौहैं तान कमान बर, नैन सरन कर साधि।
गहि राख्यौ मन लाल कौं, अलक जँजीरनि बाँधि ॥८३॥

चंदमुखी मुख चंद की, दई छटा छुटकाइ।
रह्यौ चाँदनी चौक मैं, चारु चाँदनी छाइ ॥८४॥

सटकारे कारे सरल, लसत सुहाए बार।
देखहु बलि चांछ औचका, नवल बधू सुकुमार ॥८५॥

तनदुति लखि लाजति तड़ित, भाजतघन छपि जात।
छवि छाजत राजत खरी, नये नेह सरसात ॥८६॥

कुञ्जन लौं नव नलिन की, कली रही फबि फैल।
कीनी गरक गुलाब सौं तिन कुञ्जन की गैल ॥८७॥

पहिरि सेत सारी सरस, चन्दन चर्चित देह।
चन्द्र उदै लखि चन्द्रमुख, बिहँसि चली पिय-गेह ॥८८॥

ललन चलन सुनि पलन मैं, आइ गयो बहुनीर।
अधखंडित बीरी रही, पीरी परी सरीर ॥८९॥

चितवत घूँघट ओट ह्वै, गुरुजन दीठि बचाइ।
स्रवन सुनत प्रीतम गमन, अगमन गई ससाइ ॥९०॥

मनभावन आवन सुनौ, सुख सरसावन बोल।
पुलकत तनु हुलसत हियौ, बिहँसत ललित कपोल ॥९१॥

स्रवन सुनत पिय आगमन, हरषि हरषि सुखदानि।
भुज फरकत हुलसत हियौ, दरसत मुख मुसक्यानि ॥९२॥

रस ही मैं रस पाइयतु, यह सुरीत जगजोइ।
वा मुख कौ बतियान सौं, अनरस मैं रस होइ ॥९३॥

बदन मौरि हँसि हेरि इत, नैन नैन सौं जोर।
गोरी थौरे बैस की, लै जु गई चित चोर ॥९४॥

रूप सरस पानिप भर्‌यो, पावत नेकु न थाह।
घूम घूम मन घिरतु है, झूम झूमकन माह ॥९५॥

बंसी धुनि स्रवनन सुनत, तन मन अति अकुलाइ।
दौरी जावक दै दृगनि, अंजन पगनि लगाइ ॥९६॥

दोहाकारों की हैसियत से 'दिनेश' जी का कार्य स्तुत्य है। उन्हें इस दिशा में पूर्ण सफलता मिली है उनकी अन्योक्तियाँ, भारत और गोपियाँ मौलिक भावों से ओत-प्रोत और श्लाघनीय हैं।

श्याम सतसई के अतिरिक्त 'दिनेश' जी ने महाकाव्य पुरुषोत्तम, मतवाली मीरा और बंधुभरत नाटक के अतिरिक्त पंचामृत, बासुदेव और भक्त भारती काव्य संग्रह ग्रंथ भी हिन्दी साहित्य को भेंट किए हैं। वे एक सफल कवि हैं। हमारी हार्दिक कामना है कि हिन्दी साहित्य को इनसे अभी अनेक अमूल्य ग्रन्थ उपलब्ध हों।

❀

[दोहा]

लोट चुकी जिस पर विकल, मोर मुकुट की नोक।
जो जन-मन-मल शोक हर, दायक दिव्यालोक ॥ १ ॥
जिसमें कसकीली भरी, परम रसीली हूल।
राधे देना वह मुझे, निज चरणों की धूल ॥ २ ॥
राधे तू गोविन्द में, तू गोविन्द स्वरूप।
हो सकती है दूर क्या, कभी सूर्य से धूप ॥ ३ ॥
तू जब तक मुझ पर कृपा, करती माँ न विशेष।
तब तक मेरी ओर वह, कैसे तके ब्रजेश ॥ ४ ॥
माँ तेरी ही दृष्टि से, फिरती उसकी दृष्टि।
कह दे उस घनश्याम को, करे इधर भी वृष्टि ॥ ५ ॥
भर कर अखियाँ-शुक्तियाँ, अञ्जलि दूँ सहमान।
श्याम-सिन्धु धोये हृदय, मेरा मलिन महान ॥ ६ ॥

१—दिव्यालोक=स्वर्ग लोक। २—कसकीली=कसकने वाली।
३—गोविन्द=कृष्ण। ४—ब्रजेश=कृष्ण।
५—वृष्टि=कृपा की वर्षा। ६—मलिन=मलिनता।

मुझसे पूछो तो कहूँ, किसके नयन विशाल।
राधा के लोचन बड़े, जिसमें स्थित गोपाल ॥ ७ ॥
माधव के उर में यदपि, बसते दीनअनाथ।
राधा-उर को देखिये, बसते दीनानाथ ॥ ८ ॥
पड़ा रो रहा पालने, उपनिषदों का तत्व।
नन्द भवन में विश्व का, मूर्तिमान अमरत्व ॥ ९॥
जिसके दर्शन के लिये, मुनि मिलजाते धूलि।
वही यशोदा हाथ से, पिटते खाता धूलि ॥१०॥
कुंचित चिक्कण चिकुर वर, मेचक मृदुल महान।
मोहन-श्रुति में पढ़ रहे, मोहन-मन्त्र-विधान ॥११॥
श्याम-सुदामा-मिलन का, दृश्य परम अभिराम।
मानो तप से मिल रहा, गले लगा परिणाम ॥१२॥
ताता-ताता बोलने, लगा बाल घनश्याम।
पहले कहना सीखता, अपना भाता नाम ॥१३॥
श्याम दृगों में तीन रँग, श्वेत श्याम अनुराग।
इस त्रिगुणी शुचि जाल में, फँसते जन बड़ भाग ॥१४॥
मोहन आँखे आप की, नौका के आकार।
जो जन इनमें बस गया, वही बस गया पार ॥१५॥
नयन-तुरङ्गों की कढ़ी, जिनकी लाज-लगाम।
धर्म-यान की धाज्जियाँ, देखी ठाम-कुठाम ॥१६॥
कानों से यों कह रहे, तेरे नयन विशाल।
तुमसे सुन हम देखते, दुखिया को तत्काल ॥१७॥

७—विशाल=बड़े। ८—राधा-उर=राधा का हृदय। दीनानाथ=कृष्ण।
९—नंद-भवन=नंद के गृह में। १०—धूलि मिलना=नष्ट होना। धूलि=मिट्टी।
११—मोहन-श्रुति=कृष्ण के कान। १२—तप=तपस्या।
१३—ताता=पिता। १५—नौका=नाव।

श्रुतियों तक तेरे न क्यों, पहुँचे लोचन नाथ।
श्रुतियाँ तुझको गा रहीं, फैला-फैला हाथ ॥१८॥

तू चाहे मिल या न मिल, इसकी मुझे न चाह।
तेरी चाह मिटे नहीं, थमें न पल भर आह ॥१९॥

तेरी चाह पुनीत है, तेरी राह पुनीत।
फिर क्यों यह होगी नहीं, मेरी राह पुनीत ॥२०॥

हे प्रभु अब तो खोल दो, अपने कृपा-कपाट।
हाथ पकड़ भीतर करो, मेटो बिकट-उचाट ॥२१॥

मैं इस दिल का क्या करुँ, अपनी वस्तु सँभाल।
तेरे दर्शन के बिना, सब कुछ मुझे बवाल ॥२२॥

रोम-रोम खूंटी बनी, नश-नश भीने तार।
आह-आह की रागिनी, देती है झंकार ॥२३॥

ओ वीणाधर निर्दयी, मत कस यों मम तार।
अँगुली का तो स्पर्श दे, दे मिजराब उतार ॥२४॥

इनको समझ न रागिनी, हैं ये मेरी आह।
तुझे रुला दूं जो नहीं, तू भी कहना वाह ॥२५॥

गमक मूर्छना में भरी, केवल एक पुकार।
सुन तू लय में लय हुआ, क्या कहता मन-तार ॥२६॥

तूने अपने हाथ से, कसे सकल ये तार।
बहुत सुन चुका रागिनी, अब तो इन्हें उतार ॥२७॥

तुम हो चन्द्र चकोर मैं, मैं मछली तुम नीर।
विना तुम्हारे किस तरह, चेतन रहे शरीर २८॥

मैं लूँ तुमको भी नहीं, लेने दूँ बिश्राम।
क्या जानोगे है पड़ा, किसी ढीठ से काम ॥२९॥

२१–उचाट=मन न लगना।

२२–बवाल=झंझट। २३–खूंटी=तार-वाद्य की खूंटी।

मेरा मन है कालिया, बिषधर कुटिल महान।
नाथ इसे नाथो तभी, मैं समझूँ बलवान ॥३०॥
जिस पर तुम हो रीझते, क्या देते यदुबीर।
रोने-धोने सिसकने, आहों की जागीर ॥३१॥
यों न हँसी में दो उड़ा, सुनकर मेरे पाप।
तुम निराश करके सदा, हरते हो जन-ताप ॥३२॥
मुझको तुझसे भी अधिक, मिलता है आनन्द।
तेरी ठोकर में भरा, मोहन परमानन्द ॥३३॥
अल्प वेदना से मुझे, होता है दुख घोर।
मुझको दे वह वेदना, जिसका ओर न छोर ॥३४॥
खोजूँ तुझे शरीर में, बता कौन सी ठोर।
रोम-रोम में तू रमा, परम चतुर चित-चोर ॥३५
तुझे खोजने के लिए, जब तक खुए न आप।
तब तक तू मिलता नहीं, मिटता अमिट न ताप ॥३६॥
उसे खोजने के लिए, मत जा तू हरिद्वार।
तेरा अन्तःकरण ही, है साँचा हरि-द्वार ॥३७॥
इन आँखो से तुम किसे, दीखो कैसे नाथ।
आँखें तुमसे देखतीं, तुमसे सहज सनाथ ॥३८॥
दुःख आए तो दुःख को, सुख की ज्यों चुचकार।
शायद उसमें ही कहीं, छिप आया हो यार ॥३९॥
नहीं प्रकृति सी पतिब्रता, जग में नारी अन्य।
मूक-पंगु पति की सदा, करती टहल अनन्य ॥४०॥
उसके शासन में नहीं, पक्षपात की भूल।
निर्भय होकर झगड़ती, जहाँ अग्नि से तूल ॥४१॥
चित के चरणों में चुभा, जिनके प्रेमल-फाँस।
आँसू पड़ते आह-युत, कढ़ते लम्बे साँस ॥४२॥
लाखों ही खुशियाँ भरीं, मेरे रोने बीच।
इन्हें न आँसू समझना, प्रेम-लता की सींच ॥४३॥

प्रेम चासनी की लगी, जिनके ओंठों चास।
अन्य साधनों में मिले, उनको कहाँ मिठास ॥४४॥
प्रेम अग्नि की देखिये, कैसी अद्‌भुत बात।
जिसमें जल कर ही सदा, शीतल होता गात ॥४५॥
जिनको रुचता हो सुनें, निर्गुण का व्याख्यान।
यहाँ चटोरे हो गये, वेणु-तान से कान ॥४६॥
प्रम वस्त्र की देखिये, कैसी उलती रीत।
ज्यों-ज्यों धारण कीजिए, त्यों-त्यों लाज व्यतीत ॥४७॥
प्रेमी अटपट बोलता, होकर निपट अचेत।
मन्त्र न तन्त्र न यन्त्र है, कुपित प्रेम का प्रेत ॥४८॥
प्रेम रहित नर मृतक-सम, हरि को कब स्वीकार।
हरि जाता न समीप भी, समझ अरक्त शिकार ॥४९॥
रुकता कब आतंक से, आत्मिक प्रेम-प्रवाह।
रोक सके असि-गरल क्या, मीरा की कुछ चाह ॥५०॥
कृष्ण ने—'हे गो' कहा, कह न सकी फिर 'विन्द'।
आ पहले लजा रखी, ऐसा वह गोविन्द ।.५१॥
चातक तेरा प्रण तनिक, देना मुझे उधार।
तेरा तो उपकार हो, मेरा हो उद्धार ॥५२॥
जो मैं होता कवि कहीं, रचता ऐसे गीत।
शत-शत बार अधीत भी, लगते वे अनधीत ॥५३॥
कविते जो तू कृष्ण को, छू न सकी इस बार।
तुझको भी धिक्कार है, मुझको भी धिक्कार ॥५४॥
तुम्हे रिझाने का प्रभो, समझा एक उपाय।
सव उपाय तज पंगु हो, रोऊँ हो अनुपाय ॥५५॥
दु:ख-सुख में सम भाव रह, खेलमात्र सव जान।
ताश-खेल में हार कर, रोते नहीं सुजान ॥५६॥
खेल भले ही खूव तू, कर्म-ताश का खेल।
मजा हार में भी समझ, हँस कर ताश बगेल ॥५७॥

दो-दो सारी इन्द्रियाँ, देने का क्या अर्थ।
एक जगत-हित दूसरी, ईश्वर-प्राप्ति-सदर्श ॥५८॥

अरे सुधारक जगत की, चिन्ता मत कर यार।
तेरा मन ही जगत है, पहले इसे सुधार ॥५९॥

दाँत दिखा मत जगत को, पीस दुखों पर दाँत।
तृण धर हरि की शरण जा, कौन गिन सके दाँत ॥६०॥

शूर कौन—धारण किए, जिसने पञ्च ककार।
करुणा कीर्तन कीर्तिवर, केशव काव्य उदार ॥६१॥

सोने वालों साँस यें, हैं सोने के मोल।
सोने में खोओ न यों, सुनो सुनहले बोल ॥६२॥

क्रूर कौन—धारण किये, जिसने पंच ककार।
क्रोध, कृपणता कुटिलता, कटुता कपट कटार। ६३॥

उसे रिझा सकते नहीं, ये सोलह शृंगार।
खुद रखता सोलह कला, वह बाँका भर्तार ॥६४॥

जड़ को मुँह न लगा कभी, कहन पेट की बात।
कहता टेलीफोन सब, उससे उसकी बात ॥५५॥

आई बेला मरण की, घर्घर बोला कण्ठ।
घर-घर करता ही रहा, अब भी रे नर शण्ठ ॥६६॥

अपना मुँह तो पोंछते, पाकिट डाल रुमाल।
दुखिया के आँसू कभी, पोंछे पूछा हाल ॥६७॥

जलती जिसके चित्त में, पक्षपात की आग।
उसके पुण्य जला सकल, भाल छोड़ती दाग ॥६८॥

जो तू बसना चाहता, यार दृगों में यार।
पिस तू सुरमें की तरह, सारी रड़क बिसार ॥६९॥

जिसने आगत अतिथि का, किया न स्वागत-मान।
उसने बस भगवान का, किया घोर अपमान ॥७०॥

निन्दक तुझे प्रणाम है, प्यारे बारम्बार।
जब मैं चूकूँ पैंतरा, तू करता हुशियार ॥७१॥

अरे पुस्तकी खोजता, पुस्तक में क्या तत्व।
राधा-पुस्तक में लिखा, पढ़ वह अक्षर सत्व ॥७२॥

कलियुग में तो मुक्ति बस, बड़ी सुगम है यार।
सारे बन्धन तोड़ कर, दो मन को अधिकार ॥७३॥

नीर भलेही त्याग दे, तजती उसे न मीन।
सच्चा प्रेमी चाहता, बदला भूल कभी न ॥७४॥

मारी जिन्हें रुला-रुला, तजा बीच में साथ।
फिर भी कहलाते रहे, तुम तो गोपी नाथ ॥७५॥

राधा-सीता प्रेम का, है न और उपमान।
रोती ही छोड़ी उन्हें, यही साधु-परित्राण ॥७६॥

नाना शास्त्र रिकार्ड है, पण्डित फोनोग्राफ।
चाँदी की चावी चढ़ा, सुनिये गाना साफ ॥७७॥

नहीं भजन सा धन परम, साधन सुगम न अन्य।
यह धन जिनके हाथ है, वही धनी है धन्य ॥७८॥

कहा मृत्यु ने भक्ष है, मेरा सब संसार।
बोला भक्त कि—क्या कहा, मृत्यु मौन उस बार ॥७९॥

इस कल-युग ने कर दिया, बिकल सकल संसार।
अकल बहुत पर कल न पल, चपल मनो व्यापार ॥८०॥

तुझसे बढ़कर जगत में, दूजा कौन अछूत।
तुझको छूकर कोटि में, होता पूत-सपूत ॥८१॥

ओ एमे तू ने किया, बेशक एमे पास।
करना कहीं न देखना, सारा सूत कपास ॥८२॥

पाँच वर्ष के बालगण, हैं भोले भगवान।
इन सुमनों से प्यार कर, खिलता सुमन महान ॥८३॥

सुरभित सुन्दर सरस वर, रञ्जित मृदुल विशूल।
मनमोहक होते सदा, मनुज-वृक्ष के फूल ॥८४॥

श्याम-सुमन में सुरभि का, लखि परिपूर्ण निवास।
ललचाते सुर भी सदा, सुरभि-सुधा-अभिलाष ॥८५॥

सूर-पदों में कृष्ण हैं, कृष्ण-पदों में सूर।
दोनों ओत-प्रोत हैं, भक्ति-भाव भर पूर ॥८६॥

रामायण ऐसी रची, तू ने तुलसीदास।
भाषा सीता-सी विमल, अर्थ-राम सुविकास ॥८७॥

संकट-गिरि धर शीश पर, नची बजा करताल।
प्राण-ताल टूटी मिली, मीरा गिरिधरलाल ॥८८॥

जगत-चेतना-शून्य मन, किया जगत चैतन्य।
प्रेम-चेतना मय परम, पूजनीय चैतन्य ॥८९॥

शोभित गौतम बुद्ध यों, धरे हाथ पर हाथ।
करना था सो कर चुके, मानो खाली हाथ ॥९०॥

सेवा व्रतवर का व्रती, सत्यशील धृतिमान।
धन्य आत्मधन का धनी, गाँधी यति मतिमान ॥९१॥

खींचा गीता-भाल पर, तिलक अनूप सुरूप।
धन्य भारती-तिलक तू, तिलक स्वराज्य-स्तूप ॥९२॥

ये न नारियाँ शुक्तियाँ, इनका मोल त तोल।
किसे पता किस कूख में, हो मोती अनमोल ॥९३॥

हल चलना यदि बन्द हो, हलचल मय संसार।
हल पर ही यह महल हैं, हिल जाये व्यापार ॥९४॥

मैं कहता हूँ राम तू, कहता रब्ब-रहीम।
व्यक्ति वही बस एक हैं, कह लो वैद्य-हकीम ॥९५॥

चम्पे फूली बहुत तू, बहुत प्रसारी गंध।
धिक् वैभव तू भ्रमर से, पा न सकी सम्बन्ध ॥९६॥

हो स्वतन्त्र अति शीघ्र ही, सिखा जगत को पाठ।
छुड़ा असुरता विश्व की, रच-रच वैदिक ठाठ ॥९७॥

ऊधो हम कौं जोग की, बिधि लागत विपरीत।
सिखलावत मछलीन कूँ, रुँख चढ़न की रीत ॥९८॥

आसन सिद्धि समाधि मैं, अहंकार रहि जात।
पावन प्रेम समाधि यह, अहंकार कूँ खात ॥९९॥

हिन्दूपन-रक्षक प्रवल, शूर शिवा बल-धाम।
राणा-से तू ने जने, माता तुझे प्रणाम ॥१००॥

श्री अम्बिका प्रसाद वर्मा एम० ए०

[दिव्य]

दोहाकारों में 'दिव्य' जी हमारे समक्ष एक और ही रूप में प्रकट होते हैं। अभी तक हम जितने दोहाकारों का वर्णन कर चुके या कि आगे चल कर करेंगे, उनसे दिव्यजी में एक विशेषता है। वह यह कि दिव्य जी दोहाकार के साथ-साथ चित्रकार भी हैं।

'दिव्य' जी का जन्म बुंदेलखण्ड स्थित अजयगढ़ राज्य में १६ मार्च सन् १९०७ ई० को हुआ था। इनके पिता का नाम मुन्शी गुलजारी लाल है।

अजयगढ़ प्राकृतिक सौन्दर्य का केन्द्र है। वहाँ के पर्वत, नदी और बन भूमि की शोभा में कवि उद्‌भूत करने के प्राकृतिक गुण हैं भी। इस भूमि को हिन्दी के अच्छे-अच्छे कवियों के उत्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। दिव्य जी को अपनी इस मातृभूमि के सौन्दर्य से कवि और चित्रकार बनने में बड़ा ही प्रोत्साहन मिला।

अजयगढ़ के भूतपूर्व महाराजा सवाई रणछोड़ सिंह जी साहब के. सी. आई. ई. बड़े ही देशभक्त, कलाप्रिय ओर सहृदय व्यक्ति थे। दिव्य जी के ऊपर उनकी बाल्यकाल से ही कृपा दृष्टि थी।

बारह वर्ष की अवस्था से ही दिव्य जी को चित्रकारी से अपार प्रेम था। महाराजा साहब के आग्रह करने पर एक दिन इन्होंने उनका स्केच हाथ से खींचना प्रारम्भ किया। एक घंटे तक महाराज बैठे रहे। जब स्केच तैयार हो गया तो महाराज ने प्रसन्नता प्रकट की और 'शावाश' कह कर पारितोषिक प्रदान किए। आप कई बार पुरस्कृत हो चुके हैं। अब आप एक सफल चित्रकार हैं।

चित्रकला के साथ-साथ आप की काव्य कला भी सोने में सुगन्ध की भाँति हो गई। अपने इस कला प्रेम की उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए दिव्य जी ने अपनी

शिक्षा में किसी प्रकार भी त्रुटि नहीं आने दिया और अपने अध्यवसाय और परिश्रम से आगरा यूनीवर्सिटी से एम. ए. की पदवी सफलता पूर्वक प्राप्त की।

अजयगढ़ से जीविका वश दिव्य जी टीकम गढ़ आए। इस समय वह सवाई महेन्द्र हाई स्कूल में अध्यापक हैं। बुंदेलखण्ड की साहित्यिक जागृति में 'दिव्य' जी ने सदा से सहयोग प्रदान किया है। आप श्री वीरेन्द्र-केशव-साहित्य-परिषद के अन्वेषण मंत्री रह कर साहित्यिक क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं।

दिव्य जी का दोहों का संग्रह 'दिव्य-दोहावली' जिसमें ३३७ दोहे संग्रहीत हैं प्रकाशित हो चुका है। इसमें उनके स्वतः निर्माण किए हुए कई भावपूर्ण चित्र भी हैं, जो इनके दोहो के भावनुकूल ही चित्रित किए गए हैं।

दिव्य जी ने दोहों की रचना ब्रजभाषा में की है। दोहों की भाषा साहित्यिक है। इसमें काव्य के प्रत्येक भाग की कलाएँ आप को प्रादुर्भूत होते हुए मिलेंगी। भाषा भाव, रस के विचार से दोहा कारों में दिव्य जी का अच्छा स्थान होना चाहिए।

दिव्य जी के दोहों में प्रधान-प्रधान अलङ्कारों की अच्छी छटा है। अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा और रुपक आदि की वहार हैं।

विरह वर्णन, नेत्र वर्णन और प्रेम वर्णन में दिव्य जी ने प्राचीन कवियों से टक्कर लेने का प्रयत्न किया है और उनमें उन्हें यथेष्ट सफलता भी मिली है।

आप की पुस्तकों में दिव्य दोहावली के अतिरिक्त 'कनक' काव्य संग्रह, 'पद्मिनी' खण्ड काव्य, 'अवध' काव्य और मनोमार्जन और निमियाँ नामक दो उपन्यास भी हैं।

दिव्य जी एक सहृदय और भावुक कवि हैं। आप में प्रतिभा है और आशा है आप से हिन्दी संसार को अन्य अमूल्य साहित्यिक ग्रन्थ प्राप्त होंगे।

❀

[दोहा]

एक-रदन कुंजर-बदन, लम्बोदर लघु-नैंन।
सिद्धि लही जग सुमिर तुहिं, कस पाँऊ गौ मैं न ॥ १ ॥
फाँदि दीठि-गुनि मन-घटहिं, रूप-कूप में डारि।
को न पियत जग-मग चलत, सुखमा-सलिल निकारि ॥ २ ॥
जनि मुख देखै मुकुर में, परिहै उलटि उदोत।
कहाँ समाये गौ रुके, छवि-सरिता कौ सोत ॥ ३ ॥
कह्यो जात नहिं रहत है, रुई लपेटी आग।
लखौ फारि घूँघट, लगत, कस नहिं हिये दवाग ॥ ४ ॥
कौन सिया की खोज में, फिरत बिकल दिन रैन।
राम लखन से धनुष लै, कानन-सेवी नैन ॥ ५ ॥
नयन-नीर-निधि की कछू, उलटी चाल लखाय।
मुख-शशि देखे घटत जल, बिनु देखे उमड़ाय ॥ ६ ॥
लखि बिरहिन के प्रान सखि, मीचहुँ नाहिं दिखात।
फिर फिर आवत लेन पैं, मुयौ समुझि फिर जात ॥ ७ ॥
का कहिये इन दृगन कौं, कै चन्दा कै भानु।
सौहैं ये शीतल लगैं, पीछे होंय कृशानु ॥ ८ ॥

१—एक रदन=एक दाँत वाले। कुंजर वदन=हाथी के समान मुख वाले। लघु-नैंन=छोटे नेत्र।

२—फाँदि=बाँध कर। दीठी-गुनि=दृष्टि रूपी रस्सी से। मन-घटहिं=मन रूपी घड़े को। रूप-कूप=रूप रूपी कुएँ में। जग-मग=संसार का रास्ता। सुखमा-सलिल=सौन्दर्य रूपी जल।

३—मुकुर=शीशा। उदोत=प्रकाश। छवि-सरिता=सौन्दर्य रूपी नदी। सोत=प्रवाह।

४—दवाग=दावाग्नि।

५—कानन-सेवी=वन वासी, कानों तक फैले हुए।

६—नयन-नीर-निधि=नेत्र रूपी समुद्र। मुख-शशि=मुखरूपी चन्द्रमा।

७—मीचहुँ=मृत्यु को भी। मुयी=मरी हुई ही।

८—कृशानु=अग्नि।

आग जुदाई की सकैं, कैसे आँसु बुझाइ।
टूटत दोहू दृगन तें, जुदे जुदे जब जाइ ॥ ९ ॥
उतर न घूँघट-रन्ध्र में, चढ़िबौ कठिन महान।
तिय यह तेरे हित रच्यो, रे मन मूसादान ॥१०॥
आह भरत दिन, यामिनी, रोवत अँसुवन ढारि।
सन्ध्या एकहि घरी की, विरहै एक अपार ॥११॥
नेह-नदी में सुमन सौ, बिखरि जात यह गात।
मन बूड़त, दृग बहत, जिय, छिन छिन गोता खात ॥१२॥
विन्दी लाल लिलार पैं, दई बाल यहि हेत।
समझैं आवत दृग पथिक, खतरा कौ संकेत ॥१३॥
तिय मो मानस-कूप में, गिर्‌यो कछू तव है न।
काँटे सी भ्रू डारि कै, कहा बिलोवै नैन ॥१४॥
आधी अँखियन देखि तिय, आधौ करै न काहि।
कैसे सो पूरन वचै, निरखै पूरिन जाहि ॥१५॥
कस न रिपटि नैना गिरैं, सुखमा-सर मंझधार।
अंगराग अंगन चढ़्यो, जनु सोपान सिवार ॥१६॥
रवि शशि ते कहुँ सौ गुनी, मुख पैं सुखमा स्वच्छ।
मुख लखि बिकसत हिय नयन, कमल कुमुद तें अच्छ ॥१७॥

९—जुदे-जुदे=जब कि स्वंय ज़ुदाई से दुखी हैं।
१०—घूंघट-रन्ध्र=घूंघट के छेद में। मूसादान=चूहे फँसाने का कटघरा।
११—यामिनि=रात्रि। अँसुवा ढारि=आँसू बहाकर, यहाँ तारो से तात्पर्य है। सन्ध्या=संयोग सायंकाल। १२—गात=शरीर।
१३—लिलार=मस्तक। १४—मानस-कूप=हृदय रूपी कुँआ। काँटे=वह काँटा जिससे कुएँ में गिरी हुई वस्तुएँ निकाली जाती है।
१५—पूरन=सम्पूर्ण। पूरिन=भरपूर पूरी आँखों से
१६—सुखमा-सर=सौन्दर्य रूपी तालाब। अंगराग=चंदन लेप। सोपान-सिवार= सीढ़िओं की काई। १७—अच्छ=श्रेष्ठ।

को जीतत हारत कहो, लोयन की सखि रार।
जो डारत धारत कि जो, अपने उर में हार ॥१८॥
चितै चितै इत उत चितै, देत उतै उहि ओर।
उहि चितवत चित नचत जनु, लखि निर्जन-वन मोर ॥१९॥
मुख चितवत गिर गिर परत, चख पद नख की ओर।
गिरत उत्यो जेत्थो चढ़त, मानहु रज-गिरि जोर ॥२०॥
रूप-कूप में सुमुखि के, मन-घट देखि अरै न।
फेर न रीतत भरे ते, रीते बिनु निक सैन ॥२१॥
को अँखियारो सकत है, हरि सौ आँख लगाय।
सपनेहूँ में लखि उहैं, लगी आँख खुल जाय ॥२२॥
किहि पहिनावत है अरी, गुहे अँसुवन को हार।
पिय नहिं बैठ्यो, है हिये, बानर बिरह अनार ॥२३॥
बचि मेरे दृग-सरन तें, छिपे मो हिए आइ।
कहँ छिपिहौ हरि छिनक में, दैहौं हियौ जराइ ॥२४॥
यह दृग देखें दसहुँ दिसि, छिपौ कहाँ नँदराइ।
छिपनौ है यदि दृगन सौं, छिपौ दृगन में आइ ॥२५॥
इन बिशाल अँखियान कौं, जलधहुँ कहैं न तोष।
काहि न बाँधे मथे ये, काहि न लेवे शोष ॥२६॥
गहन परे हम करति हैं, जपतप पूजा दान।
बिरह परे हम शशि-मुखिनि, शशि कत होत कृसानु ॥२७॥

१८–हार=माला या पराजय।
१९–चितै=देख कर। चितै=चित्त को
२०–रज-गिरि=बालू का पर्वत।
२१–अरै न=मत डाल।
२२–अँखियारो=आँख वाला
२३–अनार=अनाड़ी।
२४–दृग-सरन=नेत्र रूपी बाणों।
२५–नँदराई=कृष्ण।
२६–जलधहुँ=समुद्र। समुद्र बांधा, मथा और सोखा गया था, यही दशा आँखों की हैं।
२७–कृसानु=आग।

यहि तनु वैठ्यो बिरह-चिक, बैंचत माँस तरासि।
मिलन-आस दै जात लै, आमिष-प्रिय प्रति स्वाँसि ॥२८॥

हारी पपिहौ सौं रटत, पिउ पिउ आठौ याम।
घर आये घन स्याम नहिं, घिर आये घन स्याम ॥२९॥

करयो कहा हम वाल कस, रोवत मोरत नैन।
लेखौं जु हरि नैनन बसो, कसिके कै कसि कै न ॥३०॥

ऐसी कहूँ प्रतीक्षा, देखी हम सुकुमार।
सूख रही है द्वार पै, खुद ह्वै बन्दनवार ॥३१॥

जित अटकै चटकै न तिति, चटकै पुन अटकै न।
खेली हरि अब खेलिहौं, अटकन-चटकन मैं न ॥३२॥

कहाँ पियत डारत कहाँ, घट सौं जीवन-धार।
प्यास लगी हरि है तुम्हैं, सींचत हियौ हमार ॥३३॥

कही उड़ौ ज्यों आज जो, आवत हौं नँद लाल।
कागा उड़िबे कौं करी, पँख सी फूली बाल ॥३४॥

घाली बिरहा बाघ की, को छूवे सखि तोय।
मीचहुं फिर फिर जात लखि, सभय स्यार सी होय ॥३५॥

दाहत है विरहीन कों, सुलगि सुलगि सब गात।
शशि न अरे अंगार यहु, किन चकोर उड़ि खात ॥३६॥

२८–विरह-चिक=विरह रूपी चिकवा। तरासि=काट कर। आमिष-प्रिय=मांस-प्रेमी।

२९–याम=दिन। घन स्याम=कृष्ण या काले बादल।

३०–कसिके=कसक रहे हैं। कसि कै=जोर से। ३१–प्रतीक्षा=राह देखना।

३२–अटकै=प्रेम हो। चटकै=टूटे। अटकन-चटकन=एक खेल।

३३–हियौ=हृदय को। ३४–पँखसी=पंखों के समान।

३५–घाली=घायल की हुई। बिरहा-बाघ–विरह रूपी सिंह।

३६–दाहत–जलाता। किन=क्यों नहीं।

बाँटौ बटै न दुख सखी, यहू कहत सब कोइ।
हौं मरहीं तो रियहिं का, बिरह न दूनो होइ ॥३७॥
लौ पल्लव-अँगरा-सुमन, भस्मी जासु पराग।
सूख्यो तरु कों करत है, तरुन पुनः लगि आग ॥३८॥
किन उपदेस्यो इन दृगन, गरु गीता को ज्ञान।
जकत न जान अजान पै, चालत चितवन बान ॥३९॥
सदा दिवारी हू रहत, श्री न जात कहुँ छोड़ि।
तन-द्युति लहि जँह दीप सौं, राखत भूषण होड़ि ॥४०॥
तिरछी सिधी चाल-चलि, ज्यों गज उष्ट्र तुरंग।
देन मात हिय-शाह कों, खेलत दृग सतरंग ॥४१॥
इन अयान अँखियान कौं, कहा बिसाह्यो बैर।
असवस जिन वसनिज किये, गैर किये निज गैर ॥४२॥
भये अनोखे वैद ये, नये नौसिखा नैन।
सब रोगन पै एक रस, सीख्यो गोरस दैन ॥४३॥
कहत हँसी करि शशि मुखी, दुखी करत कस मोइ।
तुम्हैं देखि हरि ह्वै सुखी, को हँसमुखी न होइ ॥४४॥
शैशव अस्व बनाइ तुहिं, यौवन मत्त मतङ्ग।
बना ऊँट बैठत जरा, नर तेरो क्या रंग ॥४५॥

३७—बाँटो बटै=बटाने से नहीं बँटता। हौं=मैं।

३८—लौ……सुमन=ज्वाला पत्ते और फूल ही अंगार है। भस्मी……पराग=राख ही पराग है।　३९—उपदेस्यों=उपदेस दिया। जकत=डरत।

४०—तन-द्युति=शरीर की कान्ति।

४१—उष्ट्र=ऊँट। तुरंग=घोड़ा। हिय शाह=हृदय रूपी राजा। सतरङ्ग=शतरञ्ज।

४२—अस-वस=लाचार होकर। जिन वस=जिनके वशीभूत होकर। गैर=दूसरे।

४३—नौसिखा=नौसिखिया। गोरस=इन्द्रिय रस।

४४—हँसमुखी=सूर्य मुखी, प्रसन्नवदना।

४५—अस्व=घोड़ा। मतङ्ग=हाथी। जरा=बुढ़ापा।

नेह लतन की जतन सौं, हृदय निकुञ्जनि गोइ।
राखौ बतियाँ मिलन की, जनि उँगरावे कोइ ॥४६॥
कहँ सखि मिलत मदान में, भरे उजास उमङ्ग।
जीवन में मिलि नेह जस, खरे खिलावत रङ्ग ॥४७॥
उलटी गति यह नेह की, लगतन लगै न देर।
लगै लगाये हू नहीं, मेटे मिटै न फेर ॥४८॥
आज कली कल कुसुम खिलि, परौं जाति मिलिधूल।
अलि कासौं अनुराग करि, रह्यो आपुकों भूल ॥४९॥
बरजत तुम्हें बसन्त हम, इन बागन जन आव।
आये शीत सिरात है, गये लगत है लाव ॥५०॥
विरह-मिलन-दिन यामिनी, नगुनि नेह निशि नाथ।
घटत बढ़त प्रकटत दुरत, रहत एक सम साथ ॥५१॥
देखत मुख न दिखावत, रहत कौन की ठौर।
जब तें भे हरि और के, तब तें भे हरि और ॥५२॥
बाँधी बेनी-असित-अहि, बाँधि असित पँखमोर।
बाँधिय काले कान्ह कौं, कजरा दै दृग कोरि ॥५३॥
प्रेम-पयोनिधि की पृथा, कुल बिपरीत लखाइ।
तिरत सुमन सौ मन सदा, मन सौ तनु उतराइ ॥५४॥

४६—बतियाँ=बातें, फल। उँगरावे=उँगली दिखावे।

४७—मदान=इन्द्रधनुष। उजास=प्रकाश। जीवन=पानी या जिन्दगी। नेह=प्रेम या तेरु। ४८—लगतन=लगते हुए। फेर=फिर।

४९—परौं=परसों। अलि=भ्रमर। आपुको=अपने को।

५०—लाव=आग। शीत=ठंडक।

५१—विरह····यामिनी=विरह मिलन रूपी रात और दिन। न गुनि=न ख्याल कर।

५१—ठौर=जगह। और=दूसरे।

५३—बाँधी····गोर=बेनी रूपी काली नागिन को काले मोर पंख बाँध कर बाँधा।

५४—सुमन सौ=फूल के समान हलका। मन सौ=मन के समान वजनदार।

सोहत बिन्दी भाल पै, कालिन्दी मझधार।
इन्दीवर पै चढ़ी जनु, इन्द्रबधू सुकुमार ॥५५॥
कितनौ बरसौ जलद जल, भरौ सरित सर कूप।
ये नैना भरिहैं नहीं, बिनु देखे तद्‌रूप ॥५६॥
जब लौं पिय सौंहैं खरे, डारि गरे में बाँहि।
जगमय पिय तब लौं लखौं, पिय मय जग जब नाँहि ॥५७॥
अपने अनुभव तें कहौं, जनि लगाव कोउ नेह।
सौ रोगन कौ रोग यहि, सौ औगुन को गेह ॥५८॥
नेह न छूटै बरु जरै, निर्जीवन ह्वै गात।
जीवन-धन घनस्याम लौं, धुवाँ अवस उड़ि जात ॥५९॥
पिय आवन की बाट में, लटकी दिहरी द्वार।
अटकी रहत किवार सी, झटकी सी सुकुमार ॥६०॥
दो कौ दो तक ही पढ़ो, चहिए दृगन पहार।
बढ़त तीन कौं होत हैं, साँचहु छे ही सार ॥६१॥
लिखि लिखि जात शरीर पै, करुन कथा निज काल।
दुख सुख हमैं जो होत है, वहि कौ पढ़े सुहाल ॥६२॥
मन हू दिये न मन मिलत, है मन इतौ अमोल।
बिना मोल के लेत पै, ज़िनके लोचन लोल ॥६३॥

५५—कालिन्दी=यमुना। इन्दीवर=कमल। इन्द्रवधू=बीर बहूटी।

५६—तद् रूप=तुम्हारे ही समान रूप वाले को (श्याम की)

५७—सौहैं=सामने=जग-मय-पिय=प्रियतम मय संसार। पिय-मय-जग=संसार मय प्रियतम। ५८—औगुन=अवगुण।

५९—वरु=चाहै। अवस=अवश्य। ६०—बाट=रास्ता।

६१—पहार=पहाड़ा। दो से पहाड़ा पढ़ना दो नेत्रों का अच्छा है अर्थात् चार होना, किन्तु चार से छः होना अर्थात् २ का ३ से पहाड़ा पढ़ना ठीक नहीं अर्थात् तीसरे को खबर लगना।

६२—काल=समय। ६३—लोल=चंचल।

अमिय लगत मदिरा रमत, विष बिछुरित तिय नैन।
जीव भुगुत अरु मोचिहू, बिधि-हरि-हर ह्वै दैन ॥६४॥
अरे बटोही प्रेम-मग, सम्हर धारियो पाँइ।
सम-थल समुझि न भूलियो, पग पग कपट कुराँइ ॥६५॥
को चाहत कोउ दूसरो, होवे आप समान।
विधि हू देत न चारमुख, काहू कों यहि ठान ॥६६॥
अपनी ही जो आह की, आँच लगे कुम्हलात।
ताहि जरावे कत अनल, बरसत झंझावात ॥६७॥
इत की उत-उत की इतै, कहि कहि बात बनाइ।
चुगल चवाइन सैन यहि, लोइन देत लड़ाइ ॥६८॥
चार होत चख मिलि जबै, जीत लोक की लाज।
चारहु फल युत मिलत है, चारहु दिशि कौ राज ॥६९॥
भले ऊजरो होइ रँग, कहैं कनक सौ लोइ।
पै पिय-पारस परस बिनु, काया कनक न होइ ॥७०॥
नित प्रति पावस ही रहत, बरसत आठों याम।
ये नैना घनस्याम बिनु, आप भये घनस्याम ॥७१॥
नयन-नीरदहु ये कृपन, बरसत कछु न बिचारि।
सुख में स्वाँती बूंद कछु, दुख में मूसरधारि ॥७२॥
एक विन्दु दृग-मसि गये, चली रोशनी जात।
कस न गये फिर श्याम के, दृग सौं, होवेरात ॥७३॥

६४—बिधि-हरि-हर=ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
६५—कुराँइ=धोखे के गढ्डे जो घास आदि से ढके रहते हैं।
६६—विधिहू=ब्रह्मा भी।
६७—जरावें=जलाने के लिए। कत=क्यों। ६८—लोइन=आँखो को, लोगों को।
६९—चख=नेत्र। चारहु फल=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।
७०—पिय-पारस=प्रीतम रूपी पारस। परस=स्पर्श। कनक=स्वर्ण।
७१—पावस=वर्षा। घनश्याम=कृष्ण, काले बादल।
७२—नीरदहु=बादलों की भी। ७३—दृग-मसि=आँखों की श्यामता।

तोरत मोरत तरुन कों, जीवन सोखतजात।
चली की आवत है जरा, चलत कि झंझावात ॥७४॥
मुक्तन हू की यह दसा, सेवत तिय के अंग।
भुक्तन की का चालिये, जिन उर बसत अनंग ॥७५॥
सीदत भव रुज सौं सदा, गुन न करत रस कोइ।
जाहि न लगत कवित्त रस, ताकी दवा न होइ ॥७६॥
काटत जाके वाहि के, जियत लगाये नेह।
नहीं स्वान सौं न्यून ये, नैना विषके गेह ॥७७॥
है अति सीधी खोलबी, लज्जा की सरफूँद।
पै जो फन्दा में फँसत, ताहि देत है खूँद ॥७८॥
को न आपनो जगत में, जीवन देत डरात।
विरह जरत यहि हिये में, नींदहु धसत सँकात ॥७९॥
निधरक हरि पहिरें रहो, धरौ न धरकि उतारि।
कौन अहीरिन को सकत, कह, हीरन को हारि ॥८०॥
बजे तुम्हारे एक से, वंसी संख मुरारि।
वंसी ब्रज बीहर कर्‌यो, संख दिली संहार ॥८१॥
दौरे आये गगन तें, गरुड़ बिना गज हेत।
सुनत न हरि गज-गवनि की, विरह-ग्राह जिय लेत ॥८२॥

७४—तरुन=वृक्षो, युवकों। जीवन=जिन्दगी, पानी।

७५—मुक्तन=मोक्ष प्राप्त। भुक्तन=भोगियों।

७६—भव रुज=सांसारिक रोग। गुन न करत=लाभ नहीं पहुँचाता।

७७—स्वान=कुत्ता। प्रसिद्ध है कि जिसका कुत्ता काटता है उसी का तेल लगता है। इसी प्रकार जिसके नेत्र काटते हैं उसी के नेह (तेल) लगाने से मनुष्य जीता है। ७८—सरफूंद=फन्दा। खूंद=कुचल।

७९—सँकात—डरती है। ८०—निधरक=विनाडर। धरकि—डरकर।

८१—बीहर=बीहड़। संहार=नाश।

८२—गज-गवनि=गजगामिनी। विरह-ग्राह=विरह रूपी ग्राह।

इन मृग नैनिन का भयो, भजि भजि कुञ्जन जाँइ।
कुञ्ज-बिहारी, केहरी, जहाँ बसैं बिरमाँइ ॥८३॥
जब लौं सँग हरि राधिका, हरयो रहै यह बाग।
बिछुरत पीरी राधिका, स्यामहु कोरे काग ॥८४॥
परी विरह-मरु-कुरङ्ग है, प्यास प्रेम-जल भूर।
प्रेम - सरोवर - स्यामरो, नियरे पहुँचत दूर ॥८५॥
ज्यों ज्यों तनु तें लरकई, झरत राख सी जात।
अँग अँग आवत कढ़त नव, अँगरा से रत-गात ॥८६॥
इक ब्रज-माली के गये, उजर गयो यह बाग।
कोइल जहँ बोलत रही, तहँ बोलत अब काग ॥८७॥
आग और बिरहाग की, है कछु उलटी टेक।
एक बुझत ईंधन बिना, ईधन बिनां न एक ॥८८॥
परभृत कारे कान्ह की, भगनि लगै सतभाइ।
ननद हमारी कुहिलिया, कस न हमैं तिनगाइ ॥८९॥
ओही ब्रज ओही विटप, ओही बिपिन बिहंग।
विनु ब्रज बानिक के भये, बीहर वेरस रंग ॥९०॥
नैन भले बोलैं सुनैं, बिनु जिह्वा बिनु कान।
हीरा कैसी हिये को, करैं परख पहिचान ॥९१॥

८३—कुंज बिहारी केहरी=कुंज बिहारी सिंह (कृष्ण)। विरमाँइ=विश्राम करते हैं।
८४—हर्‌यो=हरा।
८५—विरह-मरु=विरह रूपी रेगिस्तान। स्यामरौ=श्री कृष्ण, श्याम रंग का।
८६—नव=नई। अँगरा=अंगारा। ८७—व्रज-माली=कृष्ण।
८८—इंधन=जलाऊ लकड़ी आदि। ईधन=इस स्त्री।
८९—परभृत=दूसरे से पाले गए, कोयल। तिनगाइ=चिढ़ाना।
९०—व्रज-बानिक=श्रीकृष्ण। वीहर=बीहड़, उजाड़।
९१—परख—परीक्षा। हीरा की परीक्षा उँगलियों के इशारे से इधर-उधर देखकर की जाती है।

स्वाँसा के टूटे बहुर, उर नहिं लेत उसाँसु।
आसा के टूटे गिरत, टूट टूट ये आँसु ॥९२॥
कोलत काठ कठोर क्यौं, होत कमल मैं बन्द।
आई मो मन-भँवर की, इतनी बात पसन्द ॥९३॥
समय पाइ कै रूप धन, मिलत सवैई आइ।
विलस न जानै याहि जो, समय गए पछताइ ॥९४॥
ससि चकोर के दरद कौ, जब तुहिं असर न होई।
कूहू निसा षोड़स कला, तब तैं बैठत खोइ ॥९५॥
चल न सकै निज ठौर तैं, जे तन-प्रभु अभिराम।
तहाँ आइ रस बरसिवौ, लाजिम तुहि घन-स्याम ॥९६॥
तेरी है या साहिवी, वार पार सब ठौर।
रसनिधि कौ निसतार लै, तुही प्रभूकर गौर ॥९७॥
रोम रोम जो अघ भर्‌यो, पतितन मैं सिरनाम।
रसनिधि वाहि निबाहिबौ, प्रभु तेरोई काम ॥९८॥
स्याही बारन तैं गई, मन तैं भई न दूर।
समझ चतुर चित बात यह, रहत बिसूर बिसूर ॥९९॥
अधम-उधारन विरद तुव, अधम-उधार न काज।
जो पै रसनिधि औगुनी, तुमैं सौ गुनी लाज ॥१००॥

———

९२—बहुर=फिर। ९३—कोलत=काटत।
९४—बिलस=बिलास, प्रयोग। ९५—असर=प्रभाव।
९६—तन-द्रुम—शरीर रूपी वृक्ष। ९७—साहिवी=प्रभुत्व, गौर=विचार।
९८—अघ=पाप ९९—स्याही—कालापन।
१००—औगुनी=बुरा।

श्री रामेश्वर शुक्ल

[करुण]

आधुनिक सतसईयों में 'करुण' जी की 'करुण-सतसई' अपने ढंग की निराली है। इसमें करुणाजनक दोहों द्वारा भावुक कवि ने भिन्न-भिन्न विषयों पर देश की करुण परिस्थिति तथा साम्यवाद का चित्र अंकित किया है।

कवि की यह रचना सन् १९३० से १९३४ के अन्तर्गत की प्रतीत होती है। क्योंकि भारतवर्ष के राजनैतिक क्षेत्र में यह युग बड़े ही वर्ग संघर्ष और हलचल का युग रहा है जिसका आभास कवि के दोहों से प्रत्यक्ष मिल रहा है।

करुण सतसई की रचना भी सतसई को उस परम्परा की स्मृति दिलाती है, जो सदा से चली आ रही थी। यद्यपि कवि ने ऐसे कवियों की जो देशकाल की परिस्थिति का ध्यान रखते हुए अपनी रचना 'का श्रोत' उस ओर नही प्रवाहित करते, भर्त्सना की है, तथापि कवि का आधार ठेठ शृगारी कवि बिहारी का ही आधार है और बिहारी-सतसई की परम्परा का पूर्णरूपेण निर्वाह कहा जा सकता है।

कवि का शृङ्गार राष्ट्रीयता है। भावना राष्ट्रीय है किन्तु आधार साम्यवाद है।

कवि की यह रचना पंजाब में हुई है, यद्यपि कवि संयुक्त प्रान्तीय है। अतएव प्रान्तीयता की यह छाप कवि के काव्य में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

श्री रामेश्वर शुक्ल 'करुण' का जन्म इटावा जिलान्तर्गत कदमपुरा ग्राम में एक अत्यन्त निर्धन परिवार में हुआ था। पिता श्री शिवनारायण शुक्ल बड़े ही भावुक और भक्त थे। 'करुण' जी को ऐसी विषमता-मयी निर्धनता में अपना जीवन यापन और फिर अध्ययन किस प्रकार करना पड़ा यह वही समझ सकता है जो इस विषमता का शिकार हो चुका हो।

इन परिस्थितियों और विषमताओं के बीच में रह कर 'करुण' जी ने जो अनुभव और सत्य ग्रहण किये हैं उन्हीं का एक 'पिटारा' उनकी यह 'करुण सतसई' है जो देश की दयनीय और करुणाजनक परिस्थिति का चित्र पढ़ने वालों के हृदय में अंकित कर देती है।

सतसई में सात शतक हैं। प्रत्येक शतक में सौ-सौ दोहे हैं, और उनमें भिन्न-भिन्न राजनैतिक और सामाजिक विषयों पर रचना की गई है। भावों की उड़ान में कवि चाहे जिस दिशा की ओर उड़ा हो, किन्तु उसका मन पंछी लौटकर करुण वृक्ष ही पर आकर बसेरा लेता है, वही उसका नीड और वहीं उसके परिवार का निवास भी है।

सतसई की भाषा को कवि ने स्वयं शुद्ध ब्रजभाषा नहीं माना। जैसा कि सत्य ही है। इसके अतिरिक्त कवि के अपने कुछ रचनात्मक भाषा सम्बन्धी नियम हैं जिसे कवि ने अपने कथनानुसार प्रारम्भ से अन्त तक निर्वाह किया है, किन्तु फिर भी कहीं-कहीं उसकी शिथिलता लक्षित होती है।

कवि ब्रजभाषा के तत्सम शब्दों से बचता रहा है। उसने व के स्थान पर ब का प्रयोग अपने लिये अधिक उपयुक्त समझा है।

अन्य कवि की रचनाओं के आधार पर कवि ने जो अपने भाव दिये हैं, उनमें कहीं-कहीं तो कवि को सफलता मिली है, किन्तु अधिकांश वे हास्यास्पद ही सिद्ध होते हैं।

करुण सतसई अपनी रचना काल का एक अच्छा राजनैतिक, ऐतिहासिक प्रतिबिम्ब और कवि के कारुणिक हृदय अनुपम चित्र है।

[दोहा]

कबहुँ तप्यो-पर-ताप ते, हरी कबहुँ पर-पीर।
आसा-हीन अधीर-कहँ, कबहुँ बँधायी धीर॥ १॥
नारकीय कहुँ यातना, सुनि हरिजन की कान।
पश्चात्ताप-विलाप तें, तड़पाये तन-प्रान॥ २॥
सुनि श्रमजीवी दीन की, करुणा जनक-पुकार।
तिलमिलाय तड़पाय कहुँ, कीन्ह्यों कछु प्रतिकार॥ ३॥
विधि से, निधि से, नेम से, गुरु से ग्यानी, गन्य।
रवि से, छवि से, छेय से, कबि से कबिवर धन्य॥ ४॥
करुण कथा कोउ दीन की, कहतो सुकबि प्रवीन।
किमि लहतो उपहास इमि, मोसम मनुज मलीन॥ ५॥
कह्यो कबिन शृंगार ही, यद्यपि सुषमा-सार।
सोहै किन्तु मसान महँ, कबहुँ कि राग मलार॥ ६॥
देखि दशा सुकबीन की, सुधि आवै उपखान।
भौन जरै इक दीन को, इक गावै मृदु तान॥ ७॥
देखि देश-कानन दह्यो, दुसह दुकाल-दवाग।
कबि कोकिला अलापही, ठूँठन बैठि सुराग॥ ८॥
निस-दिन 'झंझावात' के, मरमर सुनत महान।
आवत कृशित किसान की, किन्तु कराह न कान॥ ९॥
परै प्रलोभन कोटि किन, करै न चञ्चल कोय।
खरो कसौटी तें कढ़ै, नेता कहिये सोय॥१०॥
बेड़ा भारत-भूमि कौ, किमि करिहैं ये पार।
नित्य नशा नेतृत्व को, जिन पै रहत सवार॥११॥
पावस के कृमि कीट लौं, उपजैं नेता भूरि।
सोई सुजन सराहिये, करै श्रमिक-दुख दूरि॥१२॥
होत, भये, ह्वै हैं सदा, सकै न कोई थाम।
रोटी के बिन विश्व मे, नर-नाशक संग्राम॥१३॥

एक दिवस की भूख तें, होत मनुज बेहाल।
तीसौ दिन भूखे रहैं, तिनके कौन हवाल ॥१४॥
किमि दानवता भूख की, समझै धनिक अमीर।
कबहुँ कि जानै बाँझ हूँ, प्रबल प्रसूती-पीर ॥१५॥
सेवा-धरम निबाहि नित, करत अपावन पूत।
छूत छुड़ावत जगत की, ते किमि भये अछूत ॥१६॥
चोरी-जारी नहिं करहिं, नहिं नित बैठे खाहिं।
केहि कसूर धौं बिप्र जी, हम सों सदा घिनाहिं ॥१७॥
क्यों न अभागे हिन्द की, बढ़हि बिपत्ति अकूत।
कोटिन पूत-सपूत जहँ, समझे जात अछूत ॥१८॥
सेवा के शुभ मर्म कौ, करि नीके निरधार।
गाँधी याँचत ईश ते, हरिजन-घर अवतार ॥१९॥
विश्वम्भर, महि-देव, शिव, ग्राम-देव, गुनधाम।
महा महीपति, धान्यपति, कृषिपति, कृषक-ललाम ॥२०॥
सीस गठा, पग पान ही, कर हँसिया रज माथ।
यहि बानिक उरपुर बसौ, सदा सुखेती-नाथ ॥२१॥
रहे सकल सुख साज के, साधन-मूल-किसान।
तिनके नासत ही भयो, बंटाढ़ार, महान ॥२२॥
याहू तें बढ़ि विश्व मँह, ह्वैहै कहुँ अन्याय।
जो उपजावत अन्न वह, मरत अन्न बिनुहाय ॥२३॥
दीन-मलीन अधीन ह्वै, कब तें करत पुकार।
बन-रोदन सी होत है, किन्तु किसान-गुहार ॥२४॥
कृषक-बधूटिन की दशा, को कवि सकै बखान।
लाज निवारन हेतु जो, नहिं पातीं परिधान ॥२५॥
कीन्हे रूप कुरूप यह, लीन्हे लरिका चार।
कौन खरी बिपदा भरी, दरति दराने दार ॥२६॥
श्रमिक: श्रमिक, हाँ हौं वहै, बेंचहिं श्रम अनमोल।
दीन दशा तिनकी न क्यों, देखहु आँखिन खोल ॥२७॥

जब लौं 'श्रम' अरु 'उपज' कौ, होत न साम्य विभाग।
बुझै बुझाए किमि कहौ, यह अशान्ति की आग ॥२८॥
इक फूँकहिं बहु बित्त नित, पान-सियारन माहिं।
एकहि करि श्रम कठिन हूँ, रोटिन को ढँग नाहिं ॥२९॥
इक शतरंजन मैं रमे, मनरंजन के हेत।
एकहिं घोर-कठोर श्रम, साँसहुं लेन न देत ॥३०॥
पढ़त न एकन के तनय, कीन्हे यत्न अनेक।
रहत अभागे मूढ़ ह्वै, शुल्क बिना सुत एक ॥३१॥
करहिं कठिन श्रम नित्य इक, बाँधि पेट श्रम कार।
उपभोगहिं, इक चैन सों, पूँजीपति-बेकार ॥३२॥
धनि-धनि न्यायाधीश जी, धनि तव न्यायागार।
तीन हाथ भू हेतु हम, खोये तीन हजार ॥३३॥
यहि डर विधवा को मनहुँ, करत बिवाह न आन।
'दाल मंडई' देश की, ह्वै जैहैं बीरान ॥३४॥
शान्ति-सुकृति-सौरभ कहाँ, कहँ साँचो सुख चाव।
युवा-शक्ति कानन दह्यो, वेकारी-दुख-दाव ॥३५॥
कष्ट किसानन के गुनै, तुम सम को जग अन्य।
युवक-हृदय-सम्रात, श्री बीर जवाहर! धन्य ॥३६॥
दल्यो विरोधिन के दलन, चल्यो स्वचेती चाल।
हिल्यो न हित की राह तें, धनि मुस्तफा कमाल ॥३७॥
धर्मराज से सत्य प्रिय, अर्जुन से मतिमान।
जर-जमीन-जन-हेतु हा, जूझि भये म्रियमान ॥३८॥
सुरगण हू ह्वै मुग्ध जहँ, चाह्यो निज अवतार।
मच्यो आज वा भूमि पै, चहुँदिशि हाहाकार ॥३९॥
भेदी भलो न भौन को, करि देख्यों निरधार।
घर के भेदिन सों भयो, भारत गारत-छार ॥४०॥
बढ़ो महा तम बक्र बनि, सरल भये दुख भार।
लखे सरल पशु-बक्र नहिं, होत मनुज आहार ॥४१॥

कारे-गोरे भेद सों, कहँ बदलै आदर्स।
जैसे 'बिड़ला-बन्धु' हैं, त्यों 'राली बादर्स ॥४२॥

श्याम पताका लै करहिं, गाँधी-स्वागत धाय।
रहे पताका मिस मनहुँ, उर-का रौंच दिखाय ॥४३॥

होत सदा जेहि आड़ लै, अत्याचार अपार।
क्यों न कहैं तेहि 'धर्म' कहँ, कोटि बार धिक्कार ॥४४॥

घोर विसमता-व्याधि तें, पावन चाहौ त्रान।
करहु उच्च स्वर सों सदा, साम्यवाद-गुन-गान ॥४५॥

कोटि कोटि हरिजन जहाँ, बिलपहिं दीन-अधीन।
क्यों न होय तिहि जाति को, छिन-छिन जीवन छीन ॥४६॥

लदे लता-तरु-पुंज तें, सोहत सुखद सुधाम।
नंदन-कुंज-निकुंज ? नहिं, भारत-ग्राम ललाम ॥४७॥

नहि शिक्षा नहिं सभ्यता, तापै नित्य दुकाल।
ग्राम अभागे हिन्द के, हैं दारिद-दुःख जाल ॥४८॥

किते न ज्ञानी गुन-भरे, काहि न कौन सिखाय।
कौने तजी न शुभ-गली, सत्ता-मद बौराय ॥४९॥

बित्तवान, धर्मीं, सुधी, पापी, वित्त बिहीन।
बित्ताराधन मैं सदा, देख्यों बिस्व-विलीन ॥५०॥

उनकी भाषा-भेषहू, समझे जात प्रधान।
वे भाषहिं जो सत्य है, असत हमारो ज्ञान ॥५१॥

कछु खैंचत लंका शहर, कछु इटली जापान।
दोहन दुखिया देश को, दीखैं दसहु दिसान ॥५२॥

विद्या-वैभव न्यून नहिं, बल बिक्रम कम नाहिं।
अपने हूँ पर देश महँ, निशिदिन धक्का खाहिं ॥५३॥

पोषक पोंगा पंथ के, देखहिं दृगन उघार।
हैं द्वै जाति जहान मैं, पूँजीपति - श्रमकार ॥५४॥

धन्य पश्चिमा सुन्दरी, मोहनि मूरति-रूप।
नहिं आकर्षं काहि तव, मोहक रूप अनूप ॥५५॥

कर्त्तव्या कर्त्तव्य गुनि, गहैं प्रशस्त विचार।
रहैं सदा सुबिवेक-रत, साँची शिक्षा-सार ॥५६॥

वह शिक्षा केहि काम की, जनि काहू पै होय।
लहैं सहस्रन व्यय किये, काम न आवै कोय ॥५७॥

लहैं सुशिक्षा हू सदा, रहैं कूप मण्डूक।
पावत पुंज प्रकाश पै, जागत क्यों न उलूक ॥५८॥
बाले! क्यों खाले लखै, कह गोयो तैं धूरि।
रे रे, मूढ़, न जानई, खोयो यौवन मूरि ॥५९॥

शैशव को सुचिता सनो, सहज सलोनो गात।
ह्वै झूरो घूरो बनो, झूरिन-पूर लखात ॥६०॥

तरुणाई की तरुणिमा, भरे अरुणिमा अंग।
आह! जरा सब रंग वे, बिनसाये करि तंग ॥६१॥

सुघर गात, साहस प्रबल, रहित बिकार बिषाद।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा तरुणाई याद ॥६२॥

नित खवाय बहु बस्तु भलि, बदन बनायो चारु।
चिता जरायो सो पिता, चुनि चुनि चन्दन चारु ॥६३॥

'पूजित भयो जहान जो, बुद्ध-पदाम्बुज धार।
आह अचानक आजु सो, खँडहर बनो बिहार ॥६४॥
करि-करि भिक्षु बिहार जहँ, सरसायो सुखसार।
साँची कहौं बिहार! हौ, अब तुम वहै बिहार ॥६५॥

वह भारत की बाटिका, वह वैशाली शान।
वह मिथिला-सी सुस्थली, चली रसातल जान ॥६६॥

बिलबिलाहिं बहु बाल कहुँ, जननी कहुँ कल पाहिं।
कहुँ रोटी द्वै टूक-हित, जरठ परे रिरिआहिं ॥६७॥

देखि विसमता-बस बढ़े, अमित अनीति अकाज।
समदरसी करतार मनु, सबहिं कियो सम आज ॥६८॥
दै छाता आकाश को, बिदरी भूमि बिछाय।
योगी कृषक बिहार के, बैठे अलख जगाय ॥६९॥
कहाँ जायँ, कासों कहैं, करुन कहानी रोय।
काम कि आवै कोय जब, बाम विधाता होय ॥७०॥
शस्य-श्यामला भूमि जहँ, रही रम्य सरसाय।
झील भरी तहँ देखिये, मील पचीसन हाय ॥७१॥
पर-कारज साधहिं सदा, तजि सुख स्वार्थ अनन्त।
पदम-पत्र जिमि जग जियें, धनि धनि सन्त महन्त ॥७२॥
साधु-चरित नवनीत सो, कह्यो कबीन वृथाहिं।
वह अपने आतम द्रवैं, यह दूजे-दुख माहिं ॥७३॥
नुरे अथाइन जहँ सुजन, बही ज्ञान की गंग।
अब उन मठन बिलोकिये, गाँजा - भंग - प्रसंग ॥७४॥
लखे द्रव्य-दारानि के, अपरिग्रह - सम्राट।
खुलहिं देव-दासीन सों, तिनके ज्ञान कपाट ॥७५॥
व्यभिचारी, लम्पट, ठगो, अपढ़, असाधु, असन्त।
बनि बैठे अब धर्म के, ठेकेदार - महन्त ॥७६॥
पीवहिं तोला पाँच भरि, जो गाँजा प्रतिवार।
कैसे स्वतन सभाँरिहैं, किमि करिहैं पर-कार ॥७७॥
आतप-तपन तपाय तन, उपजावत श्रम कार।
जात पजार्‌यो सो सुधन, पेरिस के बाजार ॥७८॥
भलो भोगिबो बरु मरे, रौरव-नरक निवास।
या तनु तें तजिबो न पै, पेरिस-पुण्य प्रवास ॥७९॥
नहि पाली कालो प्रजा, भयो न पातक भूरि।
गोरे स्वानन सेइ कै, सुयश लह्यो भरपूरि ॥८०॥

अनुदारहु देशी भले, परदेशी न उदार।
सबल सहारो पाय यह, कर बाँधहिं सरकार ॥८१॥

सुनहु स्वदेशी राज्यको, अनुपम न्याय उदार।
ठाकुर-घर जनमै सुता, प्रति पालहिं कृषिकार ॥८२॥

देखिय देशी राज्य सम, कहँ कौतिक-आगार।
क्रय बिक्रय पशु भाँति जहँ, होत सुने श्रम कार ॥८३॥

द्वै दिन वीते अन्न बिनु, तापै चढ्यो बुखार।
तऊ न मान्यो निर्दयी, लायो बाँधि बेगार ॥८४॥

कौन कहै कारे लहैं, जसुगोरे ते न्यून।
जहँ केवल महराज कौ, 'हुकुम' होत कानून ॥८५॥

अन्ध अशिक्षा तें रहे, तोरी रीढ़ लगान।
ब्योहर के ब्योहार तें, भिक्षुक भये किसान ॥८६॥

सत्रह लै सत्तर दिये, किये न ऋन से पार।
बरु सर्बस लै सेठ जी, अब कीजै उद्धार ॥८७॥

उत पूंजी पति निर्दयी, इत ब्योहर बदकार।
चूंसत हीन अधीन लखि, दीन कृषक श्रमकार ॥८८॥

चरि नित गोचर भूमि तें, भरि बहु सुपय पयोद।
पगुरातीं आतीं अहा, सुरभी मौन समोद ॥८९॥

वे सुरभी सुख दायिनी, कामधेनु धन-खान।
आह! घटे जिनके कटे, जन जीवन, तन प्रान ॥९०॥

समुभि न आवै हिन्दुओ, तुम्हरे हाथन हाय।
कैसे भारत भूमि पर, कटतीं कोटिन गाय ॥९१॥

पूँछ कटी, ग्रीवा फटी, लटी-लटपटी देह।
जीभ कढ़ी, खैंचै लढ़ी, आँधी, आतप मेह ॥९२॥

प्रबल बिजेता, शक्तिधन, ईश्वर भक्त अनन्य।
तपोनिष्ठ, कर्मठ, सुधी, महा मोहम्मद धन्य ॥९३॥

नीति-निपुन, शासन-सुपटु, साधक युक्ति अकाट।
मुगल - राज-बर - मौलि-मनि, धनि अकबर सम्राट ।।९४।।
सुदृढ़-समुन्नत ह्वै फरो, अकबर के बर-बारि।
उखरो मुगल,सुराज-तरु, नवरँण नीति-कुदारि ।।९५।।
फूलो-फलो स्वराज को, सुखदायक बर-बाग।
चपरो करी पजारि कै, नवरँण – नीति – दवाग ।।९६।।
मिले सुजल-पय प्रेम सों, हिन्दू–मुस्लिम भाय।
मजहव की काँजी परे, वहुरि गये बिलगाय ।।९७।।
हिन्दू-मुस्लिम बन्धु दोउ, परे एक रँण चीन्ह।
कटुता की पुट दै मनहुँ, नवरँण नवरँण कीन्ह ।।९८।।
मजहब के कीटाणु की, छायी ऐसी छूत।
अब लौं बैर-बिरोध ते, भारत भयो न पूत ।।९९।।
युवा-कृषक-श्रमकार की, तरल त्रिवेनी तीर।
कोटि-कोटि जन जाति के, न्हाय नसैहैं पीर ।।१००।।

———

श्री दीवान बहादुर चन्द्रभान सिंह 'रज'

साहित्य सेवा में साधारण जनता के साथ-साथ उच्च परिवार के क्षत्रियों ने भी हाथ बँटाया है। यह जाति सदा से ही साहित्य सेवियों की आश्रयदाता और स्वयं भी काव्यरसिक रही है।

दीवान बहादुर चन्द्रभान सिंह 'रज' भी इन्हीं साहित्य सेवियों में एक हैं। आपने 'प्रेम-सतसई' अथवा 'प्रेमचिन्तामणि' ग्रन्थ रचकर अच्छी ख्याति पाई है। इसका रचना काल संवत १९८२ के पहिले का है। यह ग्रन्थ प्रेम-भवन गर्रोली से प्रकाशित भी हो चुका है।

दीवान साहब गर्रोली (मध्यभारत) के जागीरदार हैं। इनके पिता राव रणवीर सिंह संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित कवि, भक्त और सत्यनिष्ठ पवित्रात्मा व्यक्ति थे।

दीवान साहब का जन्म संवत् १९३९ वि० में हुआ था।

दीवान साहब बड़े ही विद्याव्यसनी, रसिक गुणग्राही और काव्यप्रेमी हैं।

आपने लौकिक और पारलौकिक प्रेम को एक ही दृष्टि से देखा है। इसकी झलक आपकी 'प्रेम सतसई' में पूर्णरूप से मिलती है। जिसमें आपके हृदय का प्रतिविम्ब, और उसकी कसकीली पुकार पूर्णरूप से दृष्टिगोचर होती है।

आपने अपनी यह सतलड़ी (प्रेम सतसई) घूंथ कर अपने इष्टदेव प्रेम को जो लौकिक और पारलौकिक दोनों में एक सा है पहिनाई है।

सतसई की भाषा व्रज होते हुए भी कहीं-कही अवधी मिश्रित है।

सतसई की भूमिका पन्नाधीश श्री महेन्द्र सिंह जू देव के कनिष्ठ भ्राता भारतेन्द्र सिंह जू ने लिखी है।

भक्तिपूर्ण राधाकृष्ण की आराधना में कहीं-कहीं दीवान साहब ने अपनी दृष्टि के अनुसार लौकिक प्रेम का जो रूप चित्रित किया है वह खटकता सा है। किन्तु यह तो कवि का दृष्टिकोण ही है इससे क्षम्य है।

'प्रेम सतसई' एक उत्कृष्ट काव्यग्रन्थ है, जिसका आदर प्रेमी जनता में अवश्य होगा। सतसई हिन्दी भाषा की एक निजी सम्पत्ति है, जिसे भारतीमाता को देकर दीवान साहब यशभागी हुए हैं।

❀

[दोहा]

श्यामा-श्याम

[प्रेम सतसई]

जय जय श्री राधारमन, जय मुकुंद गोविंद।
जय स्यामा जय स्याम 'रज', जय किसोर व्रज चन्द ॥ १ ॥
जय राधे वृषभानुजे, जय जय नंद किसोर।
भले बने व्रज नाथ 'रज', विस्व विलोचन चोर ॥ २ ॥
मंगल मय मंगल करन, मंगल फल दातार।
मंगल स्यामा-स्याम 'रज', सुमिरत मंगल सार ॥ ३ ॥
तुम्ही गनेस महेस तुम, तुम सारद तुम सेस।
तुम्ही ब्रह्म ब्रज ईस 'रज', मम प्यारे प्रानेस ॥ ४ ॥
हाय राधिक छाँह पै, स्याम गात अनुराग।
हरित होत 'रज' भ्रमर जब, पावति पुष्प पराग ॥ ५ ॥
गिरि-गुहान सिखिरान ह्वै, आई करत कलोल।
'रज' सम रुज को करन हित, जय-जय जमुन अडोल ॥ ६ ॥
बन्दौं सन्त असन्त जन, दोष न दीजौ कोय।
हौ न कही, लिखि स्याम 'रज, दीनी गुनि करि मोय ॥ ७ ॥

स्यामा-स्याम बिहार कौ, चाहौ रज कछु ज्ञान।
सरल जुगति इक जगत बिच, करिये प्रेम सुजान ॥ ८ ॥
जा ब्रजराज को देव सब, लहँहि सदा सिरधार।
ता 'रज' सौं या देह कौ, धर्‌यो नाम 'रज' सार ॥ ९ ॥
'रज' सतसई सप्रेम नित, स्यामा स्याम बिहार।
जाकी जैसी दीठि हो, सो तिमि लेहि निहार ॥१०॥
अरे बावरे ध्यान दै, मति करि तिय अपमान।
सति सावित्री जानकी, 'रज' नारी धौं आन ॥११॥
संभु राम नहिं करि सके, नहिं पाई निज तीय।
'रज' सोइ नारी स्वर्ग तें, लिये फेरि निज पीय ॥१२॥
बिन नारी नर अर्द्ध रज, वेदहु करहिं बखान।
निंदहिं जे अर्द्धांगिनी, धिक धिक तिनहि महान ॥१३॥
तिय उर औगुन आठ 'रज', कहहिं सु औगुन खान।
उपजहिं रत्न वा खान तें, ध्रुव प्रहलाद समान ॥१४॥
जेहि जगती में हित करत, करत विपति सों पारि।
धर्म, धैर्य अरु ब्रह्म 'रज', व्रत, प्रन अरु वर नारि ॥१५॥
कहत बहुत करतूत नहिं, नित्य बचन दै जाहिं।
'रज' प्रन निभवो आज कल, हँसी खेल कछु नाहिं ॥१६॥
सत्य प्रेम दृढ़ नाव पै, जो चढ़ि जग मझधारि।
स्वयं आर 'रज' और कों, देवै पार उतारि ॥१७॥
होत जहाँ रसरीति कछु, तहँ जग हेतु लखात।
प्रीति-रीति 'रज' उपज से, मन मों मन मिलि जात ॥१८॥
चाहौ धन वर धरम 'रज', सुजस धर्म निज नूर।
प्रम नीति सों पालियो, रैयत को भरपूर ॥१९॥
नित प्रति सालि उदंड हिय, दंडन को दै दंड।
धोखेहु सो 'रज' दीन पै, करियो नाहिं घमंड ॥२०॥
चतुर, गुनी, गायक सरस, श्रेष्ठ साहसी मित्र।
बार मुखी 'रज' रसिक कवि, होवै सभा विचित्र ॥२१॥

हीरा गिरि मणि सर्प बिच, 'रज' सरसिज बिचपंक।
बिधि भूलत ही कंट कहु, दीन गुलावन डंक ॥२२॥
दुःख सुख राखौ मनहि बिच, कहौ न किहु सन जाय।
सुनि कै हँसिहैं 'रज' सबै, करहि न कोउ सहाय ॥२३॥
बारमुखी अरु कूप 'रज', बिनु गुन नैक न देत।
दै रस कुलटा बावरी, अजस वृथा सिर लेत ॥२४॥
जड़ चेतन 'रज' सग कै, तजि मद मोह प्रपंच।
त्यागि दम्भ पाखण्ड सब, तपहु प्रेम की अंच ॥२५॥
सीतल मन्द समीर 'रज', कालिन्दी के तीर।
सखियन सँग श्यामा सहित, झूलत हलधर वीर ॥२६॥
कालिन्दी कछरान के, कदलि करील सुपुञ्ज।
कदँब, केतकी केवरे, कृष्ण केलि रज' कुंज ॥२७॥
श्याम कंठ बिच राधिका, दिये प्रेम गल बाँहि।
चढ़ी कनक की बेल जिमि, 'रज' तमाल तरु माँहि ॥२८॥
एक दिन राधे प्रेम बस, लीन्हे गोद गोविन्द।
सो छवि लखि उर राखि 'रज', उगत निसा बिच चन्द ॥२९॥
प्रेम रूप 'रज' लखत ही, दृग इक टक रहि जात।
लुकि छिपि कै फिर फिर लखत, लखि लखि नहीं अघात ॥३०॥
उत ससि 'रज' इत चंद मुख, उत कलंक इत बिन्द।
उत कुरंग इत नैन मृग, चख चकोर गोविन्द ॥३१॥
'रज' सुमुखी तिय पीठ पर, पड़ी लटैं इमि छुट्ट।
मनहु सुधारस लेत अहि, चढ़े ससी पर जुट्ट ॥३२॥
प्यारो सिर बेनी छुटी, परी पीठ पर आय।
शेष अमी 'रज' चखन हित, चढ़ हिम शिल ह्वै धाय ॥३३॥
बड़े लजीले सजल 'रज', मदमाते रति मैन।
अजब रसीले सित असित, गजब सलोने नैन ॥३४॥
नैन फाँस की गाँस तें, दुसह दुःख ह्वै जाय।
ना निकसै ना दुःख मिटै, पीर सुरज अधिकाय ॥३५॥

कजरारे कारे दृगन, छलत छबीले चोर।
अनियारी 'रज' बाल की, लगत लजोली कोर ॥३६॥
लोचन सित 'रज' असित में, लोहित सुतिल विसाल।
मनहु बीधिगे मीन द्वै, लाल रेसमी जाल ॥३७॥
नैन कटारी भौंह धनु, बरुनि प्रखर हैं बान।
पलक ढाल की ओट 'रज', घालत मैन महान ॥३८॥
गजब गुलाबी गाल बिच, 'रज' तिल इमि छवि देत।
मनहु चन्द्र बिन स्यामता, मधुप कमल रस लेत ॥३९॥
जाके उर ए होत 'रज', होति न ताको पीर।
पै जो ताकत हैं इन्हैं, तेहि मन धरत न धीर ॥४०॥
स्याम पाट कुच कंचुकी, फटी तनिक अवरेख।
मनहु कसौटी स्याम 'रज', खिची राधिका रेख ॥४१॥
तिय कत करत रिसौंह दृग, पिय जब सरस हँसौह।
चढ़त घटत फिरि फिरि बनत, थिर न रहत 'रज' भौंह ॥४२॥
परी परी पर्यंक 'रज', बिवस नींद के माहिं।
बिखरि केस उघरे कुचन, तिय तन सुधि कछु नाहिं ॥४३॥
काम कला में अति कुसल, सनी प्रेम 'रज' रंग।
खड़ी बिसूरति द्वार पर, तिय-मन पिय के संग ॥४४॥
थकी खरी रति अंत में, पकरि धरी निसि नाह।
उघरि परी सारी उरी, 'रज' सुधि बुधि कछु नाह ॥४५॥
लुरलुराति सखियान में, मुरकि मुरकि मुसकाति।
अधर दाबि लखि लाल 'रज, तृन तोरति जमुहाति ॥४६॥
रची खरी विपरीत रति, भई अनोखी लूट।
गिर्‌यो तरौना 'रज' मनहुं, चन्द्र यान चक टूट ॥४७॥
मान समय 'रज' पीठ पै, बेनी पीठ सुहाय।
जाके बिच बेनी दई, पीठि दीजियतु ताय ॥४८॥
धोय-धोय इन दृगन सों, कढ़ि गो वीर अबीर।
जतन बतावौ 'रज' अरी, निकसत नाहिं अहीर ॥४९॥

केलि-कला में तीय कौ, दब्यो कौन 'रज' अंग।
रोय रिसाय डराय हँसि, अकुलानि पिय सग ॥५०॥
सम्पति सन्तति कुटुँब सब, रोगहु तनु नहिं जान।
'रज' पिय संग सोवत सुखद, भरे नैन अँसुवान ॥५१॥
लटपटाति आसव छकी, खटपटाति निस्संक।
सटपटाति 'रज' संग हँसि, चटपटाती पर्यंक ॥५२॥
कहा कहौं 'रज' आजु अलि, जो कीनी मंजार।
नखछत कै दोउ उरज बिच, झिझकि उझकि गई द्वार ॥५३॥
हँसी, लजी, डरपी उमठि, रो अकुलानी नारि।
तऊ समेटि भुज भेंटि 'रज', अंक भरी सुकुमारि ॥५४॥
सारी सिर तें सरकि 'रज', गह्यो उरज आधार।
जिमि संकर के सीस तें, बही सुरसरी धार ॥५५॥
कठिन जतन सों सिंधु मथि, चौदह रतन हँकारि।
प्रेम रतन 'रज' कृष्ण ने, व्रज मथि लियो निकारि ॥५६॥
प्रेम हमारो कर्म है, प्रेम हमारो धर्म।
हमीं प्रेम रज प्रेम बिच, प्रेम हमारो भर्म ॥५७॥
प्रेम सरोवर प्रेम जल, प्रेम जलद सोइ पार।
मज्जहुं कछु दिन प्रेम युत, जानि जगत 'रज' सार ॥५८॥
विहरत कबहूँ सखिन बिच, कबहुँ चरावत गाय।
गुहत राधिका बेनि 'रज', कबहुँ खिझावत माय ॥५९॥
राधा माधो बीच 'रज', अद्भुत प्रेम लखात।
बनती कबहुँक स्याम ये, वै राधा बनि जात ॥६०॥
बिवस प्रेम वन्धन बँधे, प्रकृति ब्रह्म जग सार।
प्रकटे स्यामा स्याम 'रज', करन सुप्रेम प्रसार ॥६१॥
प्रेम समाज बनाय 'रज', सुभग सलोने स्याम।
नृत्यत युवतिन संग नित, श्री बरसाने धाम ॥६२॥
विषय निरत मन हर्ष 'रज', निज बस मन अनुराग।
आनन्द मन बस इन्द्रियाँ, परै सुप्रेम-पराग ॥६३॥

ईस प्रेम द्वै एक 'रज', यही वेद को लेख।
जिमि बाढै नव अंक तइ, रूप एक ही देख ॥६४॥
सबै प्रेम के लालची, प्रम बसी जग जान।
हरिहर लौं बस प्रेम 'रज', और कहौं का आन ॥६५॥
प्रेम प्रेम कहियो सुलभ, करियों कठिन महान।
करिबौ हू 'रज' सुगम पै, दुर्लभ निभबौ जान ॥६६॥
अधर मधुर रस अति सरस, सबही जानत नाहिं।
जिन उर छाक्यो प्रेम 'रज', ते जानत मन माहिं ॥६७॥
सत्य प्रेम 'रज' देखि लो, बनत न लागै देरि।
सावित्री एक प्रेमबस, यम सों पति लिय फेरि ॥६८॥
प्रेम भक्ति अतिही सुलभ, करि जानै 'रज' कोय।
पै यामें एतो कठिन, बिनु हरि कृपा न होय ॥६९॥
'रज' दृढ़ व्रत इकत्याग तें, करैं प्रेम पहिचान।
बिनु इच्छा वहि ध्यान तें, बस होवें भगवान ॥७०॥
एक प्रेम बिच लखि परत, सब लोकन कौ अन्त।
तासों 'रज' रचि प्रेम में, आनन्द लहहु अनन्त ॥७१॥
प्रेम रूप सी राधिका, प्रेम रूप श्री स्याम।
तासों निसिदिन रहत 'रज', जुगुल रूप प्रियनाम ॥७२॥
को जानै 'रज' प्रीति में, कौन दसा दरसाति।
इनतें बनत न कहत कछु, उनतें सुनी न जाति ॥७३॥
मिलत प्रेम सों सत्य पथ, बनत सत्य सों प्रेम।
हरिहर चाहत प्रेम 'रज', प्रेम कृष्ण को नेम ॥७४॥
सहस सरोवर 'रज' हृदय, भर्‌यो प्रेम गम्भीर।
या बिच बिकसे द्वै कमल, पीत नील ब्रज वीर ॥७५॥
बिरह बिहाली राधिका, कृस तनु लीन्हें धारि।
कमलहार को भार 'रज', उर नहिं सकति सँभारि ॥७६॥
जा दिन तें बिछुरे सखी, 'रज' छिन परत न चैन।
मिले न आँखिन देखिबे, सुने न कानन बैन ॥७७॥

तुम्हें न कल जिहि तन बिना, जा तन सो धौं स्याम।
वा तन को 'रज' भूलि कैं, कबहुँ न लीनो नाम ॥७८॥

अहो लाल अस चाहिये, करि अस प्रेम संयोग।
'रज' फिरि पीछे देत हौ, ज्ञान तपस्या योग ॥७९॥

भली बजाई बाँसुरी, वा निसि स्याम प्रवीन।
मोहि रही 'रज' राधिका, ह्वै मुरली आधीन ॥८०॥

बज्रहुँ ते हरि कठिन 'रज', कोमल कुसुम समान।
भए बज्र ब्रज गोपिकन्ह, गज को कुसुम प्रमान ॥८१॥

बड़े चतुर तुम साँवरे, परखे रतन निहारि।
मनी लच्छमी संख 'रज', पहिले लिये निकारि ॥८२॥

राधा वर रसना रटै, कृष्ण चरित सुन कान।
लखैं नेत्र 'रज' स्याम छवि, जनम सुफल जग जान ॥८३॥

कहूँ रहौं कैसेहु रहौं, पल छिन एक न जाय।
सुघर सलोने स्याम में, 'रज' मन सदा हिराय ॥८४॥

स्यामा स्याम सखीन हू, रस बस साजी साज।
मो मन 'रज' लाग्यो रहै, वाही रसिक समाज ॥८५॥

तुलसी पायो राम रस, लख्यो सूर घनस्याम।
को 'रज' अस रस पाय है, अचल प्रेम सुख धाम ॥८६॥

रह्यो न कोऊ भूलि 'रज', भजौ जुगुल वर नाम।
जहाँ स्याम तहँ राधिका, जहँ स्यामा तहँ स्याम ॥८७॥

लख्यो चहूँ दिसि जगत 'रज', बहत प्रसार अपार।
या असार संसार में, केवल स्याम अधार ॥८८॥

विष्णु लच्छमी, राम सिय, माया ब्रह्म समान।
पै 'रज' मन सन्तोष हित, स्यामा स्याम सुजान ॥८९॥

कछुक दिवस में सुन सखी, मन गति ऐसी मोर।
'रज' निसिदिन लागी रहत, स्याम दरस की ओर ॥९०॥

भक्ति जलज जल प्रेम 'रज', मम मानससर मायँ।
मज्जहु स्यामा स्याम नित, बिनय करौं परि पायँ ॥९१॥
प्रेम सिखर पै चढ़ि कहत, 'रज' बस एक कलाम।
भयो कृष्ण को दास मैं, राधा केर गुलाम ॥९२॥
बसिबो ब्रज को है भलो, जैबो जमुना ओर।
सेवो सेवा कुञ्ज 'रज', जपिबो जुगुल किसोर ॥९३॥
'रज' मन की कछु कल्पना, उरि छिपि कै लिखि दीन।
सतसैया यह प्रेम की, स्याम समर्पन कीन ॥९४॥
प्रेम कथा कवितामयी, 'रज' प्रेमी लिखि लीन।
तासों स्यामा स्याम के, कर कमलन में दीन ॥९५॥
हौं न कही, ना कछु लिखी, कीनी कान्ह प्रवीन।
अस विचारि 'रज' सतसई, सौंपि स्याम कर दीन ॥९६॥
कहै सुनै बाँचै गुनै, दोहन की विस्तारि।
वाको स्यामा स्याम 'रज', देत प्रेम फल चारि ॥९७॥
राम नाम 'रज' भानु सम, स्याम नाम सम सोम।
विना स्याम के भानु कौ, भान कौन बिधि होय ॥९८॥
या सतसै बिच दोष नहिं, जे अस करहिं विचार।
तिन उर स्यामा-स्याम 'रज', सन्तत करहिं बिहार ॥९९॥
या सतसै कौ प्रेम सों, जो सब लेवै नाम।
ताको 'रज' की जोरि कर, जय श्री राधेश्याम ॥१००॥

श्री किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर'

कानपुर जनपद की धरती आदिकाल से ही मनीषियों की जन्म स्थली रही है। हिन्दी साहित्य के संवर्द्धन में इसका अग्रणी स्थान रहा है।

बाबू किशोरचन्द्र कपूर 'किशोर' का जन्म कानपुर में कार्तिक कृष्ण ५ सं० १९५६ वि० में लाला ताराचन्द्र जी के यहाँ हुआ। आप के पितामह लाला मातादीन बड़े ही धर्म निष्ठ गो ब्राह्मण भक्त एवं ईश्वर पर विश्वास करने वाले व्यक्ति थे। इसका प्रभाव बालक किशोर पर भी पड़ा। एक व्यापारी प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लेकर बाबू किशोरचन्द्र कपूर इनकी शिक्षा घरेलू ही रही। इन्होंने प्रारम्भ में उर्दू सीखी। क्योंकि इनका व्यापार अफगानिस्तान की ओर काबुल आदि नगरों से था। यह हींग के प्रसिद्ध व्यापारी थे।

हिन्दी की शिक्षा बालकाल में रामचरित मानस ओर श्रीमद्भगवद्गीता के नित्य पाठ से सरलता के साथ हो गई। हिन्दी और हिन्दी साहित्यकारों का स्नेह इन्हें सदा मिलता रहा, जिससे भक्ति भाव के कारण इनके मन में भावनाएँ उठने लगीं। आचार्य 'सनेही' जी के स्नेह बन्धन में इन्होंने भक्ति रस काव्य रचने की बात कही। 'सनेही' जी ने न जाने कितने कवि दीक्षित किये थे। उन्होंने उनसे पूछा कि जो छन्द आप को पसन्द हो आप चुन लें। मैं उसके सम्बन्ध में ज्ञान करा दूँगा। इसके लिए उन्होंने दोहा चुना। आचार्य जी ने उन्हें 'दोहा' के गति यति का ज्ञान करा दिया।

हिन्दी जगत में यों तो मुक्तक दोहाकार एक से एक बढ़ कर हुए हैं, किन्तु एक ही विषय पर इतना बड़ा विशाल दोहा भण्डार कदाचित् ही किसी कवि का हो। उन्होंने 'ब्रजचन्द विनोद' और 'गीता दोहावली केवल दोहों में ही लिखी' हैं। दोहों की संख्या ६३८४ है। 'ब्रजचन्द विनोद' लीलाधाम श्री कृष्णचन्द्र जी का चरित्र आदि से अन्त तक वर्णित है। कथाओं का आश्रय भागवत और महाभारत से लिया गया है, किन्तु यह न तो उनका अनुवाद है न भावानुवाद

कवि ने अपने विचारों को स्पष्ट भाषा में कहीं खड़ी बोली तो कहीं पड़ी बोली में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है और भक्ति की ओर ही भाषा को भी उन्मुख किया है।

शृंगार रस के देवता कृष्ण के चरित्र में कवि ने अपने को अति शृंगारता से बचाया है। वर्णन में वासना की झलक तक नहीं आने पाई। किशोरचन्द जी कानपुर के एक विशिष्ट नागरिक थे। औदार्य और प्रेम उनके सहज स्वभाव के अंग थे। प्राचीन परम्परा के होकर भी आपने सदा राष्ट्रीय गोरव का सम्मान किया। आप के पुत्र श्री मोहनचन्द्र कपूर एडवोकेट अपने पिता के अनुरूप पुत्र हैं।

[दोहा]

'ब्रज चन्द विनोद' से—

सेवक गिरिजा नाथ का, मेरे मन यह आश।
चींटी जैसे चाहती, उड़जाऊँ आकाश।॥ १॥
वैसे ही यह दास तव, सुनिये भोला नाथ।
चाहत है लिखना रुचिर, कृष्ण चन्द्र की गाथ॥ २॥
होनी टलती ही नहीं, हरि माया वलवान।
जो चाहे करते वही, मायापति भगवान॥ ३॥
सोहर होते गेह में, बाजे बजते द्वार।
घर घर गोकुल ग्राम में, आज मङ्गलाचार॥ ४॥
बाल वृद्ध नर नारि सब, हर्षित अमित अपार।
आज छठी है श्याम को, घर घर मची गुहार॥ ५॥

वर्ष गाँठ उत्सव निरखि, हर्षित देव समाज।
नभ से जय जय कर रहा, जय-जय-जय ब्रजराज ॥ ६ ॥

गाय दुहत नित निरखहीं, नन्द बबा को श्याम।
मन में आया श्याम के, सीख लेउँ सब काम ॥ ७ ॥

धन्य-धन्य वह गाय है, दुह्यो जाहि घनश्याम।
धनि-धनि गोपी ग्वाल है, देख्यो दृश्य ललाम ॥ ८ ॥

नील नलिन से नयन है, मन्द मन्द मुसकात।
दमकत हरि के दाँत यों, जिनसे मोती मात ॥ ९ ॥

लिये सखा खेलत फिरे, इत उत मदन गोपाल।
प्रेम मगन ब्रज जन सबै, निरखत होत निहाल ॥१०॥

राधा को मुख चन्द लखि, फीको परतो चन्द।
देखतही वह रूप को, मन में होत अनन्द ॥११॥

जो मोहत है जगत को, राधा मोह्यो वाहि।
धनि राधा को रूप है, कैसे जाय सराहि ॥१२॥

धन्य प्रेम है राधिका, धन्य प्रेम गोपाल।
धन्य धन्य राधा कहो, धन्य धन्य नँदलाल ॥१३॥

मोर मुकुट अरु पीत पट, धारे मुरली हाथ।
उर 'किशोर' के बसहु अब, हे त्रिभुवन के नाथ ॥१४॥

माया से बचता नहीं, निर्धन अरु धनवान।
साधु सन्त छूटत नहीं, माया बड़ी महान ॥१५॥

यह माया भगवान की, जान सका नहिं कोय।
जो चाहत घनश्याम हैं, वही बात सब होय ॥१६॥

मेरे घट में भी बसो, पनघट के घटवार।
है 'किशोर' की कामना, सुनियें नन्दकुमार ॥१७॥

ऐसे छूटी बान यह, गोपिन क़ी इक साथ।
ज्ञान सिखाया कृष्ण ने, धन्य धन्य ब्रजनाथ ॥१८॥

धनि वृन्दाबन धाम है, लता वृक्ष अरुबाग।
जिससे करते श्याम हैं, नित नूतन अनुराग ॥१९॥
हरि ने सब से यह कहा, सब मिलकर तुम ग्वाल।
निज-निज लकुटी दो लगा, पकड़ो खूब सम्हाल ॥२०॥
हरि जिसके नयनों बसे, सुरपुर से क्या काम।
है 'किशोर' की कामना, हृदय बसो घनश्याम ॥२१॥
तनिक दही देकर उसे, ठगती थी ब्रजबाम।
मुग्ध प्रेम में था हुआ, जो है पूरण काम ॥२२॥
वेद ऋचाएँ गोपिका, वेद रुप भगवान।
ब्रह्मचारिणी गोपियाँ, ब्रह्म श्याम निष्काम ॥२३॥
प्रेम प्रशंसा क्या लिखूँ, कोउ न पावत पार।
इसको समझीं गोपियाँ, समझे नन्द कुमार ॥२४॥
प्रेम मनुज का तत्व है, भक्ति रूप है प्रान।
प्रेम-भक्ति जिनको मिले, मिल जावें भगवान ॥२५॥
त्रिभुवन बश में जाहि के, वह डरपत है मात।
धनि मर्यादा नाथ तुम, पालत हो सब बात ॥२६॥
गर्व रहित लखि राधिका, प्रकटे दीनानाथ।
मोर मुकुट छवि निरखि कै, राधा भई सनाथ ॥२७॥
बंशी हरि की बज रही, कालिन्दी के पास।
थिर होकर थे सुन रहे, जलचर सहित हुलास ॥२८॥
यमुना बहती थीं नहीं, सुन बंशी की तान।
प्रेम मग्न सुन रही थी, भूली अपना मान ॥२९॥
मन्द मन्द चलता पवन, सुन कर बंशी राग।
लता वृक्ष सुनते खड़े, उमड़े उर अनुराग ॥३०॥
नभ तक जाती तान थी, सुरगण चढे बिमान।
सुनते थे सुर माधुरी, मौन लगाये कान ॥३१॥

ताता थेई ताल पर, नाचत सब मिलि साथ।
झूम झूम कर घूम कर, सखियन सँग ब्रजनाथ ॥३२॥
ताधिन ताधिन मचा है, रचा रास रस-रंग।
ताथेइ ताथेइ होत है, नृत्यकरत सब संग ॥३३॥
गौर प्रभा से लली की, गौर हुआ सब ठाम।
श्वेत चाँदनी को परस, गौर हुए घनश्याम ॥३४॥
श्वेत हुए पिक काग सब, श्वेत हुआ बन बाग।
श्वेतरंग यमुना भई, श्वेत कालिया नाग ॥३५॥
राधा के सौन्दर्य से, श्वेत हुआ संसार।
मानो पारा का धवल, उमड़ा पारावार ॥३६॥
या आया है क्षीरनिधि, करन श्वेत संसार।
श्री हरि के श्रम हरण हित, परसन चरण उदार ॥३७॥
उत उद्धव रथ आगयो, वृन्दाबन के पास।
खग मृग दौड़े रथ निरख, हरिदर्शन की आस ॥३८॥
कृष्ण कृष्ण रटते हुए, दौड़े रथ की ओर।
आतुर बिह्वल जीव सब, शुक पिक बायस मोर ॥३९॥
गाय बच्छ दौड़े तुरत, बाँय बाँय कर शोर।
मृग केहरि समझे यही, आये नन्दकिशोर ॥४०॥
चोरी की आदत तुम्हें, पड़ी पुरानी यार।
मैं भी तो इस कला में, किन्तु बड़ा हुशियार ॥४१॥
यह कहकर झट श्याम ने, लई पोटली छीन।
तकते ही मुख रह गये, विप्र सुदामा दीन ॥४२॥
खोली हरि ने पोटली, जगे विप्र के भाग।
मुट्ठी भर तन्दुल तुरत, खाये सह अनुराग ॥४३॥
एक लोक की सम्पदा, गई सुदामा धाम।
खाकर मुट्ठी दूसरी, नट नागर घनश्याम ॥४४॥

सम्पत्ति दूजे लोक को, अर्पित की तत्काल।
देख रही थीं रुक्मिणी, हरि का सारा हाल ॥४५॥

मुट्ठी ज्योंही श्याम ने, भरी तीसरी बार।
बोली उठकर रुक्मिणी, सुनिये प्राणाधार ॥४६॥

आप अकेले ही भला, लेते हैं क्यों स्वाद।
सबको मिलना चाहिये, द्विज का दिव्य प्रसाद ॥४७॥

धन्य द्वारिकापुरी है, धन्य वहाँ के लोग।
बसे संग भगवान के, रहे स्वर्ग सुख भोग ॥४८॥

नित नव मंगल होत हैं, जहाँ वसत भगवान।
मनोकामना पूर्ण हो, जो गावे गुन गान ॥४९॥

गोपद धूल कपोल मुख, पीत पटी तन धार।
बैठो हिये 'किशोर' के, नागर नन्द कुमार ॥५०॥

'गीता दोहावली' से

बड़े शोक का विषय है, तुच्छ भोग हित आज।
पड़ें लोभ में लड़ें हम, है अनर्थ का काज ॥ १ ॥

गीता से उत्तम नहीं, कोई ग्रन्थ महान।
सदगति देता ज्ञान भी, और शक्ति भगवान ॥ २ ॥

अमर आतमा नित्य है, कभी न होता नाश।
फिर क्यों करता शोच तू, पड़ा मोह के पाश। ३ ॥

सुख दुख को सम मानते, वे हैं परम सुजान।
विषयों में पड़ते नहीं, जिनको है कुछ ज्ञान ॥ ४ ॥

नित्य अजन्मा आत्मा, सत्य सनातन रूप।
होता नष्ट शरीर पर, इसका अमर स्वरूप ॥ ५ ॥

नहीं शस्त्र काटे इसे, अग्नि न सकै जलाय।
जल में भी भींगै नहीं, पवन न सकै सुखाय ॥ ६ ॥

धर्मयुद्ध है युद्ध ही, सबसे धर्म महान।
और न कोई मार्ग है, जिससे तव कल्यान ॥ ७ ॥

बिना शान्ति के सुख कहाँ, सुन अर्जुन बलवान।
सत्य ज्ञान यह जान लो, बोले श्री भगवान ॥ ८ ॥

फल इच्छा को त्याग कर, ईश्वर को ही मान।
कर्म करे समवुद्धि से, जो नर पार्थ सुजान ॥ ९ ॥

पार्थ त्याग आसक्ति को, हो ईश्वर में लीन।
हरि निमित्त ही कर्म कर, बोले कृष्ण प्रवीन ॥१०॥

इससे अर्जुन करो तुम, ज्ञानी जन सत्संग।
भक्ति भाव उनसे करो, समझो ज्ञान प्रसंग ॥११॥

उत्तम समझो पार्थ तुम, कर्म योग निष्काम।
कर्म योग निष्काम ही, है सुन्दर सुखधाम ॥१२॥

अस्तु चाहिये पुरुष को, सभी कामना त्याग।
वश में करके इन्द्रियाँ, कर मुझसे अनुराग ॥१३॥

शनैः शनैः अभ्यास कर, करै शान्ति को प्राप्त।
ईश्वर का चिन्तन करै, करके मोह समाप्त ॥१४॥

जो मुझको है देखता, सभी जगह ऐ पार्थ।
मुझमें देखे जगत को, समझे मर्म यथार्थ ॥१५॥

मुझसे अलग न और कुछ, समझो पार्थ सुजान।
तागे में मणियों सदृश, मुझमें गुथा जहान ॥१६॥

सत रज तम गुण से प्रकट, होते हैं जो भाव।
मुझसे ही उत्पन्न वे, मेरा पूर्ण प्रभाव ॥१७॥

जो मुझमें तल्लीन हो, भजता मुझको पार्थ।
उस योगी को सुलभ मैं, मानो वचन यथार्थ ॥१८॥

प्रेमभक्ति से प्राप्त हो, सत्य सच्चिदानन्द।
और मार्ग कोई नहीं, बोले श्री ब्रजचन्द ॥१९॥

यज्ञपुण्य अरुदान जो, करो पार्थ तुम तात।
अरपो मुझको ही सदा, है पुनीत यह बात ॥२०॥

माया के इक अंश से, प्रगटाता संसार।
तत्व रूप समझो मुझे, बोले नन्दकुमार ॥२१॥

करता जग को तापमय, तेजोमय यह रूप।
परम प्रकाशित विश्व है, जिससे अखिल अनूप ॥२२॥

ब्रह्म रचयिता आपही, परब्रह्म भगवान।
सत्य सच्चिदानन्द घन, महिमा अगम महान ॥२३॥

पुरुष सनातन आप हैं, आदि देव सर्वज्ञ।
आश्रय सारे जगत के, परमधाम मर्मज्ञ ॥२४॥

कर्म करे मम हेतु जो, सब कुछ मुझको मान।
त्याग बैर आसक्ति को, सुन पाण्डव बलवान ॥२५॥

करता मुझको प्राप्त वह, ऐसा जो अनुरक्त।
परम तत्व यह जान ले, तू है मेरा भक्त ॥२६॥

यदि मन मुझमें स्थिर नहीं, करो योग अभ्यास।
शनैः शनैः अभ्यास से, होगा परम प्रकाश ॥२७॥

द्वेष रहित जनमात्र से, प्रेमी सबका होय।
दया करे हर जीव पर, ममता देवे खोय ॥२८॥

दुख सुख सम समझै सदा, क्षमावान मतिमान।
अपराधी अपराध को, मन से भूले मान ॥२९॥

खिन्न नहीं जिससे जगत, जो न जगत से खिन्न।
हर्ष डाह से मुक्त जो, समदर्शी नहिं भिन्न ॥३०॥

निन्दा अस्तुति मान ले, जो नर एक समान।
यथा प्राप्ति सन्तुष्ट रह, त्यागे मोह महान ॥३१॥

सुन कुन्ती के पुत्र तू, यह शरीर है क्षेत्र।
जो जाने मर्मज्ञ यह, ज्ञानीजन का नेत्र ॥३२॥

हे अर्जुन जिमि सूर्य से, सकल प्रकाशित लोक।
वैसे आतमा क्षेत्र में, करता है आलोक ॥३३॥

सत रज तम गुण से बँधे, जीव देह में पार्थ।
गूढ़ तत्व यह सृष्टि की, समझो बात यथार्थ ॥३४॥

सत गुण के फल जानिये, सौख्य ज्ञान वैराग।
रज गुण का फल दुःख है, तमो अशान्ति अभाग ॥३५॥

मिट्टी पत्थर स्वर्ण को, समझै एक समान।
प्रिय अप्रिय निन्दा स्तुति, यही धीर की बान ॥३६॥

जैसे मारुत संग ही, उड़ जाती है गंध।
वैसे इन्द्रिय आतमा, का समझो सम्बन्ध ॥३७॥

काम क्रोध अरु लोभ ही, समझ नरक के द्वार।
तीनो त्यागे पार्थ जो, वह हो भव से पार ॥३८॥

भाव सत्य निष्काम ही, नियत शास्त्र अनुकूल।
भरे हृदय उत्साह अति, कर्म न जाए भूल ॥३९॥

ज्ञान कर्म कर्ता सभी, गुण स्वभाव अनुसार।
सांख्य शास्त्र में हैं लिखे, इनके तीन प्रकार ॥४०॥

विष सा लगता है प्रथम, अमृत सा परिणाम।
होता बुद्धि प्रसाद से, सुख सात्विक है नाम ॥४१॥

विष ही विष परिणाम है, आदि होय या अन्त।
उसे तामसी सुख कहै, बुद्धिमान सब सन्त ॥४२॥

क्षत्रिय के लो कर्म अब, सभी धनञ्जय जान।
शूर वीरता तेज अरु, धैर्य चतुर बलवान ॥४३॥

दानी ईश्वर भक्त हो, रखता स्वामी भाव।
मुख मोड़े नहिं युद्ध से, भरा युद्ध का चाव ॥४४॥

जन पालक हो हृदय से, प्रजा पुत्र ले जान।
स्वाभाविक ये कर्म हैं, क्षत्रिय के धीमान ॥४५॥

शुद्ध बुद्धि से युक्त हो, धरि धीरज मतिधीर।
करै निमंत्रित स्वयं को, त्याग विषय सब वीर ॥४६॥

राग द्वेष को नाश कर, करै बास एकान्त।
अल्पाहारी रह सदा, मन को रक्खे शान्त ॥४७॥

संयम राखे देह का, वाणी पर अधिकार।
ध्यान योग में निरत जो, रहै विराग विचार ॥४८॥

अहंकार बल दर्प को, मन से देवै त्याग।
काम क्रोध संग्रह सभी, छोड़ देय सब राग ॥४९॥

तब कर सकता प्राप्त नर, सत्य सच्चिदानन्द।
प्राप्त ब्रह्म की हो तभी, छूटै माया फन्द ॥५०॥

जन 'किशोर' को कृष्णजी, दे दो गीता ज्ञान।
और भक्ति अन पायिनी, केशव कृपा निधान ॥५१॥

———

पं० जानकी प्रसाद द्विवेदी

द्विवेदी जी की रचना शैली हमें कबीर, तुलसी और रहीम की रचना शैली की स्मृति दिलाती है। समय आने पर द्विवेदी जी के दोहे कहावतों के रूप में लोगों की जिह्वा पर होंगे, ऐसी आशा है।

द्विवेदी जी सागर (मध्यप्रदेश) निवासी हैं। संस्कृत और हिन्दी के विद्वान हैं। आपकी भाषा व्रज है। कहीं-कहीं ग्रामीण शब्दों का प्रयोग खटकता है। फिर भी सरलता उनकी भाषा का विशेष गुण है। नीति के दोहों में आपको अच्छी सफलता मिली है।

प्राचीन परम्परा के अनुसार प्रत्येक दोहे में आपने अपना नाम अवश्य रखा है। जो कभी कभी पाठकों को खटकता है। दोहों के लिखने में आपको सफलता मिली है।

[दोहा]

परम पुरुष कवि जानकी, बन्दत हौं सिर नाय।
निज ही अनुभव तें हिए, जो प्रभु जान्यो जाय ॥ १ ॥

साँचे कवि कवि जानकी, सोई जानों आप।
गागर में भर देत हैं, जो सागर को आप ॥ २ ॥

कवि कटाक्ष कवि जानकी, जानों असि की धार।
बिन दानी बिन सूरमा, कौन सहै यह बार ॥ ३ ॥

सगुण सरस कवि जानकी, सुवरण सुखद सराग।
इमि कविता अरु कामिनी, पावत हैं बड़ भाग ॥ ४ ॥

अहो सुजन वह शर कहा, कहा काव्य वह आय।
पर हिय लग कवि जानकी, नहीं बेध जो जाय ॥ ५ ॥
कविता में कवि जानकी, दोषहि खोजत मूढ़।
सुन्दर बन में ऊँट ज्यों, इक कंटक तरु ढूंढ़ ॥ ६ ॥
विधि हरि हर कवि जानकी, जिनके सबै गुलाम।
कुसुमायुध भगवान को, हमरी कोट प्रणाम ॥ ७ ॥
बिचकौ नहिं कवि जानकी, रस सिंगार लखि मीत।
इहि बिनु जानें किमि बँधें, दम्पति डोरी प्रीत ॥ ८ ॥
लखि सिंगार कवि जानकी, नाक सिकोरौ नाहिं।
इहि अभाव अब ह्वै रह्यो, कलह दम्पतिन माहिं ॥९॥
को जाने कवि जानकी, बिना चले यह बाट।
अजब मजा तिन ने लिया, जिन लूटी रस-हाट ॥१०॥
काम घाट कवि जानकी, संगम पर मलमास।
चढ़ै कमल सिव सीस पै, धन्य जन्म है तास ॥११॥
घूँघट में कवि जानकी, मुख सोहत इमि जोय।
गह्यो राहु मानों किधौं, ढँप्यो मेघ शशि होय ॥१२॥
बस कीन्हें कवि जानकी, कैसे री व्रज-वाम।
सूधे सहज स्वभाव तें, तैंने टेढ़े श्याम ॥१३॥
कारी सारो में घनी, बुंद की स्वेत सुहाय।
जमुना में कवि जानकी, खिली चमेली आय ॥१४॥
मधु ऋतु या मधु मास में, मधु को पुण्य महान।
मोहि करौ कवि जानकी, प्रिया अधर मधु दान ॥१५॥
उलटी गति कवि जानकी, बिरहागिन की जोय।
दूर भये देही जरे, नीरे सीरी होय ॥१३॥
उलटी गति कवि जानकी, बिरहानल की आय।
प्रजरै नीर उसीर के, पिय की बात बुझाय ॥१७॥

द्वार जाय कवि जानकी, गाय बिरह की गाथ।
दरस भीख याचक नयन, पला न पसारत हाथ ॥१८॥

खिले कमल दृग रूप सर, तिनको सौरभ पाय।
आवत हैं कवि जानकी, अलि नेही नित धाय ॥१९॥

भीर रूप की है जुरी, परी परब झख केत।
मन धन दै कवि जानकी, दृग छवि सौदा लेत ॥२०॥

रूप सिंधु कवि जानकी, पार न सकहौ पाह।
नैना ज्ञान मलाह की, चलिहै जो न सलाह ॥२१॥

ललित लता कवि जानकी, जे बन बौरीं बाम।
रसिया तिन रस लैन को, भयो भ्रमर यह श्याम !॥२२॥

भल बल तें कवि जानकी, प्रजा सीस झुक जाय।
दया नरमियत न्याय बिनु, पै दिल झुकत न आय ॥२३॥

राज काज कवि जानकी, चलै न उत्तम रूप।
रैयत की मरजी बिना, खुदगरजी से भूप ॥२४॥

रमा गिरा कवि जानकी, दोऊ उत्तम आहिं।
पै विवेक बिन दोउ ही, कोउ काम की नाहिं ॥२५॥

कोउ लेय कवि जानकी, कोउ देय रस राख।
पै नाहक को शुक्र ने, खोई अपनी आँख ॥२६॥

शूरन को कवि जानकी, पानी जानों मुक्ख।
नाक न कट्टै नक्ख भर, माथा कट्टै लक्ख ॥२७॥

निज निज तौ कवि जानकी, सब ही जानत पीर।
पर नर बर बेई अहैं, जो जानैं पर पीर ॥२८॥

गुजर होत कवि जानकी, बहुतन की जिहि संग।
सोइ धन्य नतु को नहीं, पोषत है निज अंग ॥२९॥

काक श्वान सम निज उदर, को न भरत संसार।
वही धन्य कवि जानकी, जो कर पर उपकार ॥३०॥

गुरु चातक अरु मीन को, पहिले ही कर लेव।
पीछे तुम कवि जानकी, हित मग में पग देव ॥३१॥
बड़े संग कवि जानकी, लघु हू बड़पन पाय।
जिमि संगति कर अगरु की, धूम धूप कहलाय ॥३२॥
का अचरज कवि जानकी, माँगत ह्वै मुख म्लान।
परहित जल लै जलधि तें, घन ह्वै श्याम सुजान ॥३३॥
दुख मानत नर नरक कौ, कठिन कहत वह ठौर।
दुक्ख नहीं कवि जानकी, पै दरिद्र सम और ॥३४॥
दासन ने कवि जानकी, दृव्य लोभ में आय।
तन की जो स्वाधीनता, सोहू दीन गँवाय ॥३५॥
बन में रह कवि जानकी, अपने दिवस गँवाय।
सेवा करवौ खलन की, पै यह भलो न आय ॥३६॥
गुण की करते जाँच हैं, जे हैं गुणी उदार।
चमड़े की कवि जानकी, करते जाँच चमार ॥३७॥
सदा जान कवि जानकी, तिनकी मूंछ मलीन।
पूँछ करें न गुनीन की, ते हैं पूँछ विहीन ॥३८॥
दूर खड़े गुणवान हैं, दूर बँधे गज आयँ।
तौ इनके कवि जानकी, कहा मोल घट जायँ ॥३९॥
बुध जन तें कवि जानकी, मिलत नहीं दिल खोल।
तौ का मोती मोल घट, जो जानें नहिं कोल ॥४०॥
हाल समय कवि जानकी, अब ऐसहि रजपूत।
शारदूल से शब्द हैं, कुतिया सी करतूत ॥४१॥
प्रथम रहे तुम सिन्धु विष, फिर हर के गर माँहि।
अब तुम हौं कवि जानकी, खलन बचन सर माँहि ॥४२॥
धनी भये कवि जानकी, जानों नहिं धनवान।
मन जाको धनवान है, सोई है धनवान ॥४३॥

बसनहिं ते कवि जानकी, मान होत जग माहि।
उदधि शम्भु को विष दियो, रमा दई हरि काहिं ॥४४॥

या को तौ कवि जानकी, अरे मीत निरधार।
सुमन रहैं कैसहु भले, बिन गुन होत न हार ॥४५॥

निज मन मानत मोद हैं, सिंह मतंग बिदार।
माखिन कौ कवि जानकी, करैं न शूर शिकार ॥४६॥

समय परे कवि जानकी, भ्रमर करील न जाय।
कितने परे उपास पर, केहरि घास न खाय ॥४७॥

कीचड़ में कवि जानकी, फँसत जबै गज आय।
तब मेंढ़क हू मूढ़ यह, चढ़त मूड़ पर जाय ॥३२॥

भले परै कवि जानकी, कितनेहु काल कराल।
पै मराल ताकत नहीं, तुच्छ तलैया ताल ॥४९॥

तज पराग कवि जानकी, भ्रमर न लोटत धूल।
दूधहिं पियत मराल हैं, छाछ न पीवत भूल ॥५०॥

तजि दाड़िम कवि जानकी, बनि के निपट अधीर।
कहाँ गयों रस लैन को, अरे कैथ पै कीर ॥५१॥

तहाँ काम कवि जानकी, कोकिल कौ कछु नाहिं।
महा मधुर वक्ता जहाँ, दादुर दादा आहिं ॥५२॥

कहा कहौं कवि जानकी, ए रे षटपद कूर।
छोड़ केतकी के सुमन, जो तूं गयो बबूर ॥५३॥

फूल नहीं फल हू नहीं, दल हू बड़ौ न बीर।
का करिहै कवि जानकी, रहि के कीर करीर ॥५४॥

जाँच लिए कवि जानकी, सबही इमली आम।
गुण बूझै को कविन के, बिना राम घनश्याम ॥५५॥

जाँच लियो कवि जानकी, सब ही पीतर सौन।
राम श्याम बिनु जगत में, साँचो नेही कौन ॥५६॥

चोखे के कवि जानकी, सबै लगावत दाम।
खोटे के गाहक अहैं, एक राम घनश्याम ॥५७॥

धन कीरति पद तियन कौ, सब जग पागल ज्ञान।
ईश्वर कौ कवि जानकी, बिरलौ पागल मान ॥५८॥

जगत क्षुधित जानों तिया, स्वर्ग क्षुधित नामर्द।
ईश क्षुधित कवि जानकी, जानों सच्चा मर्द ॥५९॥

सब जग की कवि जानकी, विद्या पढ़ी सुजान।
तऊ कहा भौ नहिं भयो, जो आतम कौ ज्ञान ॥६०॥

मत झगरन में मत परहु, एक ईश पहिचान।
मत वाले कवि जानकी, ये मतवाले जान ॥६१॥

सार नहीं कवि जानकी, नांहक की बकवाद।
अहो मीत मत बाद-कर, समय करौ मत वाद ॥६२॥

दीनन पै राखो दया, भूलौ नहिं करतार।
कहैं देत कवि जानकी, सबै धर्म को सार ॥६३॥

दुखियन के दुख को हरौ, सदा डरौ करतार।
यही जान कवि जानकी, सकल धर्म को सार ॥६४॥

बक बक के कवि जानकी, मेरी मरै बलाय।
घट भीतर ही राम हैं, दीन्हों सार सुनाय ॥६५॥

नहीं द्वारिका में अहै, नहीं मदीने माहिं।
है दिलवर कवि जानकी, अपने सीने माहिं ॥६६॥

जल ढारे माटी मले, होत न कोऊ शुद्ध।
सोइ शुद्ध कवि जानकी, जाकौ हृदय विशुद्ध ॥६७॥

को समुझै कवि जानकी, बिना किए सतसंग।
जो अपनो मन शुद्ध है, तौ घर ही में गंग ॥६८॥

हरि में जिनकी मति सदा, रँगराती दिन रात।
तिनकी है कवि जानकी, कहाँ पांत अरु जात ।।६९।।

सगुन रहे कवि जानकी, सगुन मिलत नहिं आन।
जब निरगुन नर होत है, निरगुन मिलत सुजान ।।७०।।

ऐसे में कवि जानकी, निज सम्पति तूँ खोय।
अरे बटोही बावरे, गाफिल होय न सोय ।।७१।।

कर ले यह कवि जानकी, चार दिना को चाय।
फिर तो बहना ही अहै, जलसा-जल सा भाय ।।७२।।

जिहि के मातुल हरि रहे, पिता इन्द्रसुत आय।
तिन देखत कवि जानकी, काल गयो तिहि खाय ।।७३।।

जरा सुभट रुज सैन लै, ज्योंही पहुँचो आय।
यौवन नृप कवि जानकी, भाज्यो तज पुर काय ।।७४।।

अरे मीत कवि जानकी, होय रहौं हुशियार।
छवि मुकता लूटन लगे, आय जरा बट पार ।।७५।।

अरे मूढ़ कवि जानकी, अजहुँ सोच लै जीय।
कहा ऊजरे कच भये, करै ऊजरौ हीय ।।७६।।

एक दिना कवि जानकी, जब मरना ही आय।
तब हँसते हँसते मरौ, रोते मरो न भाय ।।७७।।

कुसुम खिले कवि जानकी, आज मनोहर जौन।
पवन लगे कल धूल में, पतित होंयगे तौन ।।७८।।

आ कर के कवि जानकी, या असार संसार।
एक बार फल फूल के, को न भयो पतझार ।।७९।।

दिन बीतत कवि जानकी, पौढ़त-पौढ़त यार।
चिता पौढ़बे के लिए, होय रहौ तइयार ।।८०।।

करौ नहीं कवि जानकी, रे राजन अभिमान।
काल कलेवा हो गए, बड़े बड़े सुलतान ।।८१।।

वह केहरि के बदन में, मृग को डारत आय।
विषयन में कवि जानकी, जो निज चित्त फँसाय ॥८२॥

का सोवत कवि जानकी, मोह नींद अति पोच।
जीवन जीवन घट रह्यो, अरे मीन मन सोच ॥८३॥

अरे मीत कवि जानकी, सदा रखौ यह ध्यान।
काल समीर वुझाय है, इक दिन दीपक प्रान ॥८४॥

सुन राखौं कवि जानकी, बड़े-बड़े नर नाथ।
चला सिकन्दर जगत से, खाली थे दुहुं हाथ ॥८५॥

शान्ति और सन्तोष सम, जो हमरे धन आय।
राजन के कवि जानकी, तौ मम जाय बलाय ॥८६॥

भूमि सेज उपधान भुज, नभ वितान शशि दीप।
पवन व्यजन कवि जानकी, सोवत शान्त महीप ॥८७॥

सबको तज कवि जानकी, अब तौ मन को मार।
राम भरोसे बे फिकर, सोवत पाँच पसार ॥८८॥

पुण्य कर्म कवि जानकी, हाय न कीन्हों भूल।
व्यर्थ जन्म ऐसे गयो, ज्यों बन बिकस्यो फूल ॥८९॥

इष्ट रही हमरी सदा, एक सुन्दरी जोय।
हाय हाय कवि जानकी, अन्त कहा गति होय ॥९०॥

दया सिन्धु जो लहर में, बोरौ तुमहिं हिलोर।
तौ हमरौ कवि जानकी, कहौ कौन है जोर ॥९१॥

अब तौ सब को लख परख, छोड़ आन को आन।
वारी है कवि जानकी, बनवारी पै जान ॥९२॥

●

डा० डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
मुजफ्फरपुर
9448 9447

[illegible]